अंक प्रथम, जुलाई–दिसम्बर, 2016

भाकृअनुप
ICAR

कृषि ज्ञान गंगा

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान

(आई.एस.ओ. 9001-2015)

(काजरी परिसर) जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

अंक प्रथम, जुलाई–दिसम्बर, 2016

कृषि ज्ञान गंगा

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
(आई.एस.ओ. 9001-2015)
(काजरी परिसर) जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

संरक्षक

डॉ. सुशील कुमार सिंह
निदेशक

प्रधान संपादक

डॉ. एम.एम.मीना
प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) एवं अध्यक्ष हिन्दी राजभाषा समिति

संपादक मंडल

डॉ. एम.एस. मीना
डॉ. एस.के. सिंह
डॉ. आर.बी. काले

तकनीकी एवं संपादन में सहयोग

श्री प्रमोद कुमार शर्मा, कनिष्ठ लेखा अधिकारी

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

प्रधान संपादक
हिन्दी पत्रिका 'कृषि ज्ञान गंगा'
भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर
काजरी परिसर, जोधपुर 342 005 (राजस्थान)
फोन: 0291–2740516, 0291–2748412
फैक्स: 0291–2744367
ईमेल: zpd6jodhpur@gmail.com; zpdzone6@yahoo.in
वेबसाइट: www.icaratari.res.in

मुद्रक

एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर 9414128647

डॉ. अशोक कुमार सिंह
उप महानिदेशक (कृषि प्रसार)
Dr. A.K. Singh
Deputy Director General
(Agricultural Extension)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा, नई दिल्ली 110 012
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
Krishi Anusandhan Bhawan, Pusa, New Delhi – 110 012
Ph.: 91-11-25843277 (O), Fax: 91-11-25842968
E-mail: aksicar@gmail.com

संदेश

भा.कृ.अनु.प.—कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राज.), कृषि तकनीकी के मूल्यांकन के साथ कृषि ज्ञान प्रबन्धन में संलग्न है। कृषि प्रसार को मजबूत करने के लिए राजस्थान एवं गुजरात के कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से कई कदम उठाए गए है। कृषि तकनीकी को कृषकों की परिस्थिति एवं संसाधनों के अनुरूप हस्तानान्तरित करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र, ज्ञान एवं संसाधन केन्द्र के रूप में जिले स्तर पर कार्यरत है। इस परिपेक्ष्य में कृषि तकनीकी को स्थानीय भाषा में कृषकों, महिलाओं, युवाओं, प्रसार कार्यकर्त्ताओं तक पहुँचाने के लिए ''कृषि ज्ञान गंगा'' एक सराहनीय प्रयास है।

इस पहल के लिए में भा.कृ.अनु.प.—कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर में कार्यरत सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को बधाई देता हूँ।

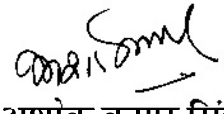

(अशोक कुमार सिंह)

आमुख

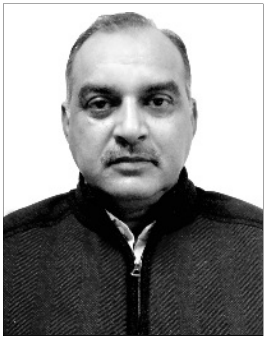

किसी भी देश की प्रगति उसकी मातृ व स्थानीय भाषा के माध्यम से ही संभव है। आज विश्व में जर्मनी, चीन, जापान, फ्रांस, कोरिया इत्यादि देश अपनी स्थानीय भाषा का प्रयोग करके उन्नति के शिखर पर पहुंचे हैं। स्थानीय भाषा आसानी से बोली व समझी जा सकती हैं। इससे संप्रेषण में आसानी रहती है। अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में लिखा साहित्य कम लोगों तक ही पहुंच पाता है। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि कृषि संबंधित सूचनाएं मातृ व स्थानीय भाषा में ही आम जनमानस तक पहुंचे। इस दिशा में भा.कृ.अनु.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) ने ''कृषि ज्ञान गंगा'' अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया है जिससे कृषि एवं इससे संबंधित क्षेत्रों की जानकारियाँ जनमानस तक सुगमता पूर्वक पहुँचाकर तकनीकों से लाभान्वित कराया जा सके।

यह संस्थान कृषि तकनीकी अनुप्रयोगों के समन्वय, मूल्यांकन, अग्रणी प्रसार शिक्षण कार्यक्रम, कृषि शोध एवं ज्ञान प्रबन्धन में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रयासरत है। आशा की जाती है कि इस प्रकाशन से किसानों, महिलाओं, ग्रामीण युवाओं के अलावा प्रसार कार्यकत्ताओं एवं अनुसंधानकत्ताओं को भी सामयिक तकनीकों की जानकारी प्राप्त होगी।

मैं इस पत्रिका के प्रथम अंक में योगदान देने वाले लेखकों को धन्यवाद देता हूँ जिनके योगदान से हम प्रथम अंक (जनवरी से जून 2016) समय पर प्रकाशित कर पाए। मैं संस्थान में कार्यरत हिन्दी राजभाषा समिति, सभी वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों को बधाई देता हूँ, जिनके प्रयासों से संस्थान में हिन्दी प्रयोग को गति मिली एवं यह प्रकाशन संभव हो पाया।

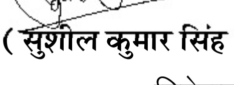

(सुशील कुमार सिंह)

निदेशक

सम्पादकीय

सभी पाठकों को नमस्कार। भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर, राजस्थान व गुजरात राज्यों के सभी 73 कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किसानों तक कृषि की नवीन तकनीकियों और जानकारियों के प्रसार के लिए तत्पर है। इसी प्रयास को सफल एवं प्रभावी बनाने के लिए यह संस्थान हिन्दी पत्रिका ''कृषि ज्ञान गंगा'' के प्रथम अंक का प्रकाशन कर रहा है। इस पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य किसानों एवं प्रसारकर्त्ताओं को कृषि से संबंधित नई तकनीकियों और जानकारियों से अवगत करवाना है ताकि वे उन नई तकनीकियों का लाभ उठाकर कृषि आय को बढ़ा सके तथा भारत की उन्नति में सहयोग प्रदान कर सके। संयुक्त राष्ट्र के कृषि एवम् खाद्य संगठन ने वर्ष 2016 को 'अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष' घोषित किया है जो भारतीय कृषि की दृष्टिकोण से बड़ा महत्वपूर्ण है। भारत सरकार के प्रयासों से इस वर्ष दलहन की बेहतर पैदावार की उम्मीद है।

इस वर्ष मानसून की अच्छी मेहरबानी रही जिससे किसानों के चेहरे खिले हुए है, कई स्थानों पर अत्यधिक बारिश से नुकसान भी हुआ है, लेकिन औसतन यह मानसून किसानों के लिए खुशियों भरा रहा जिससे किसानों को अच्छी पैदावार प्राप्त हो रही है। खरीफ फसलों की कटाई के साथ ही त्यौहारों का मौसम भी चालू हो गया है पहले नवरात्रा, दशहरा और फिर दीपावली। दीपावली के बाद किसान भाई रबी फसलों की बुवाई में लग जाएंगे। आशा है कि रबी का मौसम किसानों के लिए हर्षोल्लास का रहेगा।

इस अर्द्धवार्षिकीय अंक में हम कृषि तकनीक एवं उसका सामाजिक–आर्थिक प्रभाव, फसल उत्पादन तकनीक, पशुपालन तकनीक, कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य सवंर्धन, कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां, कृषि सलाहकारी एवं अभिनव योजनाएं आदि विषयों के अतंर्गत लेखों का प्रकाशन कर रहे है। आशा है कि यह अंक किसानों के लिए लाभप्रद साबित होगा। इस पत्रिका को अधिक ज्ञानवर्धक बनाने के लिए आपके सुझाव सादर आमंत्रित है।

(एम.एस. मीना)
प्रधान संपादक

अनुक्रमणिका

शीर्षक एवं लेखक		पृष्ठ सं.
खण्ड 1: कृषि तकनीक एवं उसका सामाजिक-आर्थिक प्रभाव		
1.	**सहभागीदारी बीज उत्पादन द्वारा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार** एस.के. सिंह, रियाजउद्दीन एवं मोहम्मद इकबाल	1
2.	**कृषक से कृषक प्रसार तंत्रः शक्तियां, कमजोरियां एवं स्थिरता का मुद्दा** एम.एस. मीना, आर.बी. काले, एस.के. सिंह एवं कैलाश	6
3.	**मौसम की विषम परिस्थितियों का कृषि पर प्रभाव** एच.एम.मीना, आर.के. सिंह, के.एस. जादौन, विकास चौधरी एवं लक्ष्मीनाराण राव	9
खण्ड 2: फसल उत्पादन तकनीक		
4.	**मूँगफली के प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम के उपाय** कुलदीप सिंह जादौन, पि.पि. थिरूमलाईसामी, राम दत्ता, ऋतु मावर एवं एच.एम. मीना	15
5.	**बैंगन के प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण** केशव मेहरा, वीर सिंह, अमित यादव एवं पुष्पा सिंह	22
6.	**शुष्क क्षेत्र में फलों की उन्नत कृषि तकनीक** हरिदयाल, पी.एस. भाटी एवं सुशील कुमार शर्मा	26
7.	**एजोला पशुओं के लिए वरदान** शिवमूरत मीना एवं धनराज शर्मा	30
8.	**कीट प्रबन्धन की पर्यावरण अनुकूल तकनीकें** हरीश वर्मा एवं के.एम. शर्मा	33

9. **दलहनी फसलों के कीट एवं रोगों का जैविक प्रबंधन** 38
पुष्पा सिंह, ब्रजेश शाही, एवं के.एम. सिंह

10. **सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से बढ़ाएं फसलों की उत्पादकता** 44
रणजीत सिंह, आर.एल. सोनी, रामअवतार एवं श्रीमती उर्मिला

11. **मृदा उर्वरता प्रबन्धन** 50
के.एम. शर्मा

12. **जैविक खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन** 55
दयानन्द, रणजीत सिंह राठौड़, आर.के. वर्मा एवं एस.एम. मेहता

13. **सरसों की फसल का समेकित कीट प्रबंधन** 63
अमित यादव, पुष्पा सिंह, वीर सिंह एवं अभिषेक यादव

14. **टिकाऊ खेती के लिये गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनायें** 69
के.एम. शर्मा एवं हरीश वर्मा

खण्ड 3: पशुपालन तकनीक

15. **बकरी पालन एक लाभकारी व्यवसाय** 79
हँसराम मीना

16. **मुर्गी पालन एवं अण्डा उत्पादनः ग्रामीण व्यवसाय** 84
पंकज कुमार एवं सरोज कुमार रजक

17. **मुर्गी पालन में उचित आहार एवं बीमारी प्रबन्धन से बढ़ाएं आय** 89
मुकेश कुमार

18. **मछली पालन की उन्नत तकनीक** 94
अनुप कुमार

19. **कृत्रिम गर्भाधान एवं वीर्य लिंग निर्धारण- पशुपालन उपयोगी सहायक प्रजनन तकनीक** 100
रजनी कुमारी एवं संजय कुमार

20. **कृषि विविधिकरण में पशुपालन का योगदान** 102
एस.एम. मेहता, आर.एस. राठौड़ एवं दयानन्द

खण्ड 4: कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

21. **कृषि प्रसंस्करण उद्योगों में ध्वनि प्रदूषण का आंकलन** 107
इन्दु रावत

22. **दूध एवं दूध उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन** 111
सविता सिंघल, पूनम कालश एवं एस.के. शर्मा

23. **फल-सब्जी परिरक्षण** 114
रूपेन्द्रकौर, भगवत सिंह राठौड़ एवं अशोक कुमार शर्मा

24. **फलों एवं सब्जियों की आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले कारक** 117
हेमन्त कुमार वर्मा, चिरंजी लाल मीना, अभिषेक पालड़िया एवं भवानीसिंह ईन्दा

25. **कटाई उपरांत नुकसान एवं निवारण तकनीक** 121
दशरथ भाटी एवं सुमित्रा मीना

खण्ड 5: कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां

26. **स्वयं सहायता समूहः ग्रामीण महिलाओं के लिये एक आशा की किरण** 127
प्रीति ममगई, देवेन्द्र तिवारी एवं अवनीत कौर

27. **स्वयं सहायता समूहः महिला सशक्तिकरण हेतु बढ़ता कदम** 129
पूनम कालश, सविता सिंघल, ए.के. मिश्रा एवं एस.के. शर्मा

28. **सोयाबीनः उत्तम प्रोटीन प्राप्ति का सस्ता स्त्रोत** 133
श्रीमति सुमित्रा मीना एवं एस.एन. औझा

खण्ड 6: कृषि सलाहकारी एवं अभिनव योजनाएं

29. **युवाओं को कृषि की ओर आकर्षित एवं बनाए रखने के लिए अभिनव पहल** 139
एम.एस. मीना, आर.बी. काले, एस.के. सिंह एवं हंसराज सैन

30. **किसान प्रथम योजना** 143
ए. श्रीनिवास एवं आर.बी. काले

31. **प्रधानमंत्री फसल बीमा योजनाः किसानों की आशा** 147
सुश्री अरूणा शर्मा

32. **मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि सलाह** 150
चिरंजी लाल मीना, हेमन्त कुमार वर्मा, भवानीसिंह ईन्दा एवं अभिषेक पालड़िया

33. **स्मार्टफोन : किसानों के लिए वरदान** 153
अभिषेक पालड़िया, हेमन्त कुमार वर्मा, चिरंजी लाल मीना एवं भवानीसिंह ईन्दा

34. **कृषि क्षेत्र में बैंकों की भूमिका** 158
भवानीसिंह ईन्दा, चिरंजी लाल मीना, हेमन्त कुमार वर्मा एवं अभिषेक पालड़िया

खंड–1

कृषि तकनीक एवं उसका सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

अध्याय -1

सहभागीदारी बीज उत्पादन द्वारा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार

एस. के. सिंह[1], रियाजउद्दीन[2] एवं मोहम्मद इकबाल[3]

1. प्रस्तावना
2. कृषक सहभागिता
3. कृषि सहभागीदारी द्वारा बीज उत्पादन
4. किसान समितियों का गठन
5. किसानों को मिला दुगना लाभ

1. प्रस्तावना

किसी देश की जनता ही उसके सम्पूर्ण विकास हेतु सबसे महत्वपूर्ण साधन है। विश्व में कई देश ऐसे हैं जहाँ प्राकृतिक संसाधनों की कमी के बाद भी वहाँ की जनता उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं तथा उस देश को विकसित देश की सूची में मजबूती से खड़ा किए हुए हैं। उदाहरण के तौर पर जापान। भारत एक कृषि प्रधान देश है प्राचीन काल से ही कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्त्रोत रहा है और अब भी ये अपना विशेष स्थान बनाये हुए है। प्रकृति की कृपा तथा किसान भाइयों की कड़ी मेहनत से हमारी भूमि सदा उपजाऊ रही है। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर ही आधारित है। भारत गाँवों का देश हैं यहाँ के कुल 6,38,588 गाँवों में देश की लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या (आबादी) निवास करती है। गाँवों में निवास करने वाली जनसंख्या का 31 प्रतिशत किसान तथा कृषि आधरित मजदूर के रूप में जीविका चलाते हैं। देश के विभिन्न उद्योग धंधे, विदेशी व्यापार यहाँ तक की भारतीय राजनीति भी कृषि पर आधारित /निर्भर करती है।

हमारे देश में कृषि ज्यादातर पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में दी जाती रही है बढ़ती जनसंख्या और घटती कृषि भूमि के कारण भविष्य में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा देश के सामने एक विकराल समस्या बनती जा रही है। पिछले 2–4 वर्षों में हमारे सारे जलवायु क्षेत्र बदल रहे हैं। आज उनमें काफी बदलाव नजर आ रहा है और पुरानी परम्पराओं को बदलने का साहस बहुत कम लोग रखते है। जब तक किसानों को यह विश्वास न हो कि कुछ बेहतर होगा और इसके लिए किसान कुछ न करके सिर्फ 2–4 वर्ष सोचता रहता है। इस पृष्ठभूमि में हमारे किसान भरोसा करके प्रयोग करने की हिम्मत कैसे करें और इस दिशा में हम क्या करें और आगे कैसे बढ़ें?

बदलते जलवायु क्षेत्र तथा घटती कृषि भूमि के कारण किसानों को उत्तम बीज की उपलब्धता भी नहीं हो पा रही है। जिससे उत्पादन निरन्तर गति से गिरता जा रहा है जिस कारण अधिक लागत एवं कम लाभ से खेती करना किसानों के लिए घाटे का सौदा साबित हो रहा है।

[1]निदेशक, भा.कृ.अनु.प. –कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर
[2]भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर–208024
[3]भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर–208024

यही कारण हैं कि पिछले कुछ वर्षों से किसान कर्ज के बोझ के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। निरन्तर हो रहे अनुसंधानों और नई तकनीकों के विकास से कृषि के स्तर में तो सुधार हुआ परन्तु आज भी उन्नत तकनीक समय पर किसानों तक नही पहुँच पा रही। नई तकनीकों की जानकारी ग्रामीण स्तर पर समय से पहुँचाने का प्रमुख स्त्रोत कृषि प्रसार है जिसके लिए विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थान भारतीय कृषि को नए आयाम देकर कृषि प्रौद्योगिकी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। आजकल कृषि प्रसार के अन्तर्गत ग्रामीण सहभागिता जैसे कार्यक्रमों पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। अतः हमें किसानों के समक्ष यह सिद्ध करना होगा कि वह दुनिया का पेट भी भर सके और उसकी जेब भी मालामाल हो सके और जब तक हमारे किसान मालामाल नहीं होंगे तब तक हम उन परिस्थितियों को प्राप्त नहीं कर सकते। इसका मुख्य कारण हमारे देश में उन्नत प्रजातियों के गुणवत्ता युक्त बीजों की कमी है जो हमारे किसानों को समय पर उपलब्ध नहीं हो पाते। अतः किसानों को सहभागीदार बनाकर उन्नतशील प्रजातियों के बीज गाँव स्तर पर उत्पादित किये जायें जिससे ग्रामीण स्तर पर समय पर बीज उपलब्ध हो सके।

2. कृषक सहभागिता

कृषि प्रसार की इस तकनीक के अन्तर्गत किसानों को सहभागी बनाकर उनकी समस्याओं को समझना, उनकी तकनीकी को समझना तथा उनकी समस्याओं के निवारण हेतु सामूहिक प्रयास करना अर्थात कृषकों को सहभागी बनाकर सामूहिक परिचर्चा के द्वारा उस क्षेत्र की समस्याओं को गम्भीरता से समझना तथा समाधान के लिए प्रयास करना। इसमें उनकी सोच, ज्ञान व कौशल को प्राथमिकता दी जाये जिससे उनके अन्दर आत्मविश्वास पैदा हो सके।

3. कृषि सहभागीदारी द्वारा बीज उत्पादन

इस योजना के तहत उन्नतशील प्रजातियों के बीज गांव स्तर पर समूह बनाकर वैज्ञानिक तरीके से बीज उत्पादन किया गया। इसके तहत मसूर की विभिन्न प्रजातियों को प्रदर्शित करके तथा किसानों द्वारा उनका स्वयं मूल्यांकन करके यह जाँचना कि उक्त परिस्थिति में अमुख प्रजाति अधिक उत्तम पायी गयी। इस विधि के द्वारा किसानों को यह भरोसा जल्द हो जाता है कि अमुख प्रजाति और तकनीक उनके परिस्थिति में भरोसेमंद और लाभप्रद हो रही है। इस योजना के तहत वर्षा 2010 से 2016 तक जनपद फतेहपुर, बलिया तथा हमीरपुर जिलों में कृषक भागीदारी द्वारा मसूर का बीज उत्पादन कराया गया इसमें किसानों द्वारा पंजीकृत कृषक समिति के माध्यम से समूह में ग्राम स्तर पर बीज उत्पादन किया गया। फसल के मूल्यांकन हेतु राज्य के बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा खेतों का निरीक्षण व फसल मूल्यांकन किया गया।

4. किसान समितियों का गठन

जनपद बलिया फतेहपुर तथा हमीरपुर के किसानों द्वारा वर्षा 2010 से 2016 के मध्य क्रमशः मेडवरा किसान सेवा समिति, बीज विकास सेवा समिति तथा विदोखर किसान सेवा समिति का गठन किया गया। इन समितियों के माध्यम से किसानों द्वारा ग्राम स्तर पर मसूर के उन्नत बीज का उत्पादन कृषक सहभागीदारी के माध्यम से किया गया और उस बीज को अन्य गांवों तक पहुँचाया गया। इन समितियों ने कुल 1520 क्विंटल मसूर का बीज उत्पादन किया और 181.75 क्विंटल बीज राष्ट्रीय बीज विकास निगम तथा 75 क्विंटल बीज अन्य राष्ट्रीय कृषि संस्थानों को बीज रूप में बेचा और राष्ट्रीय स्तर पर बीज की उपलब्धता सुनिश्चत करने में सहभागी बने।

5. किसानों को मिला दुगना लाभ

बीज उत्पादन से जुड़े किसानों का कहना है कि एक तरफ तो उन्हे नई तकनीक सीखने का मौका मिल रहा है और दूसरी तरफ उन्हें कम क्षेत्रफल में अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। पहले जहाँ उन्हें मसूर की परम्परागत खेती से 19000.00 से 23000.00 रू. प्रति हेक्टेयर प्राप्त होते थे वहीं बीज उत्पादन से जुड़ने पर उन्हें 37000.00 से 42000.00 रू. प्रति हेक्टेयर की आमदनी हो रही है। बीज उत्पादन से जुड़े किसानों का यह भी कहना है कि वैज्ञानिकों से जुड़े रहने से उन्हें कई तरह के फायदे हुए हैं एक तो किसी भी प्रकार की समस्या होने पर उन्हें भटकना नहीं पड़ता और खाद, बीज से लेकर कटाई तक की जानकारी मिलने से उनकी मृदा की उर्वरता भी बची हुई है। सहभागीदारी बीज उत्पादन से आसपास के गाँव के किसानों में भी बीज उत्पादन के प्रति काफी ललक पैदा हुई है।

तालिका 1. बलिया जिले में मसूर की उन्नत किस्मों का स्थानीय किस्मों के मुकाबले/विरूद्ध कृषक भागीदारी प्रजाति चयन परीक्षण के अन्तर्गत प्रदर्शन

किस्म	सामान्य स्थिति औसत उत्पादन (क्वि./है.)			पछेती स्थिति औसत उत्पादन (क्वि./है.)		
	2010–11	2011–12	2012–13	2010–11	2011–12	2012–13
एन.डी.एल–1	10.50	15.05	16.30	9.15	13.29	13.93
पी.एल–6	–	16.14	14.38	–	19.98	14.28
एच.यू.एल–57	08.20	13.55	14.88	7.60	12.65	13.05
डब्लयू.बी.एल.–77	–	14.70	–	–	11.32	–
आई.पी.एल.–81	08.50	–	–	8.55	–	–
स्थानीय	5.50	10.65	12.50	4.90	8.70	11.30

तालिका 2. फतेहपुर जिले में मसूर की उन्नत किस्मों का स्थानीय किस्मों के मुकाबले/विरूद्ध कृषक भागीदारी प्रजाति चयन परीक्षण के अन्तर्गत प्रदर्शन

किस्म	सामान्य स्थिति औसत उत्पादन (क्वि./है.)			पछेती स्थिति औसत उत्पादन (क्वि./है.)		
	2010–11	2011–12	2012–13	2010–11	2011–12	2012–13
एन.डी.एल–1	16.25	–	15.05	11.65	–	12.35
डी.पी.एल.62	–	16.15	14.30	–	13.62	11.83
पी.एल–6	–	15.65	13.10	–	12.24	11.15
एच.यू.एल–57	14.00	15.45	13.12	10.23	11.89	10.13
डब्लयू.बी.एल.–77	–	12.70	–	–	10.11	–
आई.पी.एल.–81	11.70	–	–	8.35	–	–
स्थानीय	09.00	11.55	11.20	7.31	8.57	10.45

तालिका 3. बलिया जिले में मसूर की उन्नत किस्मों का स्थानीय किस्मों के मुकाबले/विरूद्ध अर्थशास्त्र

वर्ष	जुताई की लागत (रू./है.)		शुद्ध प्रतिफल (रू./है.)		सकल आय (रू./है.)		लाभ:लागत अनुपात	
	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय
2010–11	11790.00	11000.00	20710.00	6500.00	32500.00	17500.00	2.76	1.59
2011–12	15040.00	14110.00	36608.00	16775.00	30885.00	30885.00	2.43	1.19
2012–13	15456.00	13820.00	54643.00	36160.00	50000.00	50000.00	3.54	2.61

तालिका 4. फतेहपुर जिले में मसूर की उन्नत किस्मों का स्थानीय किस्मों के मुकाबले/विरूद्ध अर्थशास्त्र

वर्ष	जुताई की लागत (रू./है.)		शुद्ध प्रतिफल (रू./है.)		सकल आय (रू./है.)		लाभ:लागत अनुपात	
	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय	उन्नत	स्थानीय
2010–11	12730.00	11980.00	37020.00	15270.00	49750.00	28000.00	3.90	2.20
2011–12	15430.00	13990.00	22950.00	22950.00	51800.00	36960.00	2.36	1.64
2012–13	15870.00	14210.00	32150.00	32150.00	70649.00	46360.00	3.45	2.26

तालिका 5. बलिया जिले में मसूर का वर्षवार उत्पादन एवं उसका निपटान

वर्ष	कुल उत्पादन (क्वि.)	रा.बी.नि. द्वारा खरीद (क्वि.)	अगले वर्ष के लिए बीज हेतु संरक्षित	बाजार में विक्रय
2010–11	136.00	–	88.00	37.5
2011–12	393.47	–	248.35	145.12
2012–13	288.00	66.75	149.95	70.81
कुल	817.47	66.75	486.30	253.43

तालिका 6. फतेहपुर जिले में मसूर का वर्षवार उत्पादन एवं उसका निपटान

वर्ष	कुल उत्पादन (क्वि.)	रा.बी.नि. द्वारा खरीद (क्वि.)	अगले वर्ष के लिए बीज हेतु संरक्षित	बाजार में विक्रय
2010–11	148.00	–	74.00	72.00
2011–12	175.90	60.60	87.40	27.90
2012–13	179.10	54.90	88.15	35.96
कुल	503.00	115.50	249.55	135.86

तालिका 7. बलिया जिले में उन्नत किस्म के तहत गाँववार आवृत्त क्षेत्र

क्र. स.	गाँव	कुल क्षेत्र (है.)	2010–11		2011–12		2012–13	
			स्थानिय किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र (है.)	उन्नत किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र	स्थानिय किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र (है.)	उन्नत किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र	स्थानिय किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र (है.)	उन्नत किस्म के अन्तर्गत क्षेत्र
1.	कठारिया	75.30	59.17	16.13	27.30	48.00	23.10	52.20
2.	दौलतपुर	78.85	67.50	11.35	22.45	56.40	21.35	57.50
3.	लादुपुर	35.30	27.20	08.30	14.30	21.20	13.17	22.13
4.	फिरोजपुर	45.20	32.20	13.00	12.20	33.00	11.30	33.90
5.	केथोली	52.45	43.25	09.20	16.45	36.00	15.65	36.80
6.	ईथी	30.50	22.25	08.25	14.30	16.20	13.50	17.00
7.	सहाबुदीनपुर	33.20	27.20	05.00	12.20	21.00	11.80	21.40
8.	सोबंनथा	42.70	32.55	10.15	15.50	27.12	15.00	27.70
	योग	393.50	311.32	81.38	134.70	258.92	124.87	
9.	केरो	255.00	–	–	239.10	15.90	91.00	147.00
10.	बसुदव	78.00	–	–	73.28	04.72	25.70	48.20
11.	मारची खुर्द	85.22	–	–	76.20	09.62	25.60	56.80
12.	नेरही	285.10	–	–	267.85	17.25	128.90	141.50
13.	बागही	65.70	–	–	58.30	07.40	22.37	42.73
	योग	769.62	–	–	714.73	54.89	294.17	436.23
	कुल योग	1163.62	–	–	849.43	313.81	419.04	704.86

अध्याय -2

कृषक से कृषक प्रसार तंत्र शक्तियाँ, कमजोरियाँ एवं स्थिरता का मुद्दा

एम.एस. मीना[1], आर.बी. काले[2] एवं एस.के. सिंह[3]

1. प्रस्तावना
2. दर्शन शास्त्र एवं सिद्धान्त
3. शक्तियाँ एवं कमजोरियाँ
3.1 शक्तियाँ
3.2 कमजोरियाँ
4. कृषक से कृषक तंत्र की स्थिरता
4.1 स्थानीय संस्थानों द्वारा स्वामित्व
4.2 किसान प्रशिक्षकों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन
4.3 सरकारी नीति सहायता
सारांश

1. परिचय

भारत में कृषि प्रसार सेवाएं मुख्यतः सरकार द्वारा वित्त पोषित एवं प्रदान की जाती है। वर्तमान में प्रसार का बहुलवादी तंत्र देश में काम कर रहा है, जिसमें सार्वजनिक, निजी और कॉर्पोरेट क्षेत्र किसानों के विकास, प्रोत्साहन और सेवा प्रदान करने में लगे हुए है। हालांकि, अभी भी विभिन्न प्रकार के अंतरालों जैसे तकनीकी, सूचना, उपज, आय, भोजन और आजीविका के अवसर जो कि देश के उच्च एवं सतत् विकास में हमेशा बाधा रहे है आदि को दूर करने के लिए एक नये और प्रभावी तंत्र की खोज जारी है।

इस बात का अहसास किया गया कि आवश्यकताओं की पहचान करके एक सर्वोत्तम एवं प्रभावी प्रसार तंत्र को अपनाने की जरूरत है। समुदाय के ज्ञान एवं सूचना के लिए बड़े पैमाने पर कई रणनीतियाँ और तंत्र लागू किये गये हैं। 1980 और 1990 में सरकार ने प्रसार सेवाओं के क्षेत्र में निवेश की गिरावट के बाद, समुदाय आधारित दृष्टिकोण प्रसार तेजी से महत्वपूर्ण बन गए हैं। हम सामान्य रूप में 'किसान–प्रशिक्षक' का उपयोग करते हैं, लेकिन हम मानते हैं कि विभिन्न नाम जैसे नेतृत्व किसान, किसान–प्रेरक, समुदाय ज्ञान कार्यकर्ता आदि विभिन्न भूमिकाएं निभाते हैं।

2. दर्शन एवं सिद्धान्त

कृषक से कृषक प्रसार के लिए किसान–प्रशिक्षकों का एक ढांचा बनाया गया है इसमें किसानों द्वारा किसानों को प्रशिक्षण का प्रावधान है। एफ2एफ किसान केन्द्रित प्रसार प्रणाली और समुदायों की आजीविका में सुधार के लिए किसानों को परिवर्तन एजेंटों के रूप में सशक्त बनाना है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भा.कृ.अनु.प. –कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) 342 005
[2]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भा.कृ.अनु.प.– कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) 342 005
[3]निदेशक, भा.कृ.अनु.प. –कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) 342 005

मुख्य सिद्धान्त निम्न है:-

- किसान एवं स्थानीय संस्थान (जैसेः उत्पादन संस्थान और ग्राम प्रमुख) किसान–प्रशिक्षक के चयन एवं उसकी निगरानी एवं मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह किसी भी योजना को समुदाय या समाज के प्रति अधिक जवाबदेह बनाने में मदद करता है।
- किसान–प्रशिक्षक वो समुदाय है जो किसान की स्थानीय भाषा में किसानों के साथ संवाद कर सकते हैं तथा साथ ही वे स्थानीय संस्कृतियों, व्यवहार, खेती के तरीकों और किसानों की जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील होते है।
- किसान–प्रशिक्षक का चयन उनके कौशल एवं सूचना साझा करने के आधार पर किया जाना चाहिए न की उसके खेती करने के अनुभव के आधार पर।
- किसान–प्रशिक्षकों का अन्य विभागों (सरकारी, गैर–सरकारी संगठन, निजी) के एजेंटों के साथ मजबूत एवं विकासोन्मुखी संबंध होने चाहिए जो उन्हें प्रशिक्षित कर सके। किसान–प्रशिक्षकों की मौजूदा विस्तार प्रणाली अन्य विस्तार प्रणालियों का स्थान ले रही हैं।
- संगठन और अन्य संस्थानों को मजबूत बनाने के लिए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पुरूषों के साथ महिलाएँ भी किसान–प्रशिक्षक हों।
- किसान प्रशिक्षकों को सामान्य एवं उचित संदर्भ सामग्री उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।

3. शक्तियाँ एवं कमजोरियाँ

3.1 शक्तियाँ

एफ2एफ तंत्र प्रसार की लागत एवं कार्य भार को कम कर सकता हैं। प्रमुखतः भारत जैसे देश में जहाँ प्रसार कार्यकर्ता एवं किसानों का अनुपात 1:1000 का है वहाँ इस दृष्टिकोण के निम्न लाभ हैं:–

- एफ2एफ तंत्र बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी लागत बहुत कम है।
- यह समुदाय में प्रसार गतिविधियों को आसान और उनकी जवाबदेही को बढ़ाता है।
- एफ2एफ तंत्र नये शोध कार्यक्रमों पर प्रतिक्रिया, नई तकनीकों के विस्तार और समुदाय को सूचना प्राप्त करने की स्थिति को मजबूत बनाता है।
- यह तंत्र कम लागत का है इसलिए इस योजना के समाप्त होने के बाद भी यह सरकारी प्रसार कर्मियों एवं किसान समूहों के साथ दीर्घकालीन अवधि तक टिका रह सकता है।
- एफ2एफ प्रसार तंत्रकिसानों के प्रसार कर्मियों के प्रति जानकारी को बढ़ा सकता है।

3.2 कमजोरियाँ

- किसान–प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान मजबूत करने की आवश्यकता है, इसके बिना वे अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाएँगे।
- कुछ कार्यक्रमों में अधिक किसान–प्रशिक्षकों को भर्ती करने की जरूरत होती है, तभी वे अच्छा प्रदर्शन कर पाएँगें, नहीं तो उन कार्यक्रमों की सार्थकता में कमी आ जाती है।
- कुछ कार्यक्रमों में कार्य बीच में छोड़ने की दर बहुत ही ज्यादा है, इसलिए किसान–प्रशिक्षकों को अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
- एफ2एफ तंत्र एक आसान नीचे से ऊपर तकनीकी हस्तांतरण का तंत्र है, जिसमें संप्रेक्षण एक तरीका है।

- एफ2एफ योजना कम लागत की है, इसलिए यह योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि स्थानीय संस्थान उसकी सहायता के लिए सहमत न हो।

4 कृषक से कृषक प्रसार तंत्र की स्थिरता

कृषक से कृषक प्रसार तंत्र की स्थिरता कई कारकों पर आधारित है, जिनमें से प्रमुख निम्न हैं:

4.1 स्थानीय संस्थानों द्वारा स्वामित्व

यह योजना बहुत ही प्रभावी है, यदि इसमें स्थानीय ग्राम प्राधिकरण प्रशिक्षकों को मदद और उत्साहित करें। उदाहरण के लिए पश्चिमी केन्या में, किसान–प्रशिक्षक योजना के समाप्त होने के 3 वर्ष के बाद भी सक्रिय रूप से किसानों को प्रशिक्षण देने में लगे हुए थे।

4.2 किसान–प्रशिक्षकों को प्रेरणा एवं कम–लागत प्रोत्साहन

प्रसार प्रबंधकों को यह समझने की आवश्यकता है कि उन किसान–प्रशिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाए जो स्वैच्छिक रूप से अवेतनिक और कम लागत पर कार्य कर रहे हैं मुख्यतः उन लोगों को जिन्हें उनकी सेवाओं के लिए भुगतान नहीं किया जाता है। उदाहरण के लिए कैमरून, केन्या और मलावी, दूसरों को ज्ञान और मदद के लिए किसान–प्रशिक्षक सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा थे, साथ ही सामाजिक स्तर और योजना सामग्री का लाभ भी होता था।

प्रशिक्षण अवसरों के प्रस्ताव को बढ़ाना एक मुख्य प्रोत्साहन है मुख्यतः उन किसान–प्रशिक्षकों के लिए जो कि दूसरों की मदद, सामाजिक स्तर, प्रतियोगिता, प्रमाण–पत्र, टी–शर्ट और समुदाय मान्यता आदि से प्रोत्साहित होते हैं। दूसरे वे किसान–प्रशिक्षक जो प्रसार और उसकी सहायक क्रियाओं के द्वारा, प्रदर्शन स्थल से बीज को बेचकर और शुल्क लेकर प्रशिक्षण देने से प्रोत्साहित होते हैं।

4.3 सरकारी नीतियों द्वारा मदद

किसान प्रशिक्षकों को प्रोत्साहित करने के कई तरीके है जैसे–वित्तीय, तकनीकी ओर इसी तरह की मदद द्वारा। उदाहरण के लिये पैरू इंडोनेशिया में सरकार द्वारा किसान–प्रशिक्षकों को भुगतान किया जाता है। दूसरे देशों में जैसे मालवी और रवांडा में किसान–प्रशिक्षकों को भुगतान नही किया जाता परन्तु उन्हें तकनीकी मदद दी जाती है। अतः अनुकूल सरकारी नीतियां तंत्र को प्रोत्साहित करती है।

सारांश

सामाजिक स्तर पर बहुत सारी जानकारियाँ जो कि प्रसार के विभिन्न पहलुओं को लिये होती हैं और यह भी जानती है कि इसे लागू करने के क्या तरीके हो सकते हैं। तथापि, इस प्रकार कि जानकरियों को हमेशा विस्तृत और शैक्षिक भाषा में प्रस्तुत किया गया हैं। अतः प्रशिक्षणार्थियों द्वारा समय की अपर्याप्ता या निम्न शैक्षिण योग्यता के कारण इस प्रकार की सूचनाओं को समझने में कठिनाई को महसूस कर रहे थे। एफ2एफ तंत्र प्रसार की लागत को कम कर सकता है और प्रसार गतिविधियों के कार्यभार को भी कम कर सकता है। मुख्यतः भारत जैसे देश में जहाँ प्रसार कर्मियों और किसानों का अनुपात ज्यादा ही बड़ा है। इसलिए इस तंत्र की स्थिरता और मापनीयता के लिए सरकारी और सामुदायिक मदद की आवश्यकता है।

अध्याय – 3

मौसम की विषम परिस्थितियों का कृषि पर प्रभाव

एच.एम. मीना[1], आर.के. सिंह[2], के.एस. जादौन[3], विकास चौधरी[4] एवं लक्ष्मीनारायण राव[5]

1. प्रस्तावना
2. जलवायु परिवर्तन
3. चरम मौसम की घटनाएँ

1. प्रस्तावना

पिछले कुछ शताब्दियों से विश्व में औधोगिकीकरण काफी बढ़ गया है जिसके कारण वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2) और अन्य ग्रीन हाऊस गैसौं की मात्रा बढ़ रही है। वातावरण में इन गैसों की सधनता बढ़ने से दीर्घ विकिरण को निकलने में बाधा उत्पन्न होती है, जिसके चलते वातावरण गर्म हो रहा है। तापमान बढ़ने के कारण जलवायु परिवर्तन हो रहा है और इससे चरम मौसम की घटनाओं के लिए बेहतर स्थिति भी प्रदान हो रही हैं। बढ़ती विश्व और राष्ट्रीय जनसंख्या को देखते हुए कृषि उत्पादन को स्थायी बनाए रखना भी जरूरी है। जलवायु परिवर्तन और विषम मौसम की घटनाओं के चलते कृषि उत्पादन कम हो रहा है। इसलिए कृषि को स्थायी बनाने के लिए जलवायु परिवर्तन और विषम मौसम घटनाओं के बीच सामर्थ्य बनाए रखना है।

जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन औसत मौसमी दशाओं के पैटर्न में ऐतिहासिक रूप से बदलाव है। मौसम विशेषज्ञों का मानना है कि पिछले 150 से 200 वर्षों में जलवायु परिवर्तन इतना तेजी से हुआ है कि प्राणी और वनस्पति जगत को इस परिवर्तन के साथ सामजस्य करने में परेशानी हो रही है। IPCC 2014 के अनुसार 21वीं सदी के अन्त तक तापमान में 1.1 डिग्री सेन्टीग्रेड से 6.4 डिग्री सेन्टीग्रेड तक की वृद्धि की सम्भावना है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की चरम घटनाओं में वृद्धि हो रही है। इन चरम घटनाओं की तीव्रता बढ़ जाने से कृषि एवं मनुष्य के प्रति घातक प्रभाव पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की चरम घटनाओं की आवृति बढ़ी है इसमें मुख्यतः बाढ़, सूखा, गर्म एवं सर्द हवाएं, तूफान, ओला वृष्टि आदि शामिल हैं।

चरम/विषम मौसम घटनाएँ: विषम घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो कि कुछ महत्वपूर्ण मौसम चरों की चरम मूल्य रखती है। इसका मतलब जो सामान्य से बहुत ज्यादा व कम हो और उसकी प्रकट होने की अवधि अधिक हो। मौसम के कुछ चरों की चरम मूल्य ही नुकसान का कारण हैं जैसे भारी वर्षा, बाढ़, तेज पवन गति (साइक्लोन)।

चरम मौसम घटनाएं दो प्रकार की होती हैं :–

भूभौतिक : भूभौतिक चरम घटनाओं में भूकंप, सुनामी और भूस्खलन आदि शमिल हैं।

मौसम विज्ञान : इसमें मुख्यतः बाढ़, सूखा, गर्म एंव सर्द हवाएं, तूफान, ओला वृष्टि आदि आते हैं।

[1–5]भा.कृ.अनु.प., काजरी, जोधपुर

चरम मौसम की घटनाएँ

सन 2002 में भारत में बहुत सूखा रहा और 2003 में आन्ध्र प्रदेश में करीब 20 दिन गर्म हवाएं उष्मा चली। 2002–2003 में सर्दी के मौसम में अतिविषम ठंड थी और 2004 में भारत में सूखे जैसी स्थिति थी जबकि मार्च 2004 और फरवरी 2005 में सामान्य तापमान था। सन् 2005 में बाढ़ आयी और 2005–2006 में ठंडी लहर आयी, 2006 में बाढ़ और सूखा दोनों ही देखने को मिला जो कि एक विचित्र घटना थी जहां सूखे की सामान्य सम्भावना रहती थी वहां बाड़मेर, पश्चिमी राजस्थान में बाढ़ आयी और आन्ध्र प्रदेश व उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में सूखा रहा। सन् 2007 में जनवरी के तीसरे सप्ताह और फरवरी के पहले सप्ताह में तापमान का असामान्य रहना भी कृषि के लिए खराब चरम था। पूर्व भारत में 2009 में भयानक सूखा था और 2010 तो सबसे गर्म साल था। सन् 2011 में आन्ध्र प्रदेश में सितम्बर महीने में वर्षा बहुत कम हुई और सन् 2012 में भी पंजाब, हरियाणा, गुजरात और कर्नाटक में सूखा पडा और नीलम तूफान की वजह से आन्ध्र प्रदेश में बाढ़ आयी। सन् 2013 में भी सूखा और बाढ़ दोनों से ही नुकसान हुआ। उत्तर पूर्वी बिहार और झारखण्ड में सूखा और फाइलेन तूफान से उत्तराखण्ड में बाढ़ आई, सन् 2014 में सूखा और जम्मू–कश्मीर में दो बार बाढ़ आई व 2015 में भी बहुत भयानक बाढ़ ने चैन्नई में दस्तक दिया।

विशेषज्ञों के अनुसार तापमान में वृद्धि फसलों के जीवन चक्र पर बुरा असर डालती है, जैसे गेहूं का उत्पादन कम होता है क्योंकि तापमान बढने पर फसल का जीवन काल छोटा हो जाता है। रामाकृष्णा और साथी (2007) ने बताया कि राजस्थान में 2 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान बढता है तो 10–15 प्रतिशत बाजरा का उत्पादन कम हो जाता है।

गर्म हवाएँ : सामान्य तापमान से कम या ज्यादा लगातार/कुछ समय के लिए बने रहना जैसी स्थिति को गर्म एंव सर्द तरंग कहते हैं। भारत में गर्म हवा को परिभाषित करने के लिए दो स्थिति रखी है। एक मैदानी क्षेत्र के लिए जहां पर सामान्य से तापमान 40 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक होता है दूसरी पहाडी क्षेत्र के लिए जहां पर सामान्य से तापमान 40 डिग्री सेन्टीग्रेड से कम हो। मैदानी क्षेत्रों में गर्म हवा तब घोषित होती है जब स्थिति अधिकतम तापमान में औसतम/सामान्य से 4 डिग्री सेन्टीग्रेट से 5 डिग्री सेन्टीग्रेट या इससे अधिक बढ़ जाएं। पहाडी क्षेत्रों में जब अधिकतम तापमान औसतम तापमान से 5 से 6 डिग्री सेन्टीग्रेड अधिक हो।

गर्म हवा से फसल उत्पादन पर बुरा असर पडता है। इसके लिए भारत का पूरा उत्तर पश्चिम क्षेत्र गवाह है कि मार्च 2004 गर्म हवा से कृषि पर बुरा असर पडा है। सामरा और सिंह (2004) के अनुसार रबी फसल जिसमें गेहूं, सरसों और सब्जियाँ सम्मिलित हैं उन्होंने बताया कि सबसे ज्यादा श्रीनगर में दैनिक अधिकतम तापमान वृद्धि (8–12 डिग्री सेन्टीग्रेड) उसके बाद पालमपुर (8–10 डिग्री सेन्टीग्रेड), हिसार (2–10 डिग्री सेन्टीग्रेड), लुधियाना (3–6 डिग्री सेन्टीग्रेड) जम्मू (1–6 डिग्री सेन्टीग्रेड) और जयपुर में (1–5 डिग्री सेन्टीग्रेड) का आंकलन किया।

शीत लहर : जब न्यूनतम तापमान में सामान्य न्यूनतम तापमान से –5 डिग्री सेन्टीग्रेड से –6 डिग्री सेन्टीग्रेड कम होता है। जहां पर औसतन

न्यूनतम तापमान 10 डिग्री सेन्टीग्रेड हैं शीत लहर भी गर्म लहर की तरह ही कृषि के लिए नुकसानदायक है। दिसम्बर, 2002 से जनवरी, 2003 में उत्तर भारत में शीत लहर का प्रकोप रहा था जब यहाँ पर कई जगह 3–4 सप्ताह तक शीत लहर चली। एक सर्वे में बताया गया कि 600 हैक्टेयर आम और लीची के बाग भयंकर तरीके से खराब हो गये और टमाटर, आलू, मटर, जैसी सब्जियाँ बुरी तरह से प्रभावित हुए।

कोहरा : यह भारत में शीत ऋतु में होता है। लगातार कोहरे वाली स्थिति होने से बहुत सी फसलों में नुकसान की आशंका रहती है। विशेषकर जब कोहरे की अवधि एक सप्ताह से ज्यादा हो। इसके होने पर पर्याप्त सूर्य विकिरण फसल/पौधे को नहीं मिलती जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण कम होता है और पौधे की वृद्धि व विकास पर प्रभाव पडता है। कोहरा फसल में कीट व्याधियों को उत्पन होने के लिए अच्छी स्थिति भी उपलब्ध करता है। कोहरा शुष्क क्षेत्र वाली फसलों के लिए फायदेमंद भी है क्योंकि यह मिट्टी में कुछ मात्रा पानी भी बूंद बूंद के रूप में डाल कर नमी बनाये रखती है जिससे फसल को अपनी वृद्धि बनाये रखने में मदद मिलती है।

पाला : यह एक मौसमी घटना है और यह सतह के पास वायु तापमान 0 डिग्री सेन्टीग्रेड घटने से होता है। यह सामान्यता 1.25 से 2 मीटर मृदा के उचाई वाली हवा का तापमान 0 डिग्री सेन्टीग्रेड और इससे नीचे गिरने पर पाला पडता है। इससे पौधे सूख जाते है क्योंकि पौधे के अन्दर पाला कण ठोस में रूपान्तर हो जाने पर पौधे की कोशिकायें फट जाती है।

बाढ़ : बाढ़ आने के कई कारण हो सकते है। किसी बांध, नदी और किसी जलाशय के टूटने पर हो या भारी वर्षा से हो लेकिन इसका रूप बहुत व्यापक/बडा होता है। यह बहुत बडे पैमाने पर नुकसान पहुँचाता है। बाढ़ किसान के खेत की उर्वरा शक्ति कम व भूमी असमतल कर देती है। सन् 2006 में बाढ ने बाड़मेर में बहुत बडे पैमाने पर तबाही की है और अभी हाल ही में चैन्नई में बहुत विनाशकारी बाढ़ आयी है।

सूखा : सामान्यता किसी भी वर्ष में बारिस औसतन से 80 प्रतिशत कम होती है तो उसे सूखा वर्ष कहते है। जब सूखा होता है तो फसल उत्पादन प्रभावित होता है क्योंकि फसल के लिए पानी की उपलब्धता कम हो जाती है। दूसरी तरह से पानी को जमीन से निकालने के लिए बिजली और पैट्रोलियम की मांग बढ़ जाती है। सूखा पशुओं के उत्पादन को भी कम करता है। सरकार पर भी खाद्य पदार्थो के आयात के लिए खर्च बढ़ जाता है।

ओला वृष्टि : जब झंझा के कारण ओला पृथ्वी सतह पर गिरता है उसे ओला वृष्टि कहते हैं। ओला की परिमाप 5 मि.मी. की होती हैं और 15 सेमी. तक भी बन सकता हैं और वजन 0.5 कि.ग्रा. से ज्यादा तक भी हो सकता है। सामान्य ओला वृष्टि उत्तर भारत में फरवरी से मई तक होती हं। यह समय कृषि के हिसाब से अति महत्वपूर्ण हैं। इस समय सामान्य उत्तर भारत में गेहूं, सरसों, चना, चावल एवं सब्जी उगाते हैं। यह समय मुख्यतः फल बनने से पकने का होता हैं तो इस से ज्यादा नुकसान होता हैं और सर्दी के बजाय गर्मी में ज्यादा दस्तक देता हैं। सबसे ज्यादा ओला वृष्टि 6–7 बार प्रति वर्ष हिमाचल प्रदेश और उसके पडोसी राज्यों जैसे जम्मू–कश्मीर, पंजाब, हरियाणा आदि में होती

हैं। इन राज्यों में ओला वृष्टि की आवृति मार्च और अप्रैल मे ज्यादा हैं जो कि बागवानी फसलों सेब, आम व आड़ू को नुकसान पहुँचाता है। दूसरी तरफ राजस्थान, हरियाणा, पंजाब में अप्रैल और मई में गेहूं और सरसों का पकने का समय होता हैं।

तूफान : तूफान में हवा की गति बहुत तेज होती है। यह गति 50 से 150 किलो मीटर प्रति घण्टा के बीच में भी हो सकती हैं। इस पूरी घटना में बिजली गिरना, बादलों का फटना, तेज हवायें और तेज बौछारें भी साथ में हो सकती है।

धूल भरी आँधियां : भारत के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में सर्दी के दिनों हवाएं हल्की और कभी तेज चलती है और अप्रैल महीने से हवाएँ/हवा का प्रवाह बढने लगता है और मानसून से पहले मई और जून में बहुत खतरनाक आंधियां चलती है। हवा की दिशा सर्दी में सामान्यता उत्तर पूर्व से उत्तर में होती है। बाकी पूरे साल ज्यादातर दक्षिण–पश्चिम व पश्चिम दक्षिणी रहती है। राजस्थान के पश्चिम भाग जहां पर थार मरूस्थल है, धूल भरी आंधियाँ गर्मी के महीने में अक्सर आती रहती हैं। धूल के बारीक कणों को हवा के साथ उड़ाकर दूसरे स्थान पर लेजाना, इन आंधियों का प्रवाह वेग अधिक होने और ज्यादा समय तक चलने से रेत के टीले भी खिसक जाते हैं। इससे सिंचित क्षेत्रों में वाष्पीकरण ज्यादा होता है। हवा सघन होने से उपजाऊ मिट्टी उड़ जाती है।

खंड–2

फसल उत्पादन तकनीक

अध्याय - 4

मूँगफली की फसल के प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम के उपाय

कुलदीप सिंह जादौन[1], पि. पि. थिरुमलाईसामी[2], राम दत्ता[3], ऋतु मावर[4] एवं एच.एम. मीना[5]

1. प्रस्तावना
2. बीज एवं अंकुरित बीजों के रोग
3. पत्तियों में होने वाले कवकीय रोग
4. विषाणु जनित रोग
5. समेकित रोग प्रबन्धन

1. प्रस्तावना

मूँगफली की खेती भारत में खरीफ, रबी, गर्मी एवं वसंत ऋतु की फसल के रूप में की जाती है। यह फसल कई कीट और रोगों की चपेट में आती है। मूँगफली को प्रभावित करने के लिए 55 से अधिक रोगजनक सूचिबद्ध किये गये हैं, इनमें तना विगलन, ग्रीवा विगलन, एफ्ला जड़, टिक्का रोग (अगेती एवं पछेती), रोली तथा कलिका एवं तना ऊतकक्षय प्रमुख रोग हैं जो साधारणतया खरीफ एवं रबी दोनों मौसम में मूँगफली के उत्पादन को प्रभावित करते हैं। हालांकि, इन रोगों की गंभीरता अथवा घटनाएँ मौसम पर आधारित हैं। ये रोग मूँगफली की फली की उपज तथा चारे की गुणवत्ता को भी कम कर देते हैं। ग्रीवा विगलन, तना विगलन, एफ्लाजड़ तथा सूखी जड़ विगलन, बीज एवं अंकुरित बीजो के प्रमुख रोग हैं। यह बीमारियां रेतीली चिकनी–बलुई मिट्टी में फसल के अंकुरित बीजो की मृत्यदर को बढ़ा देते है, जिसके फलस्वरूप खेत में जगह–जगह पर कम या ज्यादा पौधे दिखाई देते हैं और साथ ही उपज भी 25–40 प्रतिशत तक कम हो जाती है इस फसल में पत्तियों पर आने वाले रोगों में टिक्का (अगेती एवं पछेती) एवं रोली रोग प्रमुख हैं, जो की आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण तथा बहुतायत पाये जाते हैं। यह रोग उपज में नुकसान पहुंचाते हैं, जो की कभी–कभी 70 प्रतिशत तक हो जाता है अभी हाल ही के कुछ वर्षो में अल्टरनेरिया पत्ती अंगमारी नामक रोग रबी की फसल में खेतों में नुकसान पहुँचाने लगा है।

विषाणु जनित रोगों में मूँगफली कलिका ऊतकक्षय, मूँगफली तना ऊतकक्षय, मूँगफली का मॉटल तथा मूँगफली का झुरमुट रोग आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है। यह विषाणु जनित रोग फसल की उपज में 60 प्रतिशत तक हानि पहुंचा सकते हैं। मूँगफली के प्रमुख रोगों को प्रबंधित करने के लिए कई तरह के तरीके अपनाए जा रहे हैं, जिसमें से मुख्यतयाः प्रतिरोधी / सहिष्णु किस्में, खेती के प्रमुख तरीके, जैविक–नियंत्रण तथा जरुरत के अनुसार कवकनाशियों का प्रयोग है। इस लेख में हम मूँगफली के प्रमुख रोगों को जानने तथा उनके प्रबंध के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों के बारे में जानकारी लेंगे जो की निम्नलिखित हैंः–

[1, 2]भाकअनुप– केन्द्रीय शुष्क क्षैत्र अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर – 342003
[2, 3, 4]भाकृअनुप–मूँगफली अनुसंधान निदेशालय, ईवनगर रोड, जूनागढ़ – 362001

2. बीज एवं अंकुरित बीजों के रोग

ग्रीवा विगलन (*एस्परजीलस नाइजर*): यह मूँगफली पैदा करने वाले लगभग सभी राज्यों में पाया जाता है, तथा इसके द्वारा किये जाने वाले नुकसान में पौधों की मृत्युदर 28 से 50 प्रतिशत तक होती है। बीज के उगने से पहले ही सड़ जाना, बीजांकुर का सड़ना, बीजांकुर में अंगमारी होना, पूरे पौधे की शीघ्रता से ग्लानी हो जाना या इसकी शाखाओ पर पाए जाने वाले लक्षणों के द्वारा पहचाना जा सकता है। प्रभावित पौधों का ग्रीवा क्षेत्र कटा हुआ एवं गहरे भूरे रंग का हो जाता है। मृदा में पाए जाने वाले कवक बीज (निवेश द्रव्य संरोप) ही संक्रमण का प्राथमिक स्रोत है। यह रोगजनक मृदा की निम्न आद्रता (16 प्रतिशत तक) के प्रति सहिष्णु है तथा यह कवक 31 से 35° सेंटीग्रेड में अच्छी तरह से विकसित होता है।

एफ्ला जड़ या पीला कवक (*एस्परजिलस फ्लेवस*): यह सभी मूँगफली पैदा करने वाले राज्यों में पाया जाता है। यह पीला कवक, एस्परजिलस फ्लेवस सामान्यतयः सडे एवं स्वस्थ दोनों ही तरह की फली के बीजों में पाया जाता है। यह बीजांकुर के निकलने के पश्चात प्रथम बीज पत्रों पर प्रकट होता है। इस रोग के द्वारा संक्रमित पौधों का आकार छोटा रह जाता है या अवरुद्ध हो जाता है तथा साथ ही पत्तियों का आकार भी कम हो जाता है, जिनमे पत्तियों की शिराएँ साफ हो जाती हैं, एवं पत्रक पर हरिमाहिनता हो जाती है। इस तरह के बीजांकुर में द्वितीय जड़ प्रणाली नहीं होती है, इस स्थिति को एफ्ला जड़ के नाम से जाना जाता है। अधिक परिपक्व एवं क्षतिग्रस्त बीजों तथा फलियों परएस्परजिलस कवक की पीली–हरी कालोनियां विकसित हो जाती है। मृदा में पाए जाने वाला कवक का बीज (निवेश द्रव्यः संरोप) ही संक्रमण का प्राथमिक स्रोत है। यह रोग कारक मृदा की निम्न आद्रता के प्रति सहिष्णु है, तथा यह कवक 25 से 35° सेंटीग्रेड तापमान के मध्य अच्छी तरह से विकसित होता है।

सूखा जड़ विगलन (*मेक्रोफोमिना फेसियोलिना*): इसे काला विगलन रोग के नाम से भी जाना जाता है। जो की राजस्थान, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश तथा महाराष्ट्र में छिटपुट जगहों पर पाया जाता है, इस रोगजनक की वजह से बीजांकुर की मृत्युदर बहुत बढ़ जाती है, जिससे पौधों की इष्टतम सँख्या में कमी आ जाती है एवं खेत में फसल छितरी हुई प्रतीत होती है। भूमि सतह से ठीक ऊपर, तने पर पानी से भीगे हुए परिगलित धब्बे नजर आते हैं। यदि प्रारंभिक संक्रमण की वजह से तने पर गड्ढे हो जाते हैं तो स्क्लेरोशिया (कवक के बीज) के बनने के साथ ही पौधों में म्लानी हो जाती है। तने का संक्रमित भाग कटा–फटा हो जाता है, जो की काला और सांवले रंग का प्रतीत होता है। जड़, फली और फली आधार भी सड़ने लगते हैं, तथा स्क्लेरोशिया के द्वारा ढक दिए जाते हैं एवं संक्रमित बीज काले हो जाते हैं। इस रोग की परपोषी परिसर क्षमता भी विस्तृत है। यह रोगकारक वैकल्पिक मृतजीवी है तथा मृदा में ही रहता है, संक्रमित मिट्टी, फसल के अंश एवं संक्रमित फलियां संक्रमण के स्त्रोत के रूप में कार्य करती है। नवोद्भिद् पौध के संक्रमण के लिए सही तापमान 29 से 35° सेंटीग्रेड है, फलियों के ऊपर संक्रमण के लिए यह 26 से 32° सेंटीग्रेड तक है। इसके स्क्लेरोशिया फसलों के अवशेषों, मृदा, संक्रमित फलियां, छिलकों तथा दानों के माध्यम से खेतों मे फैल जाती है।

तना विगलन (*स्क्लेरोशियम रोल्फसी*): इस रोगकारक की परपोषी परिसर क्षमता विस्तृत है। मूँगफली उगाने वाले राज्यों में यह रोग महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, ओड़िसा, एवं तमिलनाडु में बहुत गंभीर रूप से पाया जाता है। इस रोग के प्रमुख केंद्र बिन्दुओं के रूप में लातूर, रायचूर, धारवाड़, जूनागढ़ तथा हनुमानगढ़ को चिन्हित किया गया है। इस रोग के द्वारा 27 प्रतिशत या इससे भी अधिक नुकसान आँका गया है। इस रोग से मूँगफली के सूखे वनज तथा तेल की मात्रा में कमी को अप्रत्यक्ष नुकसान भी बताया गया है। प्रारंभिक लक्षणों में मिट्टी के संपर्क में आने वाले तने के भाग एवं शाखाओं की आंशिक या पूर्ण रूप से म्लानी हो जाती है। पत्तियाँ भूरे रंग की हो जाती हैं और म्लानी जैसी प्रतीत होती है अपितु, पत्तियाँ पौधों से जुडी रहती हैं। फली आधार (पेग) तथा फली का सड़ना एवं पत्तियों का मुरझाना, यह तना विगलन रोग से संक्रमित पौधों के कुछ लक्षण हैं। स्क्लेरोशिया भूमि में चार वर्षो से अधिक समय तक जीवित रह सकते है। इसके अलावा इस रोग की परपोषी परिसर क्षमता भी अधिक होती है। फसलों के अवशेष, 40 से 50 प्रतिशत मृदा आर्द्रता, जल धारण क्षमता के साथ दिन का तापमान 29–32° सेंटीग्रेड एवं रात्रि का 25° सेंटीग्रेड इस रोग के पनपने में मदद करते हैं।

3. पत्तियों में होने वाले कवकीय रोग

अगेती टिक्का रोग (*सर्कोस्पोरा अरेचिडीकोला*): अगेती टिक्का रोग मूँगफली उगाने वाले उत्तरी, दक्षिणी और मध्य राज्यों में पाया जाता है। इस रोग से फसल की उपज में 15 से 59 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। फलियों और दाने की उपज में नुकसान के अलावा, चारे की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह रोग साधारणतया बुवाई के 30 दिन में दिखाई पड़ता है। प्रारंभिक तौर पर पत्तियों की उपरी सतह पर गोल से अर्धगोलाकार बारीक हरिमाहिन धब्बे विकसित होते हैं, जो की बाद में भूरे रंग में बदलते जाते हैं, यह धब्बे पीले रंग के प्रभामंडल से घिरे हुए रहते है। कवक का बीजाणुकजनन प्रचुर मात्रा में होने के कारण पत्तियों की निचली सतह से यह धब्बे गहरे भूरे रंग के दिखाई देते है। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियाँ पूर्ण विकास से पूर्व ही गिर जाती हैं, यह रोग तने और शाखाओं तक भी फैल जाता है। रोगकारक कवक प्रभावित फसल के अवशेषों पर, मृदा या मूँगफली के संक्रमित किस्मों पर, अलिंगी बीजाणु (कोनिडिया) के माध्यम से जीवित रहती है। यह रोगजनक कुछ स्वतंत्र रूप से उगे हुए मूँगफली के पौधों पर भी जीवित रह सकता है। तापमान 25 से 30° सेंटीग्रेड, लम्बे समय तक पत्तियों का गीला रहना तथा सापेक्षिक आर्द्रता (<80 प्रतिशत) इस रोग के संक्रमण एवं विकास को बढ़ावा देते हैं।

पछेती टिक्का रोग (*फेएओसेरिओप्सिस पर्सोनाटा*): यह रोग आमतौर पर जहाँ भी मूँगफली बोई जाती है, वहाँ पर पाया जाता है और उपज में यह 15 से 59 प्रतिशत तक हानि करता है। फलियों और बीजों की उपज में नुकसान के अलावा, चारे की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह रोग सामान्यत 60 दिन की फसल से लेकर कटाई तक देखा जाता है। प्रारंभ में पत्तियों की उपरी सतह पर महीन हरिमहीन धब्बे विकसित होते हैं, बाद में यह अनियमित आकार के गहरे भूरे धब्बों में बदल जाते हैं। उन्ही पत्तियों की निचली सतह पर गहरे भूरे से

काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो की कवक के प्रचुर मात्रा में बीजाणुक जनन की वजह से होते है। रोग की गंभीर अवस्था में सारे धब्बे आपस में जुड़ जाते हैं, जिससे पत्तियाँ परिपक्व होने से पूर्व ही झड़ जाती है। तना तथा शाखाओं पर भी आयताकार धब्बे पाए जाते हैं। अगेती टिक्का रोग के रोगकारक की भांति ही पछेती टिक्का रोग का रोगकारक भी अलिंगी बीजाणु (कोनिडिया) के रूप में उत्तरजीवित रहता है, जो की भूमि में संक्रमित फसल के अवशेषों या संक्रमित मूँगफली के छिलके में एवं स्वतः उग जाने वाले मूँगफली के पौधों पर रहता है। तापमान 25–30° सेंटीग्रेड के बीच, पत्तो का लम्बे समय तक नम रहना और उच्च सापेक्षिक आर्द्रता (<80प्रतिशत) इस रोग के पक्ष में है।

रोली (*पक्सिनिया अरैकिडीस*): यह रोग मूँगफली उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है, परन्तु इसकी गंभीरता दक्षिणी राज्यों में अधिकतम पायी जाती है। रोली के द्वारा उपज में नुकसान की सीमा 10 से 52 प्रतिशत तक आंकी गई है। यह रोग उपज में नुकसान के साथ ही बीजों के आकार तथा तेल की मात्रा को भी घटा देता है। प्रारंभिक तौर पर पत्तियों की ऊपरी सतह पर हरिमाहीन धब्बे बनने लगते हैं, जबकि उसी पत्ती की निचली सतह पर नारंगी रंग के उभरे हुए धब्बे (युरिडो बिजाणु) दिखते हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियाँ परिगलित एवं सूखने लग जाती हैं, परंतु पौधे से जुडी रहती है। रोगग्रसित पौधों से दाने भी छोटे और सिकुड़े हुए बनते हैं। युरिडोबिजाणु के रूप में एवं मूँगफली के स्वतः उगे हुए पौधे, रोली रोग के संक्रमण में सहायक होते हैं। तापमान 200 सेंटीग्रेड, पत्तियों का लम्बे समय तक नम रहना एवं उच्च आर्द्रता, यह तीनों कारक रोली रोग को फैलाने एवं उपजने में मदद करते हैं। हवा का प्रवाह, बरसात की बूँदें एवं कीड़े भी इस रोग को एक फसल से दूसरी फसल में फैलाने में मदद करते हैं।

अल्टरनेरिया पत्ती अंगमारी (*अल्टरनेरिया टेनुइस्सिम*): पिछले कुछ वर्षों में, यह रोग रबी मूँगफली में गंभीर रूप से देखा जा रहा है। यह रोग फलियों कि उपज को 22 प्रतिशत तक तथा चारे की उपज को 63 प्रतिशत तक कम कर देता है, हालांकि यह रोग की गंभीरता पर निर्भर करता है। इस रोग के प्रभाव से चारे की गुणवत्ता पर भी बुरा असर पड़ता है। प्रारंभ में पत्तियों के उपरी भाग से जलना प्रारंभ होता है, जो की हलके हरे भूरे रंग के भट (भवी) आकार के धब्बे में परिवर्तित हो जाती हैं, तत्पश्चात् यह रोग पत्तियों के बीच तक फैल जाता है तथा पूरी पत्ती जली हुई दिखाई देती है। संक्रमण अवस्था में जली हुई पत्तियाँ अंदर की तरफ मुड जाती हैं एवं भंगुर हो जाती है। पौधे प्राथमिक निवेश द्रव्य संरोप का काम करते हैं एवं द्वितीयक प्रसार अलिंगी बीजाणुओं (कोनिडिया) द्वारा होता है। तापमान 20° सेंटीग्रेड से अधिक, लम्बे समय तक पत्तियों पर नमी का रहना एवं उच्च आर्द्रता रोग को बढ़ावा देती है, हवा में प्रवाह तथा कीड़ों के द्वारा भी यह रोग फसल में प्रसारित होता है।

4. विषाणु जनित रोग

मूँगफली कलिका ऊतक क्षय (मूँगफली कलिका ऊतक क्षय विषाणु): व्यापक रूप से वितरित, जगतियाल, हैदराबाद, लातूर, टीकमगढ़, रायचूर और मैनपुरी इसके प्रमुख चिन्हित स्थान है। यह बीमारी 30–90 प्रतिशत तक उपज में नुकसान

करती है। इस रोग का विशिष्ट लक्षण, कक्षीय प्ररोह का प्रचुरोद् भवन एवं पत्तियों का गंभीर रूप से विकत हो जाना है। अंतस्थ तथा कक्षीय कलियों का ऊतकक्षय भी होता है। इस रोगजनक की परपोषी परिसर क्षमता भी विस्तृत है तथा यह अलंकृत पौधों (जिन्निया, कोसमोस एवं सूरजमुखी), खरपतवारों में (जंगली पुदीनाः *एजरतम कोनिजोइदेस*, चरोताः *केसिआ तोरा*, काँटा गोखरू : *अकेनथोसपरमम हिसपिदियम*, कुदालियाः *देस्मोडियम ट्राईफोलियम*) एवं फसल पौधों में (टमाटर, बैंगन, मूंग, उडद, सेम और मटर) परजीवित रहता हैं। तापमान 30° सेंटीग्रेड और हवा की गति 10 किलोमीटर/घंटा थ्रिप्स (काष्ठकीट) के प्रवास को बढ़ाता है। थ्रिप्स की जनसंख्या अगस्त के अंत में तथा सितंबर में बहुत तेजी से बढ़ती है। जनसंख्या फिर से जनवरी एवं फरवरी में बढ़ती है और इसीलिए रबी मौसम की फसल को भी गंभीर रूप से नुकसान पहुँचता है।

मूँगफली माँटल (कर्बुर/चितकबरा) (मूँगफली माँटल विषाणु): यह रोग मुख्यतया आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात में पाया जाता है। इस रोग से फसल की उपज में 30 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। नई पत्तियों पर अनियमित आकार के गहरे हरे रंग के बड़े–बड़े धब्बे बनते है। हल्के कर्बुर लक्षण पारेषित प्रकाश में साफ दिखाई देते हैं। शिराओ के बीच में दबाव तथा पत्तियों के सिरों का ऊपर की तरफ मुड़ना, इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। संक्रमित पौधों में फलियाँ भी कम लगती हैं जिनका आकार भी छोटा होता है। यह विषाणु बीज जनित है, द्वितीयक प्रसार ऐफिड (माहू) प्रजातियों से होता है। यह रोगजनक कई महत्वपूर्ण फली वाले फसलों में (जैसे मूँगफली, सोयाबीन) तथा खरपतवारो (चकुंडाः *केसिया ओब्तुसिफोलिया*, बड़ा चकुंडाः *सी. लेप्तोकार्पा*, कसुन्दा/बड़ीकसोंदीः *सी. ओच्सिदेंतालिस* एवं पार्ष्णीपर्णी /जंगली गांजाः *देस्मोदियमकानुम*) में जीवित रह सकता है। प्राथमिक निवेश द्रव्यध्संरोप स्रोत बीज के माध्यम से एवं द्वितीयक प्रसार एफिड्स (माहू) के द्वारा होता है। लंबे समय तक सूखे का रहना भी माहू की जनसँख्या को बढ़ने में मदद करता हैं।

मूँगफली झुरमुट/गुच्छन (मूँगफली झुरमुट विषाणु): यह रोग राजस्थान, पंजाब, गुजरात, आंध्रप्रदेश एवं उत्तरप्रदेश में ज्यादा पाया जाता है, इन प्रदेशों में मूंगफली कि फसल रेतीली मिट्टी में ली जाती है। देर से संक्रमित पौधों में 60 प्रतिशत तक हो सकता है। नई पत्तियों पर चितकबरे धब्बे तथा हरिमाहीन वलय दिखाई देते हैं। पुरानी पत्तियों में गहरे हरे रंग की रंग उड़े हुए चितकबरे धब्बे दिखते हैं। शीघ्र संक्रमित पौधे गंभीर रूप से अविकसित एवं गहरे हरे रंग के रह जाते हैं। यह विषाणु पोलिमिक्सा ग्रेमिनिस नामक फंफूद तथा संभवतः मृदा सूत्रकमि में जीवित रहता है एवं इन्ही के द्वारा प्रसारित होता है। मूँगफली के अलावा यह विषाणु गेहूँ, एवं कई सारे दूसरे खरपतवारों को भी संक्रमित करता है। इस विषाणु का प्रसार बीजों के द्वारा कम से कम होता है।

मूँगफली का तना ऊतक क्षय (मूँगफली का तना ऊतक क्षय विषाणु): यह रोग आंध्रप्रदेश के अनंतपुर जिले में बहुतायत पाया जाता है, साथ ही इससे सटे हुए कुछ जिलो में जैसे कुडप्पा, कुरनूल,चित्तूर एवं कर्नाटक के रायचूर में भी पाया जाता है। इस रोग के विशिष्ट लक्षण तने तथा अंतस्थ पत्तियों का ऊतकक्षय होना है, तत्पश्चात् पौधे की मृत्यु हो जाना है। इस विषाणु तथा इसके वाहक (थ्रिप्स) की परपोषी परिसर क्षमता भी (गाजर घास, लोबिया, उड़द, और गेंदा) विस्तृत है।

5. समेकित रोग प्रबन्धन

मृदा में उपस्थित रोग तथा नाशीजीव के सन्द्रव्य को नष्ट करने के लिए गर्मियों में 8–10 इंच की गहराई तक जुताई करें। मूँगफली में स्वतः उगे हुए पौधों, फसल अवशेषों तथा खरपतवारों कों नष्ट करें। कीटों के ग्रसन तथा रोग से मुक्त अच्छी गुणवत्ता वाले प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें। कीट एवं रोग से सहिष्णु किस्मों का ही प्रयोग करें। अगेती बुवाई से पर्ण सुरंगक, सफेद लट तथा ग्रीवा विगलन रोग के नुकसान से काफी हद तक बचा जा सकता। ग्रीवा विगलन रोग के संक्रमण कि संभावना कम करने के लिए गहरी बुवाई से बचें। मृदा में उपस्थित तना विगलन रोग के सन्द्रव्य को नष्ट करने के लिए फसल चक्र में कपास, गेहूँ, मक्का, ज्वार, प्याज तथा लहसुन को शामिल करें या मोठ के साथ मिश्रित फसल करें। थ्रिप्स द्वारा मूँगफली कलिका ऊतक क्षय रोग का परिगमन कम करने के लिए बाजरा या मक्का को अन्तःसस्य के रूप में करें। टिक्का तथा रोली रोग की संक्रामकता कम करने के लिए मूँगफली की अन्तःसस्य, बाजरा या ज्वार या मक्का या अरहर के साथ करें। ग्रीवा विगलन एवं तना विगलन का संक्रमण कम करने के लिए अरंडी या नीम या सरसों की खल को 500 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से मृदा में बुवाई के 15 दिन पहले या कुंड में बुवाई के समय मिलायें। मृदा में बीज एवं मृदा जनित रोगों की रोकथाम के लिए, *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* या *ट्राइकोडर्मा विरिडी*, 10 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से अथवा टेबुकोनाजोल डी एस 1.5 ग्राम/किलोग्राम बीज दर से या कार्बेन्डाजिम पाउडर 2 ग्राम/किलोग्राम बीज दर से या मेंकोजेब 3–4 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार करें। और *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* या *ट्राइकोडर्मा विरिडी* से उपचारित गोबर की खाद (4 किलोग्राम/250 किलोग्राम गोबर खाद) अथवा अरंडी की खल 200 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से मिलायें। सूत्रकमि का प्रकोप कम करने के लिए बुवाई के सात दिन पहले नीम या अरंडी की खल, 1 टन प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग करें, अथवा इस मृदा–उपचार के साथ–साथ, कारबोसल्फान (25 डी अस) 3% सक्रिय तत्व (वजन के आधार पर) बीजोपचार करें। पत्तियों को खाने वाले नाशीजीवों का नियंत्रण करने के लिए 5 मिली नीम का तेल तथा 1 ग्राम डिटर्जेंट पाउडर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर या नीम के बीजों का सत (5%जलीय घोल) का छिड़काव करें। यह उपचार टिक्का एवं रोली रोग के प्रकोप को भी कम करता है। आवश्यकतानुसार ही कवकनाशियों का प्रयोग करें। टिक्का एवं रोली रोग के लिये प्रोपिकोनजोल 25 ए सी (0.1%) या हेक्जाकोनाजोल 5% ए सी (1 मिली/लीटर पानी) या टेबुकोनजोल 25.9% एम/एम इ सी (1 मिली/लीटर) का छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार रस चूसने वालो कीटों के प्रबन्धन के लिये रसायनों का छिड़काव करें। थ्रिप्स और लीफ होप्पर्स के लिये डाईमिथोएट 30 इ सी 2 मिली/लीटर या मोनोक्रोटोफास 36 एस एल 2.5 मिली/लीटर या एमिदाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 0.3 मिली/लीटर या थिअक्लोप्रिड 480 एस सी 0.3 मिली/लीटर या थिओमेथोजम 25 डब्लू जी 0.2 ग्राम/लीटर या एसेटमीप्रिड 20 एस पी 0.2 ग्राम/ लीटर की दर से पानी में घोलकर बुवाई के 25 से 30 दिनों के बीच छिड़काव करें। सूत्रकमियों के प्रबन्धन के लिये कारबोफुरान 3 जी 1–2 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर की दर से बुवाई के की कुंड/लाइन में मृदा–उपचार करें।

अ. पत्तियों में होने वाले कवकीय रोग

अगेती टिक्का रोग

पछेती टिक्का रोग

अल्टरनेरिया पत्ती अंगमारी

रोलीरोग

ब. बीज एवं अंकुरित बीजों के रोग

एफ्ला जड़

ग्रीवा विगलन

सूखा जड़ विगलन

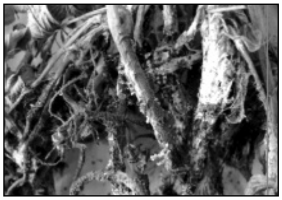

तना विगलन

स. विषाणु जनित रोग

अध्याय - 5

बैंगन के प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण

केशव मेहरा[1], वीर सिंह[2], अमित यादव[3] एवं पुष्पा सिंह[4]

1. प्रस्तावना
2. बैंगन में प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण

बैंगन विभिन्न सब्जियों के बीच प्रचलित सब्जी है और देश भर में बड़े पैमाने पर इसको पैदा किया जाता है। इसके नरम और कोमल होने के कारण बैंगन पर कीट हमले का खतरा अधिक होता है, कीटों से 35–40 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। इन कीटों के कारण होने वाले नुकसान को कम करने के लिए, सही पहचान कर सही समय में प्रबंधन करना जरूरी है।

1. प्रस्तावना

बैंगन को ''एगप्लांट'' के नाम से भी जाना जाता है। यह सब्जी भारत की देशज है। भोजन में आलु के बाद बैंगन का ही नम्बर आता है। पोषण कि दृष्टि से बैंगन में प्रचुर मात्रा में खनिज लवण तथा विटामिन पाये जाते हैं, साथ ही इसमें जल भी 92 प्रतिशत तक पाया जाता है। विश्व में चीन के बाद भारत में बैंगन कि सबसे अधिक पैदावार होती है। बैंगन की फसल कई प्रकार के हानिकारक कीटों द्वारा प्रभावित होती है जिनकी सही पहचान तथा नियंत्रण अधिक पैदावार हेतु अति आवश्यक है।

2. बैंगन के प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण

हद्दा भृंग/इपिलैकना भृंग (*इपिलेकना डोडेकेस्टिग्मा*): यह कीट मध्यम आकार का गोल, पीलापन लिए हुए गहरे भूरे अथवा भूरे रंग का होता है। इनका पृष्ठ भाग उठा हुआ चित्तीदार होता है जिन पर अनेक काले धब्बे पाये जाते हैं। इनके शिशु (गिडार) हल्के पीले रंग के होते हैं तथा शरीर पर कांटे होते हैं। इस कीट के अण्डे सिगार के आकार के हल्के पीले रंग के होते हैं। शिशु (गिडार) तथा वयस्क दोनों ही पत्तियों के मुलायम व हरे भाग को खुरच कर खा जाते हैं तथा पत्तियों को बिल्कुल जालीदार बना देते हैं जिससे पत्तियों की आकृति सीढ़ीनुमा दिखाई देती है। प्रभावित पत्तियां सूख कर गिर जाती है ।

नियंत्रण

- इस कीट के वयस्क, शिशुओं तथा अण्डों के समूह को नष्ट कर देना चाहिए ।
- खेत के आस पास उगे हुए अन्य परपोषी पौधों व खरपतवारों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए ।

[1]शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर
[2]आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर
[3]शोध छात्र, कृषि कीट एवं जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
[4]कृषि कीट एवं जन्तु विज्ञान विभाग, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार

- इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु मैलाथिआन 50 ई.सी. 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें ।

प्ररोह एवं फल बेधक (ल्यूसीनोडेस ओर्बोनेलिस): यह बैंगन का सबसे विध्वंशकारी नाशीजीव है तथा व्यापक रूप से फैला हुआ है। इस कीट के वयस्क मध्यम आकार के होते हैं तथा पंख सफेद रंग के होते हैं जिन पर भूरे रंग के कई धब्बे होते हैं। इनकी सूंडि हल्की गुलाबी रंग की होती है तथा पीठ पर बैंगनी रंग की धारियां होती है। आरम्भिक अवस्था में ये सूंडियां प्ररोहों में प्रवेश कर जाती है तथा छोटे फलों व पुष्पों में प्रवेश कर उन्हें अंदर ही खाती रहती है जिससे प्ररोह मुरझाकर झुक जाते हैं। इस कीट के कारण फलों पर आक्रमण का कोई बाहरी लक्षण नहीं दिखाई देता है बाद में ये सूंडियां फलों में छेद कर देती हैं जो निकास छिद्र के रूप में दिखाई देता है। ऐसे फल खाने योग्य नहीं होते हैं। यह कीट अत्यधिक ठंडे मौसम के अतिरिक्त वर्षभर सक्रिय रहते हैं । इस कीट से होने वाला नुकसान फसल की रोपाई के तुरन्त बाद आरम्भ हो जाता है तथा फलों की तुड़ाई तक बना रहता है ।

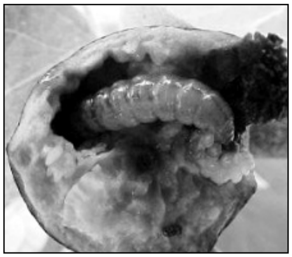

नियंत्रण

- आरम्भिक अवस्था में क्षतिग्रस्त प्ररोहों को नष्ट कर देना चाहिए ।
- इस कीट के वयस्कों पर नियंत्रण हेतु बड़े पैमाने पर फंदे में फांसने के लिए 5 फिरॉमान फंदे प्रति एकड़ की दर से लगाये जाने चाहिए तथा 15–20 दिन के अंतराल पर ल्यूर को बदल देना चाहिए ।
- नीम के तेल (2 प्रतिशत) का उपयोग भी लाभप्रद रहता है ।
- इस कीट के नियंत्रण हेतु एक–एक सप्ताह के अंतराल पर 4–5 बार 1 से 1.5 लाख प्रति हैक्टेयर की दर से ट्राइकोग्रामा ब्रेसीलियोन्सिस के अण्डे पर जीव्याभ को छोड़ना चाहिए ।
- बेधक के नियंत्रण हेतु व क्षति को कम करने के लिए रोपाई के 25 और 60 दिन बाद पौधों की कतारों के साथ–साथ मिट्‌टी में 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से नीम की खली का उपयोग दो खुराकों में करना चाहिए। यदि तापमान 300 से अधिक तथा हवा तेज चल रही हो तो इसका उपयोग न करें।
- इनके रासायनिक नियंत्रण हेतु पौधे रोपने के एक सप्ताह पश्चात् फोरेट 10 प्रतिशत कण 15 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से पौधों की कतारों में डालना चाहिए ।
- क्वीनालफॉस 25 ई.सी. अथवा ट्राइऐजोफोस 40 ई.सी. 0.8 मि.ली. प्रति लीटर पानी के छिड़काव से बेधक का नियंत्रण किया जा सकता है ।

चेपा (एफिस गोसिपी): इस कीट के शिशु तथा वयस्क हल्के हरे पीले रंग के होते हैं। ये बहुत ही छोटे व मुलायम कीड़े होते हैं। इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनों ही पत्तियों तथा कोमल टहनियों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियां पीली होकर सूख जाती है तथा नीचे की ओर झुक जाती है। इस

कीट के उदर भाग में दो मधु नलिकाएं होती है जिससे मधु जैसा जहरीला पदार्थ पत्तियों पर छोड़ते हैं। इस मधु जैसे चिपचिपे पदार्थ पर फफूंद की एक मोटी काली परत प्रभावित पौधे पर जमा हो जाती है। जिससे पौधे को क्षति पहुंचती है।

नियंत्रण

- खेत में 2 से 3 प्रति एकड़ की दर से पीले चिपचिपे प्रपंच लगाएं।
- इस कीट के नियंत्रण हेतु एक–एक सप्ताह के अंतराल पर एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत के 2 से 3 छिड़काव करें।
- इस कीट के परभक्षी मित्र कीट जैसे कॉक्सीनेला सेप्टमपंकटाटा, क्राइसोपा व सिरफिड मक्खी इत्यादि की संख्या अधिक होने पर कीटनाशकों का प्रयोग न करें तथा साथ ही इनको बढ़ावा देना चाहिए ।
- इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु 0.5 मि. ली. प्रति लीटर की दर से इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. या थाओमेथॉक्सम या 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से एसिटामाईप्रिड का छिड़काव करें ।

पत्ती मोडक (यूब्लेमा ऑलीवेसीया) : यह कीट सफेद भूरे रंग के वयस्क होते हैं आगे वाले पंख भूरा रंग लिए हुए होते हैं तथा पिछले पंखों का रंग सफेद होता है। इस कीट की इल्ली बैंगनी भूरे रंग की होती है तथा पीले रंग के धब्बे शरीर पर होते हैं तथा पूरा शरीर रोमों से ढका रहता है। इस कीट की इल्लियां पत्तियों के हरे भाग को खाकर उनको अंदर की तरफ लपेट देती है। कुछ इल्लियां प्ररोहों में प्रवेश कर जाती है और पौधे के कोमल भागों को खाकर उनको क्षति पहुंचाती है जिससे पौधा मुरझाकर सूख जाता है।

नियंत्रण

- इल्लियों द्वारा मोडी गई समस्त पत्तियां इल्लियों सहित एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए ।
- इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. अथवा ट्राइएजोफॉस 40 ई.सी. का छिड़काव करना चाहिए ।

पत्ती फुदका (एमरास्का बीगुटुला बीगुटुला): इस कीट के वयस्क पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं। इनका आकार तिकोना होता है तथा इसके आगे वाले पंखों के पिछले भाग पर काली बिंदिया पाई जाती है। इस कीट के शिशु पंखहीन हरे–पीले रंग के होते हैं और ये पत्तियों की निचली सतह पर बड़ी संख्या में पाए जाते हैं ओर ये बहुत ही अनोखे ढंग से तिरछा चलते हैं। इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनों ही पत्तियों का रस चूसकर उनको क्षति पहुंचाते हैं जिससे संक्रमित पत्तियां पीली

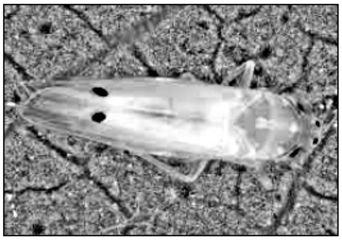

पड़कर मुरझाने लगती है फलस्वरूप पौधे की बढ़वार रूक जाती है। यह कीट छोटी पत्ती (लिटिल लीफ ऑफ ब्रिंजल), माइकोप्लाज्मा जनित तथा विषाणु द्वारा जनित मोजाइक रोगों के वाहक होते हैं।

नियंत्रण

- नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
- इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु 0.5 मि. ली./लीटर की दर से इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. या थाओमेथॉक्सम या 0.3 मि.ली./लीटर पानी की दर से एसिटामाईप्रिड का छिड़काव करें।
- इस कीट के प्राकृतिक शत्रु क्राइसोपा व परभक्षी मकड़ी की संख्या ज्यादा होने पर कीटनाशकों का प्रयोग न करें ।

बैंगन का मीली बग (कोकेडोहाइस्ट्रिक्स इन्सोलिटा): ये कीट छोटे व मुलायम शरीर के होते हैं। इनका शरीर सफेद रंग के मोम से ढका होता है। इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनों ही पत्तियों तथा मुलायम टहनियों का रस चूसते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर इनका भारी झुंड देखा जा सकता है जिनके द्वारा मोम का स्त्रावित होने से पत्ती पर एक मोटी परत बन जाती है। इन कीटों द्वारा शहद जैसे चिपचिपे पदार्थ का स्त्रावण होता है जिससे पौधों पर काले रंग की फफूंद उग जाती है तथा पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया प्रभावित होती है फलस्वरूप पौधे की पैदावार भी रूक जाती है।

नियंत्रण

- इस कीट के नियंत्रण हेतु एक–एक सप्ताह के अंतराल पर एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत के 2–3 छिड़काव करें।
- इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु 0.5 मि. ली./लीटर की दर से इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. या 0.3 मि.ली./लीटर की दर से एसिटामाईप्रिड का छिड़काव करें।

अध्याय - 6

शुष्क क्षेत्र में फलों की उन्नत–कृषि तकनीक

हरिदयाल[1], पी.एस. भाटी[2] एवं सुशील कुमार शर्मा[3]

1. प्रस्तावना
2. शुष्क क्षेत्र में फल वृक्ष लगाने से लाभ
3. शुष्क क्षेत्र के फलों की विशेषताएं
4. मृदा के अनुसार फल वृक्षों कर चयन
5. शुष्क क्षेत्र के फल वृक्षों की प्रजातियां
6. शुष्क क्षेत्र में फल वृक्षों को लगाना एवं उनका रखरखाव

1. प्रस्तावना

फल प्रकृति के द्वारा दिया गया एक ऐसा प्राकृतिक उपहार (तोहफा) है जो कि एक भोजन के रूप में, पेय पदार्थ, विटामिन व खनिज लवणों का खजाना, औषधीय गुणों से परिपूर्ण, साफ–सुथरा पैक किया हुआ लुभावना खाद्य पदार्थ, जो आसानी से खोलकर जरूरत के अनुसार खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग किया जा सकता हैं। जिसे संरक्षित भोजन कहा जा सकता है। इसके अलावा फलवृक्ष जीवित प्राणियों को जीवन दायिनी ऑक्सीजन प्रदान करता है और इसके बदले में जीवित प्राणियों के द्वारा छोड़ी गयी कार्बन डाईऑक्साइड गैस को ग्रहण करता है। फलवृक्ष पर्यावरण की दृष्टि से, मृदा उर्वरता बढाने व भूमि कटाव रोकने की दृष्टि से काफी उपयोगी हैं। इनका उत्पादन प्रति इकाई अधिक होता है और लागत कम आती है। मरू प्रदेश जहाँ पर असीमित व असमय वर्षा होती है तथा भूमि भी लवणीय व क्षारीय अत्यधिक हैं ऐसी भूमि पर फलोत्पादन करना अधिक लाभप्रद है, जो कि एक नकदी फसल के रूप में उगायी जाती हैं जिसका अर्थव्यवस्था पर भी अच्छा प्रभाव पडता हैं। मानव का खानपान स्तर गिरने से, जरूरत के अनुसार सभी पोषक तत्व न मिलने के कारण स्त्रियाँ, पुरूष व बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। प्रकृति के द्वारा दिये गये फलों में विटामिन व खनिज लवणों का खजााना है। फलोत्पादन से देश की आहार गुणवत्ता बढ़ती है साथ ही साथ मानव के स्वास्थ्य में सुधार आता है। जिसके कारण मानव की कार्य क्षमता भी बढ़ जाती है।

2. शुष्क क्षेत्र में फल वृक्ष लगाने से लाभ

वातावरण की शुद्धता: अन्य वनस्पतियों की भांति फलदार पेडों का भी वातावरण को शुद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान है। फलदार पेड जीवित प्राणियों को प्राणवायु (ऑक्सीजन) देते हैं और वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड गैस लेकर अपना भोज्य पदार्थ बनाते हैं। इस प्रकार वायुमण्डल में उपस्थित ऑक्सीजन व कार्बन डाईऑक्साइड का सन्तुलन बनाये रखते हैं।

फल वृक्षों से भूमि संरक्षण में सुधार: शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में वायु व जल के द्वारा अधिक क्षरण होता हैं भूमि की 10 मि.मी. ऊपरी परत बनने में 100 से 400 वर्ष लग जाते हैं। जबकि भूमि क्षरण द्वारा प्रतिवर्ष 6 अरब टन मृदा नष्ट हो जाती है। भारत वर्ष में आधे से ज्यादा भाग इस समस्या से ग्रस्त हैं।

[1–3]कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर

ऐसी भूमि वृक्षारोपण के लिए लाभदायक होती हैं। फल वृक्षों के साथ–साथ शोभाकारी वृक्षों को लगाने से मिट्टी को एक सुरक्षा कवच प्रदान करती है और सदियों से निर्मित भूमि परत को संजोये रखती हैं।

फल वृक्षों से पर्यावरण में सुधारः वर्तमान समय में बढता हुआ वायु व ध्वनि प्रदूषण एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। इसे रोकने के लिए सघन वृक्षारोपण आवश्यक है। फलोत्पादन से वातावरण को शुद्ध बनाने में मदद मिलती है। वृक्षों से जीवनदायिनी ऑक्सीजन मिलती है और कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा वातावरण में घटती है। इस तरह वातावरण में परिस्थिति का संतुलन बना रहता है।

अयोग्य भूमि का उपयोग भारत वर्ष में फलदार वृक्षों की खेती के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता हैं, जिसमें खाद्यान्न, तिलहन, दलहन, फसलों की व्यावसायिक खेती सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती हैं, फलदार वृक्ष ऊँची–नीची ढलानदार अम्लीय, क्षारीय, लवणीय तथा कम पानी में लगाये जा सकते हैं। ऐसी भूमि में ऑवला, लसोडा, बेर, सीताफल, फालसा, करोंदा, बेल, जामुन, शहतूत इत्यादि फल आसानी से लगाये जा सकते हैं।

औषधीय महत्वः फलदार वृक्ष भी अन्य वनस्पतियों की तरह औषधियाँ प्रदान करते हैं। वैसे प्रत्येक वृक्ष में कुछ न कुछ औषधीय गुण होते हैं।

आँवलाः इसे अमृत फल कहा जाता है यह विभिन्न रोगों जैसे अम्लपित्त, अर्जीण, कफ, खांसी, नेत्र ज्योति, बालों आदि के लिए लाभकारी हैं तथा त्रिफला का यह मुख्य घटक भी हैं।

अमरूदः इसके फलों को आग में भूनकर खाने से खांसी में राहत मिलती है तथा फल खाने से पेट साफ रहता है।

बेलपत्रः इसके फलों का जूस पेट की बीमारियों के लिए बहुत ही उपयोगी हैं फल व पत्तियों के सेवन से पेट के विकारों जैसे पेचिस, आँव व दस्त रोग से छुटकारा मिल जाता हैं।

अनारः यह शक्ति वर्द्धक फल है जो मस्तिष्क को शीतलता व ताजगी प्रदान करता है। फलों का छिलका व तनों की छाल दस्त की बीमारियों में काम आता है।

जामुनफलः इसका फल व गुठली का चूर्ण मधुमेह के लिए लाभकारी है इसके फलों का रस दस्त को कम करके बहुत आराम पहुँचाता है।

आयः धान्य फसलों की तुलना में फलों से प्रति इकाई क्षेत्र फल में उत्पादन एवं आय अधिक मिलती है। फलों को उगाने से लागत की अपेक्षा मुनाफा अधिक होता है तथा निर्यात करने से विदेशी मुद्रा अर्जित होती है जिससे हमारे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

3. शुष्क क्षेत्र के फलों की विशेषताएं

शुष्क क्षेत्र में उगने वाले फल वृक्ष जलवायु व वातावरण के अनुरूप हो जाते हैं जो विषम परिस्थितयों में सफलतापूर्वक अच्छी तरह पनप जाते हैं इन फल वृक्षों में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं।

- गहरा एवं विस्तृत जडतन्त्र
- सूखा बर्दास्त करने की क्षमता
- हवा के झोके के प्रति सहनशीलता
- लवण सहन करने की क्षमता

4. मृदा के अनुसार फल वृक्षों कर चयन

मृदा के अनुसार निम्न फलवृक्ष उगाये जा सकते हैं।

लवणीयता व क्षारीयता के प्रति अधिकतम सहनशील फलवृक्ष : बेर, आँवला, गूंदा, अनार, खजूर, करोंदा, जामुन, इमली, कैर, पीलू, फालसा

लवणीयता व क्षारीयता के प्रति मध्यम सहनशील फलवृक्ष : शहतूत, नींबू, अमरूद व बेलपत्र

लवणीयता व क्षारीयता के प्रति न्यूनतम सहनशील फलवृक्ष : पपीता

5. शुष्क क्षेत्र के फल वृक्षों की प्रजातियां

बेर : गोला, सेव, उमरान, इलायची, कैथली, मुडिया, सोनोर 5, वनारसी–कडाका इत्यादि।

आँवला : कंचन, चकैया, एन. ए.–7, एन.ए.–10, कृष्णा, फ्रांसिस, लक्ष्मी 52 इत्यादि।

अनार : जालोर सीडलेस, गणेश, मृदुला, सिन्दूरी एवं रूबी।

खजूर : हलावी, बरही, खुनेजी, जाहिदी, सेवी, खलास, मेदजूल, खदरावी, सामरान इत्यादि।

नींबू : कागजी लाइम बारहमासी।

बेलपत्र : नरेन्द्र बेल 5, नरेन्द्र बेल 7, नरेन्द्र बेल 9, पन्त अपर्ण, पन्त सुजाता, पन्त उर्वशी, धारा रोड, कागजी इटावा, देवरिया लार्ज, कागजी गोंडा, और मिर्जापुरी इत्यादि।

6. शुष्क क्षेत्र में फल वृक्षों को लगाना एवं उनका रखरखाव

पौधे लगाना : गर्मी के दिनों में पौधों की किस्म के अनुसार पौधे लगाने की दूरी तय कर 1x1x1 मीटर आकार के गड्ढे खोदकर खुला छोड देते हैं और तेज धूप लगने के पश्चात उसमें एक भाग मिट्टी, एक भाग बालू, एक भाग मीगणी या गोबर की सडी खाद या वर्मी कम्पोष्ट तथा 50 से 100 ग्राम एण्डोसल्फॉन या क्यूनॉलफॉस पाउडर मिलाकर वापिस गड्ढे में भर देते हैं और मानसून के समय पौधें रोप देते हैं अगर पानी के उचित साधन हैं तो फरवरी–मार्च के महीने में पौधों की रोपाई कर सकते हैं।

सिंचाई : पौधों की अच्छी वृद्धि व सफल उत्पादन के लिए सिंचाई करना अति आवश्यक है पौधों की छोटी अवस्था पर समय से सिंचाई करना चाहिए।

तालिका न. 1 शुष्क क्षेत्रीय पौधे व लगाने की दूरी

1. बेर	6 x 6 मीटर	8. करोंदा	5 x 5 मीटर
2. ऑवला	8 x 8 मीटर या 10 x 10 मीटर	9. बेलपत्र	8 x 8 मीटर
3. अनार	5 x 5 मीटर या 5 x 4 मीटर	10. जामुन	8 x 8 मीटर
4. खजूर	8 x 8 मीटर	11. अंजीर	5 x 5 मीटर
5. गूंदा (लसोड़ा)	6 x 6 मीटर	12. फालसा	2 x 2मीटर
6. नींबू	6 x 6 मीटर	13. सीताफल	5 x 5 मीटर
7. अमरूद	8 x 8 मीटर	14. शहतूत	6 x 6 मीटर

फलदार पौधों की गर्मी के दिनों में 7–10 दिन के अन्तराल पर तथा सर्दियों के दिनों में 12–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना चाहिए। लेकिन इस बात का ध्यान जरूर रखें कि एक जगह पर पानी अधिक समय तक एकत्रित नहीं होना चाहिए अन्यथा पौधे खराब हो जायेंगे।

निराई गुडाई: बगीचे में खरपतवार पौधों के पोषक तत्व ले लेते हैं जिससे उनकी बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। खरपतवारों को खुरपी की मदद से निकाल कर निकाई–गुडाई देना चाहिए। गुडाई करने से मिट्टी पोली व भुर भुरी हो जायेगी तथा उसमें वायु संचार भली भांति हो जायेगा तथा उसमें पानी ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जायेगी।

कीडे व बीमारियां: पौधों को प्रारम्भिक अवस्था पर कीडे व बीमारियों से बचाना अति आवश्यक है। प्रारम्भिक अवस्था पर सबसे ज्यादा प्रभाव दीमक का होता है, जो सम्पूर्ण पौधे को नष्ट कर देती है। इससे बचाव हेतु फोरेट 10 जी 10 ग्राम प्रति पौधा या क्लोरोपाइरीफॉस 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों के थालों में डालना चाहिए। इसके अलावा छाल भक्षक कीट व तना छेदक कीट भी पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं इनकी रोकथाम के लिए पौधों पर 0.1 प्रतिशत रोगर के 2–3 छिडकाव 7 दिन के अन्तराल पर फायदेमन्द हैं। छेद किये हुए तनों में सल्फॉस की गोलियां छिद्र में रखकर गीली मिट्टी से छिद्र को बन्द कर देना चाहिए। बगीचे की जुताई करके साफ सफाई करनी चाहिए।

वायुरोधक पौधे लगाना: बगीचे की सुरक्षा, सफल बढ़वार व फलोत्पादन में वायुरोधक पौधों का बहुत महत्व है। फूल आते समय गर्म व ठण्डी हवायें बहुत नुकसान करती हैं जिससे पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हैं। ये हवायें उत्तर व पश्चिम दिशाओं से आती हैं। इन हवाओं से बचाव हेतु उत्तर व पश्चिम दिशा में हवा की तीव्र गति को रोकने के लिए नीम, गूंदा, जामुन, शीशम, खेजडी, व सुबबूल के पौधे बगीचे की मेड पर लगाने चाहिए। फलदार पौधों को खेत की मेड पर लगाने से हवा रोकने के अलावा कुछ उपज भी मिल जाती है।

अध्याय - 7

एजोला– पशुओं के लिए वरदान

शिवमूरत मीणा[1] एवं धनराज शर्मा[2]

1. प्रस्तावना
2. एजोला की विशेषताएं
3. एजोला इकाई तैयार करने की विधि
4. एजोला का रखरखाव व सावधानियां
5. एजोला पानी से पुष्प व सब्जी की खेती में लाभ

1. प्रस्तावना

राजस्थान में पशुपालन व्यवसाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को ठोस आधार प्रदान करता है। लघु सीमान्त किसानों, ग्रामीण महिलाओं व भूमिहीन कृषि मजदूरों को रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। पशुधन सम्पदा की वृद्धि के साथ कमजोर वर्ग के लोगों का आर्थिक स्तर ऊँचा उठाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि राज्य में पशुपालकों तक हरा चारा उत्पादन की कोई उन्नत तकनीकी पहुंचे, ताकि पशुओं को वर्ष भर हरा चारा मिल सके।

पशुपालकों की तरफ से हरे चारे की कमी व सस्ते बांट की कमी की समस्या प्रमुखता से उठायी जाती रही है। बरसात के मौसम के अलावा पशुओं को फसल अवशेष एवं भूसे पर पालना पड़ता है। जिससे पशु बढ़ोत्तरी, उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल व विपरीत असर पड़ता है। कृषि विज्ञानकेन्द्र के पशुपालन वैज्ञानिक शिवमूरत मीणा ने अजोला को राजस्थान ETV के अन्नदाता कार्यक्रम में पहली बार देखा तो बरबस ही इस जादुई आकर्षक वनस्पति जलीय फर्न में धौलपुर करौली क्षेत्र के पशुपालकों के लिए आशा की किरण दिखाई दी।

एजोला के गुण : एजोला जल सतह पर मुक्त रुप से तैरने वाली जलीय फर्न है। यह छोटे–छोटे समूह में सघन हरित गुच्छ की तरह तैरती है। भारत में मुख्य रुप से एजोला की जाति एजोला पिन्नाटा पायी जाती है। यह काफी हद तक गर्मी सहन करने वाली किस्म है।

2. एजोला की विशेषता

- यह जल में तीव्र गति से बढ़वार करती है।
- यह प्रोटीन आवश्यक अमीनों अम्ल, विटामिन 'ए', विटामिन 'बी–12' तथा बीटाकैरोटीन, कैल्शियम, फैरस, कापर एवं मैग्नीशियम से भरपूर है। इसमें गुणवत्ता युक्त प्रोटीन व निम्नलिखित तत्व होने के कारण मवेशी इसे आसानी से पचा लेते हैं।
- शुष्क वजन के आधार पर पोषक तत्वों की उपलब्धता इस प्रकार है–

  प्रोटीन– 20–30 प्रतिशत

  वसा– 20–30 प्रतिशत

  खनिजतत्व– 50–70 प्रतिशत

  रेशा– 10–13 प्रतिशत

[1]सहायक प्रोफेसर, पशुपालन, कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर
[2]कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर

- बायो–एक्टिव व बायो–पॉलीमर की पर्याप्त मात्रा
- एजोला औसतन 1.5 किग्रा./वर्गमीटर की दर से प्रति सप्ताह उपज देती है।
- यह फर्न तीन दिन में दुगनी हो जाती हैं।
- यह पशुओं का आदर्श आहार, जानवरों के लिए प्रति जैविक तथा भूमि उर्वरता शक्ति को बढ़ाने का कार्य करती हैं तथा इसकी उत्पादन लागत काफी कम हैं।
- रिजका एवं संकर नेपियर की तुलना में अजोला से 4 से 5 गुणा उच्च गुणवत्ता युक्त प्रोटीन प्राप्त होती हैं। तथा इसका उत्पादन भी रिजका व नेपियर से 4 से 10 गुणा तक अधिक उत्पादन देता हैं।

एजोला की पशुआहार के रुप में उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर ने सर्वप्रथम एजोला को कृषकों तक पहुॅचाने व उपयोग कराने के उद्देश्य से कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर पर 10 मार्च 2015 को एक एजोला प्रदर्शन इकाई स्थापित की हैं। केन्द्र पर स्थापित की गई इकाई से किसानों को प्रशिक्षण के माध्यम से प्रेरित करके जिले धौलपुर के ग्रामों में एजोला इकाई स्थापना हेतु किसानों को केन्द्र द्वारा निःशुल्क अजोला बीज प्रदान किये गये।

केन्द्र के पशुपालन वैज्ञानिक शिवमूरत मीणा के अथक प्रयास के कारण मात्र दो महीने के अल्पकाल में जिला धौलपुर के गाँव खेरली, पंचगांव, सरकन खेड़ा, बाडी, धौलपुर शहर, विरौदा, पिदावली व रुपसपुर में किसानों ने एजोला इकाई की स्थापना करके आज पशुओं को हरे चारे के रुप में एजोला खिला रहे हैं। एजोला को वृहत स्तर पर प्रसार के उद्देश्य से कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर ने अन्य कृषि विज्ञान केन्द्र, करौली, यू.पी. के आगरा व एम.पी. के भिण्ड, ग्वालियर व मुरैना आदि को भी एजोला इकाई स्थापना हेतु तकनीकी जानकारी प्रदान की हैं।

इस कड़ी में कृषि विज्ञान केन्द्र के पशुपालन वैज्ञानिक शिवमूरत मीणा ने अग्रणी भूमिका निभाते हुए कृषकों तक अधिक से अधिक एजोला उत्पादन की पहुँच बनाने के उद्देश्य से एजोला इकाई प्रदर्शन हेतु कृषि विभाग, धौलपुर को आत्मा (ATMA) योजना अन्तर्गत इसे सम्मिलित करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया हैं। कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर के इस अग्रणी प्रयास को धौलपुर जिला कलेक्टर श्रीकुमार गौतम ने देखा तो उन्होंने केन्द्र के वैज्ञानिकों विशेष कर पशुपालन वैज्ञानिक शिवमूरत मीणा को बधाई देते हुए इस कार्य में हर संभव मदद देने का आश्वासन दिया।

3. एजोला इकाई तैयार करने की विधि

- किसी छायांदार स्थान पर 6.0 X 1.0 X 0.2 मीटर आकार की क्यारी खोदें।
- क्यारी में 120 गेज की सिलपुटिन शीट को बिछाकर ऊपर के किनारों पर मिट्टी का लेपकर व्यवस्थित कर दें।
- 80–100 किग्रा. साफ उपजाऊ मिट्टी की परत क्यारी में बिछा दें।
- 5–7 किलोगोबर (2–3 दिन पुराना) 10–15 लीटर पानी में घोल बनाकर मिट्टी पर फैला दें।
- क्यारी में 400–500 लीटर पानी भरें जिससे क्यारी में पानी की गहराई लगभग 10–15 सेमी तक हो जावे।

- अब उपजाऊ मिट्टी व गोबर खाद को जल में अच्छी तरह मिश्रित कर देवें।
- इस मिश्रण पर दो किलो ताजा एजोला को फैला दें, इसके पश्चात् से 1 लीटर पानी को अच्छी तरह से एजोला पर छिड़कें जिससे अजोला अपनी सही स्थिति में आ सकें।
- क्यारी को अब 50 प्रतिशत नायलोन, जाली से ढककर 15–20 दिन तक अजोला को वृद्धि करने दें।
- 21 वें दिन से औसतन 1.5–2.0 किग्रा. एजोला की उपज प्राप्त करने हेतु 20 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 5 किलोग्राम गोबर का खाद का घोल बना कर प्रतिमाह क्यारी में मिलावें।
- मुर्गियों को 30–50 ग्राम एजोला प्रतिदिन खिलाने से मुर्गियों के शारीरिक भार व अण्ड़ा उत्पादन क्षमता में 10–15 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
- भेड़ व बकरियों को 150–200 ग्राम ताजा एजोला खिलाने से शारीरिक वृद्धि एवं दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है।

4. एजोला का रखरखाव व सावधानियां

- क्यारी में जलस्तर को 1 से.मी. तक बनाये रखें।
- प्रत्येक तीन माह पश्चात् एजोला को हटाकर पानी व मिट्टी बदलें तथा नई क्यारी के रुप में दुबारा पुनः संवर्धन करें।
- एजोला को अच्छी बढ़वार हेतु 20–35 सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त रहता हैं।
- शीत ऋतु में तापक्रम 6 सेंटीग्रेड से नीचे आने पर एजोला क्यारी को प्लास्टिक मल्च अथवा पुरानी बोरी के टाट अथवा चद्दर से रात्रि में ढक देवें।

एजोला उत्पादन इकाई स्थापना में क्यारी निर्माण, सिलपुटिन शीट, छायादार नायलोन, जाली एवं अजोला बीज की लागत पशुपालक को प्रतिवर्ष नहीं देनी पड़ती हैं। इन कारकों को ध्यान में रखते हुये एजोला उत्पादन लागत लगभग 1 रुपये किलो से कम आंकी गयी है।

5. एजोला पानी से पुष्प व सब्जी की खेती में लाभ

एजोला क्यारी से हटाये पानी को सब्जियों की खेती में काम में लेने से यह एक वृद्धि नियामक कार्य करता है, जिससे सब्जियों एवं फूलों के उत्पादन में वृद्धि होती है। एजोला एक उत्तम जैविक एवं हरी खाद के रुप में कार्य करता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, धौलपुर पशुपालकों को सलाह देता है कि अजोला उत्पादन की तकनीकी जानकारी प्राप्त करने के लिए केन्द्र से सम्पर्क करें तथा एजोला पर प्रशिक्षण प्राप्त कर पशुओं के लिए एजोला इकाई स्थापित कर दुधारु पशुओं को एजोला खिलावें जिससे उनके स्वास्थ्य व दूध उत्पादन में वृद्धि हो ताकि पशुपालक की आमदनी बढ़ सकें।

अध्याय - 8

कीट प्रबन्धन की पर्यावरण अनुकूल तकनीकें

हरीश वर्मा[1] एवं के.एम. शर्मा[2]

1. प्रस्तावना
2. कीट नियंत्रण की पर्यावरण अनुकूल तकनीकें
 2.1 शस्य तकनीकें
 2.2 जैविक तकनीकें

1. प्रस्तावना

वे सभी कृषि पद्धतियां जिनमें कृषि रसायनों का बेहिसाब प्रयोग किया जाता हैं, तात्कालिक उत्पादकता बढ़ा सकते हैं लेकिन कृषि रसायनों का मृदा स्वास्थ्य एवं उत्पाद पर विपरीत प्रभाव होता हैं। कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से हानिकारक कीटों के साथ–साथ हमारे लाभप्रद मित्र कीट भी नष्ट हो जाते हैं। कीट नियंत्रण के लिये ऐसी पर्यावरण अनुकूल तकनीकें अपनाये जाने की आवश्यकता हैं जिनसें जैविक नियंत्रण पदार्थ का प्रयोग कर एवं मित्र कीटों का संरक्षण कर कीटों की बढ़ती हुई संख्या को नियंत्रित किया जा सके। जैविक कीट नियंत्रण एक तकनीक न होकर व्यवस्था प्रबन्ध हैं जिसमें किसान अपने अनुभवों से सीख और अनुसंधान कर फसल प्रबन्ध के अन्तर्गत ही हानिकारक जीवों को नियंत्रित करता हैं। प्रयोगशाला में विकसित जैविक एजेन्टों जैसे– ट्राइकोग्रामा, क्राइसोपा एवं एन.पी.वी. को खेतों में कीट नियंत्रण हेतु छोड़ा जाना चाहिए। कीट पैथोजन जैसे– एन.पी.वी. और बेसीलस थूरीनजेनसिम लेपीडोप्टोरा कीट एवं ट्राइकोडरमा कवक का प्रयोग भूमि जनित रोगों को नियंत्रण करने के काम में आती है।

2. कीट नियंत्रण की पर्यावरण अनुकूल तकनीकें

2.1 शस्य तकनीकें

- **प्रतिरोधी किस्में :** कीट द्वारा पहुँचाये जाने वाले नुकसान के लिए आनुवांशिक प्रतिरोधिता होना प्रमुख अंग है अतः प्रतिरोधी सहनशील किस्मों के बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- **शस्य क्रियाऐं :** कई शस्य क्रियाऐं जैसे – गर्मी की जुताई, फसल के अवशेषों को नष्ट करना, खेत में विभिन्न प्रकार की डोलियों को तोड़कर खेत को समतल करना। सही मात्रा में समय पर बीज की बुवाई करना, पौधों के बीच निश्चित दूरी रखना, फसल चक्र अपनाना आदि क्रियाओं के अपनाने से कीटों की संख्या को कम करने में सहायता मिलती हैं।
- **पाश फसलें :** कुछ फसलें ऐसी होती है, जिनमें या तो फसलों के हानिकारक कीट आकर्षित होते हैं या फिर ये फसलें ऐसे परजीवी/परभक्षी कीट का घर होती हैं जो कि मुख्य फसल के हानिकारक कीटों को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। ऐसी फसलें पाश फसलें

[1]सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड़ (राज.)
[2]सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड़ (राज.)

कहलाती है। उदाहरण – कपास के चारों ओर भिंड़ी की फसल कपास के लाल कीटों को आकर्षित करती हैं। गन्ने के चारों ओर ज्वार लगाकर गन्ने के हानिकारक कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है।

- फसलों में उर्वरकों का सिफारिश अनुसार ही प्रयोग करें। आवश्यकता से अधिक यूरिया का प्रयोग न करें।
- अंर्तवर्ती फसल/मिश्रित फसल/ बहुफसली पद्धति अपनाने से हानिकारक कीटों का प्रकोप कम होता हैं। उदाहरण– सोयाबीन : अरहर, 4 : 2 कतार या 6 : 2 कतार लगाने पर सोयाबीन/ अरहर में कीट प्रकोप कम होता है साथ ही अरहर में उकठा की समस्या कम होती है।
- बहुफसली खेती जैसे एक खेत में खरीफ में ज्वार, मक्का, अरंडी, सोयाबीन, कपास का संयोजन खेत पर लगाने से कीट/रोग प्रकोप कम होता है।
- सही फसल चक्र अपनायें। एकल फसल चक्र अपनाने से रोग एवं कीट का प्रकोप बढ़ता है।
- फसलों की कतार से कतार दूरी एवं पौध संख्या उचित रखें।
- भूमि में जीवांश खादों का उपयोग करने से पौधों को संतुलित पोषण मिलता है। जिससे वे रोग व कीट से लड़ने के लिए सक्षम बनते हैं। जीवांश खादों के उपयोग से भूमि में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होती है जिससे फसल में रोग/कीट कम लगते हैं।
- हायब्रीड की तुलना में देशी/चयनित बीजों को प्राथमिकता देवें। विविधता बनाये रखें। एक ही तरह की किस्में न लगायें।
- कृषि वानिकी को बढ़ाये जिससे मित्र पक्षी खेतो में आकर्षित होते है। इसी प्रकार मित्र पक्षियों को खेतों में आकर्षित करने के लिए लकड़ी के टी आकार की खूंटी जगह–जगह गाड़े। चना/सोयाबीन कम ऊँचाई वाली अन्य फसलों में इससे सफल परिणाम मिले हैं।
- खरपतवारों से छुटकारा पाने के लिये समन्वित खरपतवार प्रबंधन विधि पर विशेष ध्यान देना चाहिये। समन्वित खरपतवार प्रबंधन में रसायनों की अपेक्षा विभिन्न यांत्रिक, जैविक, कृषिगत विधियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
- फसलों की समय पर बुवाई करें ताकि कीट प्रकोप से बचा जा सके।
- कीट नियंत्रण हेतु जैव कीटनाशक का उपयोग करें।

2.2 जैविक तकनीकें

- **जैविक कीटनाशी**

गौमूत्र

- गोमूत्र को एकत्र कर काँच या प्लास्टिक पात्र में भर लें। जितना पुराना गोमूत्र होगा वह उतना लाभदायक है।
- किसी भी फसल की 25–30 दिन की अवस्था से प्रति 15 से 20 दिनों में गोमूत्र का छिड़काव 2–3 बार करें।
- गोमूत्र में कीटों को भगाने एवं पौध बढ़वार (टॉनिक) के रूप में कार्य करने की शक्ति है।

- एक स्प्रे पंप में 250 मि.ली. से आधा लीटर गोमूत्र प्रति 15 लीटर पानी में डालें।
- गोमूत्र का छिड़काव प्रातः या संध्या के समय ही करें।

नीम कीटनाशी

- प्रति क्विंटल गोबर की खाद में 1 किलो नीम की खली मिलाकर एक एकड़ खेत में डालें। इससे सफेद लट, दीमक एवं अन्य मृदा रोगों के नियंत्रण में सफलता मिलेगी।
- एक ड्रम में 200 लीटर पानी में 15 किग्रा. नीम की पत्तियां/ कोमल टहनियाँ डालें। इसे 15 दिन तक रहने देवें। पानी हरा पीला हो जाने पर फसल पर स्प्रे हेतु तैयार है।
- 1 लीटर गोमूत्र में 2 किलो नीम की पत्ती डालकर 10 से 15 दिन के लिए रखें। इसके पश्चात प्राप्त घोल का 150–250 मि.ली. 15 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करने से प्रभावी कीट नियंत्रण होता हैं।

छाछ/मठ्ठा

- एक मटके में मट्ठा या छाछ भरकर 25–30 दिनों के लिए रख दें। मटके को ढक कर रखें। 30 दिनों बाद मट्ठे में दुर्गंध आती है। इस सड़े मट्ठे को 250 मि.ली. से आधा लीटर एक पंप (15 लीटर पानी) में मिलाकर स्प्रे करने से चना, सोयाबीन की इल्ली में कीट नियंत्रण के सफल परिणाम मिले हैं।
- छाछ का छिड़काव कपास, भिंडी, मिर्ची, ज्वार, बैंगन, टमाटर, अरहर, सोयाबीन, गेहूँ इत्यादि फसलों पर किया गया जिसके निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए : –
- फल के आकार में 20 से 25 प्रतिशत वृद्धि।
- दानों का चमकीला/सुनहरा रंग।
- उपज में 20 से 25 प्रतिशत की बढोतरी।
- संतरे में शीघ्र पकाव।
- आम में मिठास वृद्धि।
- मिर्ची, बैंगन में समय पूर्व पकाव की रोकथाम।
- टमाटर में तना सड़न रोग रोकथाम।
- परजीवी व परभक्षी मित्र कीट की बढोतरी, छाछ से पौधों को चूना (कैल्शियम) एवं वृद्धि कारक हार्मोन पदार्थ जैसे सायटोकायनिन मिलता है।
- चने की इल्ली, कपास का डेंडू छेदक, अरहर के फली छेदक कीट की रोकथाम में 50–60 दिन पुराना छाछ काफी प्रभावकारी पाया गया है।

तम्बाकू का अर्क :– आधा किलो तम्बाकू लेकर उसे 3–4 लीटर पानी में उबालकर काढ़ा बनायें। प्रति दो लीटर पानी में छोटा चाय का चम्मच भरकर काढ़ा मिलायें एवं घोल का फसल पर छिड़काव करें। इस घोल के छिड़काव से चुर्रामुर्रा रोग से बचाव होता है।

मिर्च व लहसुन : आधा किलो लहसुन की छिली हुई कलियां लेकर मिट्टी के तेल में शाम को भिगोकर रख दें। सुबह लहसुन की कलियों को निकालकर आधा किलो तेज हरी मिर्च के साथ पीस लें। इस चटनी को 100 लीटर पानी में अच्छे से मिलाएं। यह

घोल छानकर फसल पर स्प्रे हेतु तैयार हैं। इल्लियां लहसुन की गंध से फलियों से बाहर आ जायेगी एवं मिर्च के कारण पौधे से टपककर गिर जायेगी।

एन.पी.वी. वाइरस (विषाणु) : वाइरस आँखों से न दिखने वाला सूक्ष्म आकार का हानिकारक जीव होता हैं, जो जीव के अंदर होने पर ही सक्रिय रहता हैं। यह विषाणु संक्रमित भोजन द्वारा कीट के पेट में पहुँच जाता हैं, जहाँ पर क्षरीय रस के द्वारा विषाणु का बाहरी आवरण घुल जाता हैं। इस विषाणु का संक्रमण इसके बाद बहुत तेज गति से होता हैं। इस विषाणु से चने की हरी इल्ली, गोभी की इल्ली, रोंयेंदार इल्ली, कामलिया कीट का प्रभावकारी नियंत्रण किया जाता हैं।

एन.पी.वी. का उत्पादन

- खेत से इल्लियों को पकड़कर अलग–अलग शीशियों में दो से तीन दिन भूखा रखा जाता हैं।
- बाद में वाइरस से सने चने या अन्य खाने की चीज को शीशी में डाला जाता है जिसे खाकर इल्लियों में वाइरस संक्रमण हो जाता है व पूरी इल्ली काली पड़ जाती है।
- इन इल्लियों को बाद में अपकेन्द्रीय मशीन या मिक्सी में पीसा जाता है ताकि विषाणु युक्त पानी इल्ली के शरीर से बाहर निकल आये। इसे निथार लेते हैं। अब इस घोल को चना फली छेदक की रोकथाम हेतु प्रयोग कर सकते हैं।
- **मात्रा :** 300 से 400 मि.ली. प्रति हेक्टर छिड़काव इल्ली की छोटी अवस्था पर करें तत्पश्चात् 5 दिन के अंतराल पर या जरूरत पडने पर करें। अधिक असर के लिए इसमें आधा किलो गुड़ की राब मिलायें।

ट्रायकोकार्ड : ट्रायकोग्रामा नामक परजीवी मित्र कीट की मादा, हानिकारक कीट के अंडों के ऊपर अंडे देती हैं जिससे हानिकारक कीट के अंडों पर परजीवी मित्र कीट लार्वा नहीं बनने देता। एक दिन में यह अनुमानतः 100 अंडे चट कर गिर जाती है। इसे प्रयोगशाला में प्यूपा लगे कार्ड पर तैयार करते है। कागज आकार के कार्ड पर बीस–बीस हजार ट्रइकोग्रामा प्यूपा लगे रहते है। इन प्यूपा में से 7–8 दिन में कीट बाहर निकल आते हैं। कार्ड के छोटे–छोटे टुकड़े करके पत्तियों के निचले हिस्से पर गोंद चिपका दें या पिन लगा दें। इन प्यूपा में से निकले कीट अपने भोजन की पूर्ति हानिकारक कीट के अंडों को खाकर करते हैं। इन कीटों से आपकी फसल को नुकसान नहीं होगा। जहाँ कार्ड लगे है, वहाँ रसायनों का प्रयोग वर्जित है। इन्हें ठंडी जगह पर रखें।

- **मात्रा–** 6–8 कार्ड प्रति एकड़ की दर से विभिन्न फसलों में 8–10 दिन अंतराल पर 4–6 बार शाम के समय लगायें।

ट्राइकोडर्मा विरिडी (एक मित्र फफूंदी): यह एक जैव आधारित फफूंदनाशी है। यह हानिकारक फफूंदों की वृद्धि को रोकता है। धान, कपास, अरहर, चना, आलू, लहसुन, प्याज, फूलों एवं फलों इत्यादि में उकठा रोग, सड़न पत्तियों का झुलसा, सडन इत्यादि रोगों की प्रभावकारी रोकथाम करता हैं। इसे बीज उपचार के द्वारा या भूमि में गोबर की खाद के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता हैं।

फिरोमोन ट्रेप :– मादा कीट सजातीय उड़ते नर कीटों को लैंगिक क्रिया हेतु आकर्षित करने के लिए

अपनी शरीर से एक विशेष गंध छोड़ते हैं जिसे फिरोमोन कहते हैं। इसे प्रयोगशाला में तैयार किया जाता हैं। फिरोमोन ट्रेप नर पतंगों को फंसाने के लिए चमकीले रंग का बना होता है। इसमें कीप आकार के मुख्य भाग पर लगे ढक्कन के मध्य से गंध रबर (ल्योर) लगाया जाता है, जो कीटों को आकर्षित करता हैं। कीप के निचले भाग पर थैली लगाई जाती है जिसमें कीट/पतंगे फंस जाते हैं। थैली के निचले मुख पर रबर बैण्ड हटाकर फंसे/मरे पतंगे निकालकर मार दें। ट्रेप की संख्या 6–10 ट्रेप प्रति हेक्टर रखी जा सकती है। विभिन्न प्रकार के पतंगों हेतु अलग–अलग गंध रबर (ल्योर) काम में लाये जाते हैं।

सावधानियाँ :–

- अलग–अलग कीटों हेतु अलग–अलग गंध रबर लगायें।
- गंध रबर को धूप में नहीं छोड़ियें।
- बीड़ी, तम्बाकू, या तेज गंध वाली वस्तुओं से गंध रबर को न पकड़ें।
- गंध रबर को 12–15 दिन में बदल दें।

चिपचिपा बोर्ड :- पीले रंग से पुते बोर्ड पर ग्रीस, अरंडी, तेज या इंजन ऑयल के तेल का लेप लगाया जाता है। सफेद मक्खी एवं अन्य फुदकने/उड़ने वाले कीट पीले रंग की ओर आकर्षित होते है। एक हेक्टर में 20–25 बोर्ड आवश्यक होते है। एक सप्ताह के अंतराल से सफाई कर तेल पुनः लगायें।

मित्र कीटों का संरक्षण

- **लेडी बर्ड बीटल :** यह परभक्षी कीट सूंडी व व्यस्क अवस्था में कुछ चूसने वाले कीटों जैसे तेला, चेंपा और माहू को खा जाता है। कपास की सूंडी के अण्डे और नवजात लारवा हेतु सशक्त परभक्षी है।
- **मकड़ी :** इसके शिशु एवं वयस्क दोनों ही पौधों पर उगने वाली मक्खियों, फुदकों एवं विभिन्न कीटों की सूंडियों को खाते हैं।
- **क्राइसोपा :** ये कीट सफेद मक्खी, अन्य छोटे नाशी जीवों के अण्डे एवं छोटी–छोटी इल्लियों को खाते है। इसकी सूंडी तेला और चेपा की अपरिपक्व अवस्था एवं कपास की सूंडी व नवजात लारवा के लिए कारगर परभक्षी हैं।
- **ड्रेगन फ्लाई :** यह कीट पौधों पर उड़ने वाले कीटों जैसे फुदकों और माहू को अपना भोजन बनाते हैं।
- **मधुमक्खी :** यह परागित फसलों में परागण में सहायक होती है, जिससे फसल उत्पादन बढ़ता हैं।
- **चींटा (मकोड़ा) :** यह हानिकारक कीटों के अण्डे व इल्लियों को नष्ट करता हैं।

अध्याय - 9

दलहनी फसलों के कीट एवं रोगों का जैविक नियंत्रण

पुष्पा सिंह[1], ब्रजेश शाही[2] एवं के. एम. सिंह[3]

1. प्रस्तावना
2. दहलनी फसलों के प्रमुख रोग
3. कीटों का जैविक नियन्त्रण

1. प्रस्तावना

विश्व में भारत दलहन उत्पादन में अग्रणी देश है। यहाँ पर चना, अरहर, उर्द, मूंग, मसूर, मटर और राजमा प्रमुख दलहनी फसलें हैं। जिनको बहुत से हानिकारक कीट एवं रोग हानि पहुँचाते हैं। अभी तक इन हानिकारक कीटों और रोगों को नियंत्रित करने के लिए संश्लेषित कीट रसायनों का उपयोग किया जाता था। पर कीट रसायनों के अधिकाधिक प्रयोग से न केवल वातावरण प्रदूषित हो गया है अपितु इन हानिकारक कीटों में प्रति अवरोधिता भी उत्पन्न हो गयी है। ऐसी स्थिति में जैविक नियंत्रण ही एक विकल्प है जो वातावरण को प्रदूषण से मुक्त रखता है। यह हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं (Natural Enemies) को भी हानि नहीं पहुंचता है तथा सस्ता, प्रभावशाली, पर्यावरण हितैषी, टिकाऊ एवं आसानी से उपलब्ध है।

जैविक कीट नियंत्रण में परजीवी, परभक्षी एवं व्याधिजन को हानिकारक कीटों एवं रोगों के नियंत्रण के लिए उपयोग करते हैं। हानिकारक रोग उत्पन्न करने वाले कवकों को विनाशकारी कवक द्वारा नियन्त्रित करते हैं। ये प्रकृति में उपस्थित रहतें हैं और स्वयं हानिकारक कीटों और हानिकारक कवकों को ढूंढकर नष्ट कर देते हैं। अनुकुल परिस्थितियों में ये हानिकारक कीटों और हानिकारक कवकों को पूर्णतयः नियंत्रित रखते हैं।

रोग : कवकनाशी जैव–नियन्त्रण जब बीजोपचार के रूप में प्रयोग किया जाता है तब ये पौधे के जड़मण्डल में सर्वप्रथम स्थायित्व प्राप्त करता है। तदोपरान्त संख्या वृद्धि करके जड़ के चारों और सुरक्षा कवच बनाता है तथा मृदाजनित रोग कारकों से पौधों को बचाता है। इसका प्रभाव बाद में बोई जोने वाली फसल को भी रोगों से बचाता है। इसके अतिरिक्त ये पौधों की वृद्धि को भी प्रेरित करता है।

2. दहलनी फसलों के प्रमुख रोग

उकठा जड़ गलन, तना सड़न, एवं कॉलर गलन दलहनी फसलों (चना, मसूर, अरहर) में लगने वाले प्रमुख रोग हैं। ये मृदाजनित रोग कारकों द्वारा उत्पन्न होते हैं।

चना में उकठा रोग का कारक फयूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ.स्प. साइसेरी (Fusarium oxysporum f.sp. ciceri) है। इस रोग का मुख्य लक्षण है कि पहले पत्तियों का रंग हल्का पीला होता है तथा बाद में उखड़ जाता है।

[1]वैज्ञानिक (पौधा संरक्षण), कृषि विज्ञान केन्द्र, समस्तीपुर
[2]नोडल पदाधिकारी, के.भी.के., रा.कृ.वि., पूसा
[3]निदेशक प्रसार शिक्षा, रा.कृ.वि., पूसा

पत्तियां सूख जाती है। तथा पौधे मर जाते हैं। यह चना का सबसे अधिक विनाशकारी रोग है। उकठा के प्रकोप से चना में कम से कम 10 प्रतिशत और मसूर में 25–50 प्रतिशत उपज की हानि होती है। चना व मसूर में शुष्क जड़ गलन जो राइजोक्टोनिया बटाटिकोला (Rhizoctonia bataticola), मैक्रोफैमिना फैजोलीना (Macrophomina phaseolina) द्वारा और आद्र जड़ गलन राइजोक्टोनिया सोलेनी (Rhizoctonia bataticola) द्वारा होता है। इन रोगों के कारण पौधों की जड़ गल जाती है और मरा हुआ पौधा आसानी से चना और मसूर में पादप वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में यदि मृदा में आर्द्रता हो तो कॉलर गलन का प्रकोप होता है। इसका कारण स्कलेरोि ायम रॉल्फसाई (Sclerotiumrolfsii) है। मरे हुए पौधों को उखाड़कर उसका अवलोकन करने पर सफेद रंग का कवक तन्तु (Mycelium) और सरसों के दाने जैसे आकार के स्कलेरोशिया (Sclerotia) साफ नजर आते है।

अरहर के उकठा रोग का कारक कवक फ्यूजेरियम उड़द (Fusarium udum) है। इसमें पौधे की पत्ती पहले मुरझा जाती है तत्पश्चात् सूख जाती हैं। सूखे हुए पौधे को खेत में आसानी से देखा जा सकता हैं। अरहर में बारिश के मौसम में जब तापमान एवं आर्द्रता दोनों उच्च्व होते हैं, तो झुलसा रोग का प्रकोप देखा जाता है। इसका कारक कवक फाइटाफ्थोरा ड्रेक्सलेरी एफ.स्प. केजेनी (Phytopthora drechsleri f.sp. cajani) हैं। इस रोग में पत्ती परझुलसा का दाग पाया जाता है। तत्पश्चात् तने पर गाँठ बन जाती है तथा तेज हवा के चलने पर पौधा बीच से टूट कर गिर जाता है।

3. कीटों का जैविक नियन्त्रण

मृदा में एक ऐसा कवक पाया जाता है जो मृदाजनित रोग कारकों का विनाश करता हैं अथवा उनकों प्रभावहीन बना देता हैं। इसका नाम ट्राईकोडर्मा (Trichoderma) है तथा इसकी अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जैसे ट्राईकोडर्मा विरिडि (Trichoderma viride), ट्राईकोडर्मा वाइरेन्स (Trichoderma virens), ट्राईकोडर्मा हेमेटम (Trichoderma hamatum), ट्राईकोडर्मा कोनिन्जाइ (Trichoderma coningii) ट्राईकोडर्मा स्यूडोकोनिन्जाई (Trichoderma pseudokoningii) आदि। ट्राईकोडर्मा तीन प्रकार से मृदाजनित रोगकारकों को प्रभावित करता है :

- यह रोगकारक कवक को चारों ओर से स्प्रिंग की तरह घेर लेता है और दबाव से उसे मार देता है। यह प्रभाव माइकोपैरसिटिजम कहलाता है।
- ट्राईकोडर्मा कुछ विशाक्त पदार्थ जैसे – विरिडीन, विरिडियॉल, ग्लाइयोविरीन, ग्लाइयोट्रॉक्सिन तथा विण्वक जैसे – सेल्यूलेज ग्लूकानेज उत्पन्न करता है इससे रोगकारक कवक की वृद्विपर दुष्प्रभाव पड़ता हैं जिसे एन्टीबायोसिस कहते ;दजपइपवेपेद्ध हैं।
- ट्राईकोडर्मा एक सफल प्रतियोगी कवक है जो दूसरे मृदाजनित रोग कारक कवक को हराकर आगे निकल जाता हैं। यह रोगकारी कवक के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण कर लेता है जिनके आभाव में रोगकारी कवक की वृद्धि अवरोधित हो जाती है। प्रयोगशाला में

सस्ते एवं प्रभावी माध्यम जैसे – गेहूं की चोकर और लकड़ी के बुरादे के मिश्रण, पाउडर का निर्यजीकृत करके उस पर ट्राईकोडर्मा को बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। बाजार में आजकल बहुत तरह का ट्राईकोडर्मा उपलब्ध है।

- ट्राइकोडर्मा की जैव नियन्त्रक क्षमता को बढ़ाने के लिए उसे अकेला प्रयोग नहीं किया जाता हैं। वैज्ञानिकों ने ऐसे रासायनिक कवक नाशक खोजे हैं जो ट्राइकोडर्मा के साथ प्रयोग किये जाने पर ट्राइकोडर्मा पर तो कोई दुष्प्रभाव नहीं डालते है, लेकिन मृदा जनित रोगकारक को नष्ट करते हैं। कार्बोक्सिन जो बाजार में वीटावेक्स के नाम से उपलब्ध है ऐसा ही रासायनिक कवक नाशक है। ये दो प्रकार से कवक को प्रभावित करता है। एक तो यह रोगकारक कवक को कमजोर बनाता है और ट्राइकोडर्मा उस कमजोर रोगकारक की वृद्विको रोक देता है, और दूसरा यह मृदा में पाये जाने वाले अन्य मृतोपजीवी कवक को नष्ट करता है। वीटावेक्स और ट्राइकोडर्मा को अलग–अलग प्रयोग किये जाने की अपेक्षा दोनों को साथ साथ प्रयोग किये जाने पर इसकी जैवनियन्त्रक दक्षता अधिक होती है (तालिका 1) ।

चना के उकठा रोग के प्रबन्धन के लिए किये गये परीक्षणों के आधार पर यह देखा गया कि केवल कार्बोक्सिन (वीटावेक्स) से बीजोपचार करने से 23 प्रतिशत उकठा प्रकोप होता हैं और उपज लगभग 1042 कि.ग्रा./है.। जबकि कार्बोक्सिन के साथ ट्राइकोडर्मा हार्जियानम, ट्राइकोडर्मा वाइरेन्स, ट्राइकोडर्मा विरिडि को प्रयोग करने से उकठा का प्रकोप कम होता है और इसके साथ साथ उपज भी अधिक होती है। मसूर में कार्बोक्सिन को अकेले प्रयोग करने से 38 प्रतिशत पौधे उकठा के प्रकोप से मर गये, किन्तु कार्बोक्सिन के साथ ट्राइकोडर्मा हार्जियानम, ट्राइकोडर्मा वाइरेन्स, ट्राइकोडर्मा विरिडि को मिलाकर प्रयोग किया जाये तो जैव नियन्त्रण दक्षता बढ़ती है और इससे उपज भी अधिक होती है।

तालिका 1 : जैव नियन्त्रक ट्राइकोडर्मा की दलहनी फसलों में प्रयोग की जाने वाली मात्रा एवं प्रयोग विधियाँ

फसल	रोग	जैव नियन्त्रक की मात्रा और प्रयोग विधि
चना	उकठा	ट्राइकोडर्मा हार्जियानम (4 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) या ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) या ट्राइकोडर्मा वाइरेन्स (1 ग्रा./कि.ग्रा. बीज). वीटा वेक्स (2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) द्वारा बीजोपचार
चना	जड़ गलन	–तदैव–
अरहर	उकठा	–तदैव–
अरहर	फाइटोफ्थोरा ब्लाइट	–तदैव–
मसूर	उकठा, जड़ गलन	–तदैव–
चना, मसूर	तना सड़न, कॉलर गलन	–तदैव–

1. कीट

चना : चना फली भेदक चना और अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट हैं कीट रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग इस कीट के प्राकृतिक शत्रु नष्ट हो गये और इस कीट ने रसायनों के प्रति अवरोधिता उत्पन्न कर ली। यह कीट एक फसल से दूसरी फसल पर पलायन कर खाता रहता है और इसकी जनसंख्या निरंतर बढ़ती रहती है।

चना फली भेदक के जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता देनी चाहिये। चना फली भेदक के अण्डे पर परजीवी नहीं पाया जाता है, जबकि सूडी को कमप्लोटिस क्लोरीडी (Campoletis chloridae) परजीवी प्राकृतिक अवस्था में 10–80 प्रतिशत तक नियंत्रित करता है। इसके प्रभाव को व्यापक बनाये जाने के लिये कुछ अधिक पराग वाली ट्रैप फसलें जैसे धनिया को मुख्य फसल के खेत के चारों ओर लगाना चाहिये।

चना फली भेदक पर 23 सूड़ी परजीवी, 1 सूत्रकृमि, 21 कीट परभक्षी और 5 मकड़ी परभक्षी पाये जाते हैं। चना फली भेदक की सूड़ी पर पायें जाने वाली प्रमुख परजीवी कैम्पोलेटिस क्लोरीडी (Campoletis chlorideae) कारसिलिया इलोटा (Carcilia illota) गोनियेपथैलमस हाली (Goniophthalmus halli) और पैलेजोरिस्टा (Palexorista laxa) कारसिलिया है।

चना फली भेदक की सूड़ी के प्रमुख परभक्षी राइनोकोरिस मारजीनेटस (Rhynocoris marginatus)] MsYVk Li-(Delta sp.) और वेस्पा ओरिन्टेलिस (Vespa orientalis) हैं। जबकि कीटभक्षी चिड़ियों की 5 प्रजातियों को चना फलीभेदक की सूड़ी को चने की फसल में खाते हुये देखा गया है (तालिका 4)। इस प्रकार ये कीटभक्षी चिड़ियाँ कुल 84 प्रतिशत तक चना फलीभेदक की सूड़ियों को नियंत्रित कर लेती हैं। कीटभक्षी चिड़ियों को आकर्षित करने के लिए उनके बैठने के लिये स्थान बनाने चाहिये एवं इसके लिये जगह जगह "T" (टी) आकार के डण्डे गाड़ने चाहिये। परन्तु फसल पक जाने पर इन डण्डों को खेत से तुरन्त निकाल लेना चाहिये, नहीं तो फिर चिड़िया

तालिका 2: चना फली भेदक की सूडी पर पायी जाने वाली महत्वपूर्ण परभक्षी चिड़ियॉ

सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम
बर्ड – कैटिल इगरेट	बुबुलकस एविस
रोजी पैस्टर या रोज कलरड स्टार लिंग	स्टारनस रोजिएस
सामान्य मैना	एक्रिडोथेरिस ट्रिसटिस
राकेट टेल्ड ड्रानगो	डिक्रुरस पैराडिसीएस
घरों में पायी जाने वाली गौरइया	पैसर डोम्सटिकस
बैन्क मैना	एक्रिडोथेरिस जिनजिनीएनस
रिवर स्टर्न	स्टर्ना और नटिया ग्रेय
मुचिंगा	ब्लैक डैन्गो

दानों को खाने लगेंगी। पंजाब, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश में भी परजीवी के साथ – साथ परभक्षी चिड़िया प्रमुख प्राकृतिक शत्रु हैं।

चना फली भेदक पर पाये जाने वाले व्याधिजनों में एन.पी.वी. न्यूक्लीयर पॉलीहैड्रोसिस वायरस (Nuclear Polyhedrosis Virus) प्रमुख है। यह अनुकुल परिस्थितियों में इस कीट को सफलापूर्वक नियंत्रित कर देता है। एन.पी.वी. के 2–3 छिड़काव चना फलीभेदक को लगभग कीट रसायनों के बराबर नियंत्रित कर लेता है।

एन.पी.वी. से ग्रसित सूड़ी (जो सर के बल लटकी होगी) जिसका रंग काला हो गया होगा और काला पानी बह रहा होगा को प्रयोगशाला में पानी में मसल कर घोल लें और इस घोल को पौधों पर छिड़क दें। जब सूड़िया घोल छिड़के पौधों को खायेगी तो विषाणु से ग्रसित हो जायेगी। यह देखा गया है कि यदि विषाणु के घोल में टीपाल (जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों से इसकी रक्षा करता है) और गुड़ (सूड़ी को अपनी ओर खाने के लिये आकर्षित करता है) मिलाकर छिड़काव करें तो सूड़ी छिड़काव वाले पौधों को बड़े चाव से खाती है और मर जाती है। यह परजीवी, परभक्षी और लाभदायक कीड़ो को हानि नहीं पहुंचता है। एन.पी.वी. को कीट–रसायनों के समकक्ष प्रभावशाली पाया गया है।

चना फलीभेदक पर प्राकृतिक रूप से कीटाणु भी पाये जाते हैं जैसे बैसिलस थूरिजेनसिस (Bacillus thuringiensis)। इसके अनेक व्यावसायिक रूप बाजार में उपलब्ध है जैसे – डिपेल, डेलपिन, बायेलैप, बायोआस्प, बायोबिट, इत्यादि। वैज्ञानिक अनुसंधानों से विदित है कि डिपेल, डेलफिन, बायेलैप, बायोआस्प, चना फलीभेदक को नियंत्रित करने में बहुत अधिक प्रभावशाली है। इनमें से किसी एक का प्रयोग 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करके किया जाता है।

चना फलीभेदक पर प्राकृतिक दशा में कवक व्याधिजन भी पाये जाते है जैसे बिवेरिया बैसीयाना (Beauveria bassiana), नूमेरिया रिले (Numeira rileyi), मेटाराइजियम एनीसोप्ली (Metarhizium anisopliae) आदि। यह कवक भी चना फलीभेदक को नियंत्रित करने का महत्वपूर्ण साधन है। इसके लिये नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है।

अरहर : अरहर के दो प्रमुख हानिकारक कीट है, चना फलीभेदक और फली मक्खी। अरहर की फली मक्खी यानी मिलनएग्रोमाइजा आब्ट्रयसा (Melanagromyza obtusa) अरहर की फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है। अरहर की विभिन्न परिपक्कता वाली प्रजातियां बोने से इसका प्रकोप बढ़ता जा रहा है । उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में देर से पकने वाली अरहर की प्रजातियों को यह कीट सर्वाधिक हानि (60–70 प्रतिशत) पहुंचाता है। जिसकी सभी अवयस्क अवस्थायें जैसे अण्डा, सूड़ी अरहर की फली के ही अन्दर होती है। इसका सूड़ी और कोषक पर चार परजीवी यूडेरस (Euderus sp.), यूरीटोमा (Eurtyoma sp.), ओरमाइरस (Ormyrus sp.) और ब्रेकान (Bracon sp.) पाये जाते हैं।

इसके अलावा भूरा बग क्लोविग्रला गिब्कोसा (Clavigralla gibbossa) के अण्डों पर भी परजीवी ग्रेउन (Gryon) पाया जाता है।

चित्तीदार सूड़ी पर भी परजीवी, फेनरोटोमा (Phanerotoma sp.) पाया जाता है।

अरहर में फली छेदक कीट के नियंत्रण के लिए अन्तः फसल लगाए जिससे लाभदायक कीटों को संरक्षण हो जैसे – ज्वार, मूंग, उड़द, सोयाबीन, बाजरा, और सूरजमूखी। अरहर का ज्वार और बाजरा के साथ अंतः फसल ज्यादा लाभदायक पाया गया है।

- अरहर + मूंग / उड़द (1 : 2)
- अरहर + ज्वार (1 : 2)
- अरहर + सोयाबिन (2 : 4)
- अरहर + कपास (2 : 1)
- अरहर + बाजरा (4 : 1)
- अरहर + सूरजमुखी (2 : 4)

ज्वार एवं बाजरा के साथ अरहर की खेती करने से प्राकृतिक शत्रु (मकड़ी या कॉक्सिनेलीडस) की संख्या में वृद्धि होती है। कुछ और परभक्षी एवं परजीवी हैं टेक्नीडस (Tachinids) ब्रेकोनीडस (Braconids) इलोफीडस (Eulophids), स्केल्िओनीडस (Scelionids), डरमैपेटेरन्स (Dermapterans), मैनटिडस (Manitids), काराबीडस (Carabids), कॉसीनेलीडस (Coccinellids), और ऐन्थोकॉरीडस (Anthocorids)।

इसके अलावा बसीलस थ्रीरिंगजनीसीस (Bt:3A,3B,3C), नीम 0.03% नीम के तेल पर आधरित डब्ल्यु.एस.पी. नीम के बीज का पाउडर नीम के बीज कर्नेल (एन.एस.के.ई.) 5% फली छेदक खिलाफ प्रभावशाली हैं।

मूंग और उर्द : मूंग और उर्द के हानिकारक कीट समान होते हैं। जैसे श्वेत मक्खी, माहूं, हॉपर इत्यादि। इनके अतिरिक्त बिहार रोंयेदार सूडी प्रमुख हानिकारक कीट है। यह अत्यधिक आर्थिक क्षति कारक है। इस पर प्राकृतिक दशा अवस्था में एन.पी.वी. विषाणु मिलता है जो इसको अच्छी तरह नियंत्रित करता है। मूंग और उर्द के प्रमुख हानिकारक कीटों पर 123 प्राकृतिक शत्रु मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक परजीवी, परभक्षी एवं व्याधिजन इन कीटों को नियंत्रित करते रहते हैं। अधिकतर हानिकारक कीट केवल इन्ही प्राकृतिक शत्रुओं के कारण कम महत्वपूर्ण हैं। हमें इन प्राकृतिक शत्रुओ का आभारी होना चाहिये जो हमारी फसलों को हानिकारक कीड़ों से बचाये रखतें हैं और प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। जैविक नियंत्रण यद्यपि धीमी प्रक्रिया है फिर भी भविष्य के लिये वातारण को सुरक्षित रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

अध्याय – 10

सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से बढ़ायें फसलों की उत्पादकता

रणजीत सिंह[1], आर.एल. सोनी[2], रामअवतार[3] एवं श्रीमती उर्मिला[4]

1. प्रस्तावना
2. पौधों में जिंक के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण एवं उपाय
3. पौधों में लोहा के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण एवं उपाय
4. पौधों में बोरॉन के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण एवं उपाय
5. पौधों में मोलिब्डेनम के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण एवं उपाय

1. प्रस्तावना

वर्तमान समय में उर्वरक खेती का एक महत्वपूर्ण एवं महंगा आदान है। इस कारण इनका समझदारी से प्रयोग करना अति आवश्यक है, जिससे कम से कम लागत में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके। सन्तुलित पादप पोषण की संकल्पना अत्यन्त सरल हैं। पोषक तत्वों की असंतुलित मात्रा न केवल कम व निम्न गुणवत्ता का उत्पादन देती है, बल्कि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के भंडार का भी अत्यधिक दोहन करती है। जिन तत्वों को मांग से अधिक मात्रा में डाला जाता है, उनकी सम्पूर्ण मात्रा पौधों द्वारा अवशोषित नहीं हो पाती हैं और निक्षालन अथवा किसी अन्य माध्यम से इनकी हानि हो जाती है। साथ ही कुछ पोषक तत्वों (जैसे लोहा, जिंक, कॉपर) की अधिक मात्रा में प्रयोग से पौधों में विषाक्ता हो सकती है। इस प्रकार असन्तुलित पोषण प्रबन्धन सीमित संसाधनों का दुरुपयोग है।

देश में हुए अनेक दीर्घकालीन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण श्रेष्ठतम विकल्प है। एक पोषक तत्व की अत्यधिक मात्रा में उपस्थिति अन्य तत्व के अवशोषण को प्रभावित करती है। फसलों से अधिकाधिक उपज लेने की होड़ में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि, सघन कृषि प्रणाली और जैविक एवं कार्बनिक उर्वरकों के घटते उपयोग से देश के करीब–करीब हर प्रान्त की भूमि में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी होती जा रही है। पौधों में वृद्धि तथा उत्पादन को कम करने के लिए जिम्मेदार सूक्ष्म पोषक तत्वों में वर्तमान समय में जिंक, लोहा, बोरॉन एवं मोलिब्डेनम अत्यधिक महत्वपूर्ण है जो विस्तृत रूप से सभी गहन कृषि वाले क्षेत्रों में आवश्यक स्तर से कम है। इसका प्रमुख कारण मृदा के पी.एच. मान का अधिक होना, मृदा में कार्बनिक पदार्थ की न्यूनता तथा मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट की उपस्थिति है। सघन खेती में अधिकतम उत्पादन लेने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्व मुख्य कारक बनते जा रहे है। तात्पर्य यह है कि टिकाऊ खेती में इनका उपयोग आवश्यक है।

[1]वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, बांसवाड़ा।
[2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बांसवाड़ा।
[3]सहायक प्राध्यापक, शस्य विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, भीलवाड़ा।
[4]तकनीकी सहायक, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर।

2. पौधों में जिंक के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण

- पौधों में होने वाली शरीर क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है तथा ऑक्सीकरण एवं अपचयन की क्रिया को नियमितता प्रदान करता है।
- यह अनेक एन्जाइमों के अपचयन में भाग लेता है तथा प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होता है।
- यह पौधों में पाये जाने वाले हार्मोनों के जैविक संश्लेषण में काम आता है और पोधों द्वारा कार्बोहाइड्रेटस के उपयोग को प्रभावित करता है।
- पौधों में प्रकाश संश्लेषण व नाइट्रोजन चया पचय में मदद करता है।
- यह पौधों में ऑक्जिन की मात्रा को नियन्त्रित करता है। ऑक्जिन पौधों में फूलों एवं फलों के विकास की क्रिया को बढ़ाता है।
- सूचक पौधा : संकर मक्का
- जिंक की कमी से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाली फसलें है– मक्का, जलमग्न धान, प्याज, नींबू, सेव आदि। ऐसी भूमि जिसमें उपलब्ध फॉस्फोरस एवं लोहा ज्यादा हो वहाँ जिंक की कमी होती है। हल्की लवणीय मृदा, जीवांश पदार्थ की अधिकता वाली मृदा, नई समतलीकरण की हुई भूमि, भारी सिंचाई करने पर, कम तापमान व नम भूमियों आदि जगह पर अक्सर जिंक की कमी देखी जाती है।
- गेहूं के पौधों की पत्तियां हल्की हरी–पीली धारीदार पड़ जाती है।
- पत्तियों में शिराओं के बीच हल्के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है, जो बाद में आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं।
- धान की पत्तियों पर भूरे व कत्थई रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। धान में जिंक की कमी से खेरा व मक्का में सफेद कलिकायन नामक रोग हो जाते हैं।
- नींबू वर्गीय पौधों में पत्तियों का शिराओं के मध्य पीली पड़ना, मोटल लीफ प्रभाव आदि जिंक की कमी से होता है।
- फसलों का उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों में गिरावट होती है।
- पौधों में प्रोटीन संश्लेषण की दर कम हो जाती है।

3. पौधों में लोहा के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण

- पौधों में हरित लवक बनाने में उत्प्रेरक का कार्य करता है।
- पौधों में एन्जाइम तंत्र का अवयव होने के कारण यह तत्व पौधों में ऑक्सीकरण–अपचयन क्रियाओं के लिये उत्तरदायी है।
- यह श्वसन, प्रकाश संश्लेषण और नाइट्रेटस तथा सल्फेट्स का अपचयन करता है।
- यह पौधों में प्रोटीन संश्लेषण के लिये आवश्यक है।
- यह सूक्ष्म जीवों जैसे–एस्परजिलस, यीस्ट आदि के लिये बहुत आवश्यक होता है।
- सूचक पौधा : ज्वार
- लोहे की कमी से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाली फसले है ज्वार, जलमग्न धान, नींबू, सोयाबीन आदि। इसकी कमी ज्यादातर हल्की भूमियों में तथा ऐसी मृदायें जिनमें जीवांश

पदार्थ की मात्रा कम होती है में पाई जाती है। चूनायुक्त भूमियों में भी लोहे की कमी अधिक होती है। ऐसी भूमि जिसमें उपलब्ध पोटेशियम अधिक होता है उनमें भी लोहे की कमी बहुधा देखी गई है। भूमिगत जल स्तर ऊँचा तथा वायु का संचार कम हो ऐसी जगह पर भी इसकी कमी पाई जाती है।

- पौधों में नई पत्तियों की शिराओं के मध्य पत्ति का रंग हल्का हो जाता है। इसके पश्चात् हरी शिरायें भी पीली पड़ जाती है। अधिक कमी हो जाने पर पत्ती हल्की पीली से सफेद रंग की हो जाती है। बाद में पत्ती पूर्ण सफेद कागज की तरह हो जाती है।
- फल वृक्षों में इसकी अधिक कमी होती है।
- पौधों में क्लोरोफिल का निर्माण कम होता है। सबसे नई पत्ती पूर्णतया सफेद हो जाती है जब उसमें क्लोरोफिल बिल्कुल भी नहीं होता है।
- जहां चावल–चावल कई वर्षों तक उगाया जाता है वहां धान की अकयोची बीमारी आ जाती है।

4. पौधों में बोरॉन के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण

- प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक है।
- कोशिका विभाजन को प्रभावित करता है।
- कैल्शियम के अवशोषण और उसके उपयोग को प्रभावित करता है।
- कोशिका झिल्ली की पारगम्यता बढ़ाता है जिससे कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण में मदद मिलती है।
- एंजाइमों की क्रियाशीलता में परिवर्तन लाता है।
- उत्तकों के विकास एवं विभाजन को प्रभावित करता है।
- पौधों में शुगर के संहवन को नियंत्रित करता है।
- न्यूलिक अम्लों के चया–पचय में भूमिका।
- लिग्नीन के सिन्थेसिस में सहायक है।
- सूचक पौधा : फूल गोभी एवं संकर मक्का
- पौधों के वर्धनशील अग्रभाग सूखने लगते हैं और मर जाते हैं।
- पत्तियां मोटे गठन की हो जाती हैं, जो कभी–कभी मुड़ जाती हैं और काफी सख्त हो जाती हैं।
- फूल नहीं बन पाते हैं और जड़ों का विकास रुक जाता है।
- जड़ वाली फसलों में ब्राउन हार्ट नामक बीमारी हो जाती है, जिससे जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। कभी–कभी जड़ें मध्य से फट भी जाती हैं।
- सेव जैसे फलों में आंतरिक और बाह्व कार्क के लक्षण दिखाई देते हैं।

5. पौधों में मोलिब्डेनम के मुख्य कार्य, कमी के लक्षण

- विभिन्न एंजाइमों की क्रिया विधि को प्रभावित करता है।
- नाइट्रोजन उपयोग एवं नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मदद करता है।

- नाइट्रोजन यौगिकीकरण में राइजोबियम जीवाणु के लिए आवश्यक होता है।
- पौधों में कार्बोहाइड्रेट के चयापचय में भूमिका निभाता है।
- पौधों में कई सूक्ष्म मात्रिक पोषक तत्वों जैसे कॉपर, बोरॉन, मैंग्नीज, निकल आदि की अधिकता के दुष्प्रभाव को कम करने में मदद करता है।
- सूचक पौधा : टमाटर एवं फूल गोभी
- इसकी कमी में नीचे की पत्तियों की शिराओं के मध्य भाग में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में पत्तियों के किनारे सूखने लगते हैं और पत्तियां अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं।
- फूल गोभी की पत्तियां कट–फट जाती हैं, जिससे केवल मध्य शिरा और दल पत्र के कुछ छोटे–छोटे टुकड़े ही शेष रह जाते हैं। इस

तालिका न. 1 : पौधों एवं मिट्टी में उपलब्ध जिंक, लोहा, बोरॉन एवं मोलिब्डेनम तत्वों की निर्णायक सीमा एवं पूर्ति हेतु उर्वरकों की संस्तुति

तत्व	निर्णायक सीमा (मिली.ग्रा. / कि.ग्रा.)		उर्वरकों की मात्रा एवं उपयोग विधि
	पौधों में	भूमि में	
जिंक	20	0.6 (डी टी पी ए निष्कर्षित)	मध्यम गठन वाली मृदा के लिए दो वर्ष में 1 बार 25 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालना चाहिए
			भारी गठन वाली मृदा के लिए 50 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलाना चाहिए
			0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूना (दो–तीन 10 दिन के अन्तराल पर घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए)
लोहा	100	2.5–4.5 (डी टी पी ए निष्कर्षित)	50–100 किग्रा फेरस सल्फेट / हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलाना चाहिए
			1–3 प्रतिशत फेरस सल्फेट के दो से तीन छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर पौधों पर करना चाहिए
बोरॉन	20	0.5 (गर्म पानी में घुलनशील)	दहलनी फसलों में 1.2 से 3.2 किग्रा व अन्य फसलों में 0. 6 से 1.2 किग्रा बोरॉन/हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलाना चाहिए
			पर्णिय छिड़काव के लिए 0.05 प्रतिशत बोरॉन का घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए
मोलिब्डेनम	0.1	0.15 (अमोनियम ऑक्सीलेट निष्कर्षित)	चूंकि मोलिब्डेनम की मात्रा पौधे को बहुत कम चाहिए इसलिए 0.2 प्रतिशत मोलिब्डेनम के घोल से बीज को उपचारित करना सबसे अच्छा रहता है।

तालिका न. 2 : जिंक, लोहा, बोरॉन एवं मोलिब्डेनम युक्त उर्वरक एवं इनमें पोषक तत्वों की मात्रा

उर्वरक का नाम	पोषक तत्व की मात्रा (प्रतिशत)
जिंक सल्फेट (मोनो हाइड्रेट)	35
जिंक सल्फेट (हेप्टा हाइड्रेट)	23
फेरस सल्फेट (ट्रेटा हाइड्रेट)	23
फेरस सल्फेट (हेप्टा हाइड्रेट)	19
अमोनियम मोलिब्डेट	54
सोडियम मोलिब्डेट	39
बोरेक्स	11
सोडियम टेट्रा बोरेट (बोरेट–48)	17

प्रकार पत्तियां पूंछ के समान दिखाई देने लगती हैं जिसे व्हिप टेल कहते हैं।

- इसकी कमी दलहनी फसलों में विशेष रूप से देखी जाती हैं।

सामान्तया मृदाओं में जिंक 10 से 330 पी पी एम तक तथा औसत रूप से 50 पी पी एम, लोहा 0.46 से 27.5 प्रतिशत तक तथा औसत रूप से 3.8 प्रतिशत, बोरॉन 7 से 330 पी पी एम तथा औसत रूप से 7–80 पी पी एम तथा मोलिब्डेनम 0.2 से 5 पी पी एम तथा औसत रूप से 2 पी पी एम तक पाया जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, बांसवाड़ा ने अपने परीक्षणात्मक फार्म पर जिंक + लोहे के विभिन्न स्तरों का परीक्षण रबी 2011–12 में किया जिसमें जिंक व लोहे के विभिन्न स्तरों के प्रयोग से गेहूँ के उत्पादन में 17.91 से 36.89 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई तथा जिंक 5 कि.ग्रा. + लोहा 7.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर का स्तर सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया (तालिका 3)।

तालिका न. 3 : जिंक एवं लोहा का गेहूँ की उत्पादकता पर प्रभाव

क्र.सं.	परीक्षण	उपज (क्वि./हैक्टेयर)
1	किसान के अनुसार उर्वरक प्रबन्ध (बिना जिंक व लोहा के)	37.4
2	सिफारिश के अनुसार एन.पी.के + जिंक 0.5 कि.ग्रा. + लोहा 2.5 कि.ग्रा. /हैक्टेयर मृदा उपयोग	44.1
3	सिफारिश के अनुसार एन.पी.के + जिंक 5 कि.ग्रा. + लोहा 5 कि.ग्रा. /हैक्टेयर मृदा उपयोग	48.3
4	सिफारिश के अनुसार एन.पी.के + जिंक 5 कि.ग्रा. + लोहा 7.5 कि.ग्रा. /हैक्टेयर मृदा उपयोग	51.2

आमतौर पर फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए पोषक तत्व युक्त उर्वरकों के प्रयोग हेतु निम्न तरीके इस्तेमाल में लाये जाते हैंः–

(i) भूमि में सीधा प्रयोग : इस विधि में जरूरत के मुताबिक सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त उर्वरकों को बुवाई से पूर्व अथवा पश्चात् जब कमी के लक्षण दिखाई दे, छिटक कर मिट्टी में मिला देना चाहिये। समान बिखराव सुनिश्चित करने के लिये इन उर्वरकों को सूखी मिट्टी अथवा रेत के साथ मिला लेना चाहिये। सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति के सन्दर्भ में खास बात ध्यान देने योग्य है कि इनका प्रयोग केवल कमी पाये जाने की दशा में ही करना चाहिये न कि यूरिया, डीएपी एवं एमओपी की भांति प्रत्येक फसल में नियमित रूप से किया जाना चाहिए।

(ii) पर्णिय छिड़काव : सामान्यतः खड़ी फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग घोल के रूप में स्प्रेयर द्वारा छिड़क कर किया जाता है। इस विधि में उर्वरक की मात्रा मृदा प्रयोग की अपेक्षा बहुत ही कम की आवश्यकता होती है एवं प्रभाव त्वरित होता है। क्षेत्रफल के हिसाब से आवश्यक पानी की मात्रा स्प्रेयर के प्रकार एवं फसल की प्रकृति के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है किन्तु उर्वरक की मात्रा अपरिवर्तित रहती है। घोल के रूप में छिड़काव करने के लिये निम्न बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये–

- कमी के लक्षणों की विशेषज्ञ की मदद से ठीक तरह से पहचान कर ली जानी चाहिये। संस्तुत प्रतिशत से अधिक सान्द्रता का घोल नहीं तैयार करना चाहिये अन्यथा पत्तियों के झुलस जाने का खतरा रहता है।
- बेहतर परिणाम सुनिश्चित करने के लिये घोल में कोई डिटरजेन्ट जैसे– टी पॉल, एफस्ट्रान वगैरह मिला लेना चाहिये। जहां जरूरी हो घोल में आवश्यकतानुसार चूना अथवा यूरिया मिलाकर घोल को उदासीन बना लेना चाहिये।
- घोल बनाने के तुरन्त बाद छिड़काव कर देना चाहिये, ज्यादा देर तक रखना नहीं चाहिये।
- छना हुआ और साफ घोल ही प्रयोग में लाना चाहिये।
- गर्मी और तेज हवा के दौरान तथा हवा के बहाव के विपरीत दिशा में छिड़काव नहीं करना चाहिये, अन्यथा पत्तियों के धूल जाने से तत्व का प्रभाव खत्म हो जायेगा।

(iii) बीजोपचार : चूंकि मोलिब्डेनम की मात्रा पौधों को बहुत कम चाहिए इसलिए मोलिब्डेनम युक्त उर्वरक के घोल से बीज को उपचारित करना सबसे अच्छा रहता है।

अध्याय – 11

मृदा उर्वरता प्रबन्धन

के.एम. शर्मा[1]

1. प्रस्तावना
2. पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के प्रकार
3. मृदा उर्वरता स्तर कैसे बढाये

1. प्रस्तावना

फसलों में असंतुलित पोषण से मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों का लगातार दोहन हो रहा है, मृदा उर्वरता स्तर घटता जा रहा हैं। मृदा उर्वरता स्तर से आशय मृदा में पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों की प्रदान करने की क्षमता से हैं। सभी आवश्यक पोषक तत्व भूमि में सन्तुलित मात्रा व प्राप्य अवस्था में अर्थात् उस अवस्था में हो जिसे पौधे ग्रहण कर सकें। किसी भी तत्व की कमी या अधिकता का पौधों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

उर्वरकों का फसलों में बेहिसाब एवं अंधाधुन्ध प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य पर दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं साथ ही कीमती उर्वरकों के प्रयोग से किसानों को फसल उपज में बिना सार्थक वृद्धि आर्थिक भार वहन करना पड़ता है। मृदा में जैविक खादों के कम प्रयोग एवं कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल होती जा रही है।

2. पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के प्रकार

वे तत्व जो पौधों की वृद्धि, विकास व जीवनचक्र के लिए आवश्यक होते है पोषक तत्व कहलाते हैं। मुख्य तौर पर पौधों के लिए 16 पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। आवश्यक पोषक तत्व का आशय है कि किसी तत्व की कमी पूर्ति उसी तत्व से होती हैं और अन्य तत्व द्वारा उसकी कमी पूर्ति नहीं हो सकती हैं। प्रत्येक पोषक तत्व का पौधों के जीवन चक्र में अपना–अपना विशेष योगदान रहता हैं। किसी एक भी तत्व का अभाव होने पर पौधा अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकता।

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व, उनकी पौधों द्वारा आवश्यक मात्रा के अनुसार ये दो प्रकार के होते हैं :–

मुख्य पोषक तत्व (Macro-Nutrients) : वे तत्व जो पौधों द्वारा अधिक मात्रा में उपभोग किये जाते है, मुख्य पोषक तत्व कहलाते है। मुख्य पोषक तत्वों में नत्रजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटाश (K), सल्फर (S), कैल्शियम (Ca), एवं मैग्नीशियम (Mg.) सम्मिलित है। इनमें नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश, तत्वों की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में होती है। अतः ये प्राथमिक मुख्य पोषक तत्व हैं। जबकि सल्फर, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की पौधों को प्राथमिक तत्वों की तुलना में कम मात्रा

[1]सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा (राज.)

में आवश्यकता होती हैं। अतः ये द्वितीयक या गौण मुख्य पोषक तत्व कहलाते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्व (Micro Nutrients) : वे पोषक तत्व जिनकी पौधों को बहुत ही कम मात्रा में आवश्यकता होती है :– जिंक (Zn), लोहा (Fe), ताँबा (Cu), मैंगनीज (Mn), बोरॉन (Bo), मोलीब्डेनम (Mo) एवं क्लोरीन (Cl)। सूक्ष्म पोषक तत्व भले ही न्यून मात्रा में आवश्यक होते हैं, लेकिन ये मुख्य पोषक तत्वों के समान ही पौधों के लिए आवश्यक होते हैं।

3. मृदा उर्वरता स्तर कैसे बढायें

(i) मृदा परीक्षण करवायें

मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों, मृदा पी.एच. मान, मृदा विद्युत चालकता आदि की जानकारी फसलों में पौषक तत्व प्रबन्धन के लिए आवश्यक हैं। अतः यथासम्भव अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवायें। मृदा परीक्षण के परिणामों के आधार पर जिन पोषक तत्वों की मृदा में कमी है, उन्हीं तत्वों की पूर्ति के लिए विभिन्न फसलों की आवश्यकतानुसार उर्वरकों का चयन करें।

(ii) उर्वरकों का निर्धारण करें

- मृदा परीक्षण परिणामों के अभाव में अपने क्षेत्र के लिये फसलवार सिफारिश की गई उर्वरकों की मात्रा प्रयोग करें। फसलों को दिये जाने वाले उर्वरकों के समुचित प्रयोग हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें सभी पोषक तत्वों की आवश्यकतानुसार सन्तुलित मात्रा में प्रयोग करें।
- उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करते समय फसल चक्र का ध्यान रखें। यदि पूर्व में दलहनी फसलें बोई गई हैं जैसे चना, मूंग, मसूर, मटर, उड़द, ग्वार आदि तो सिफारिश की गई नत्रजनीय उर्वरक की लगभग 20 प्रतिशत कम मात्रा की आवश्यकता होगी। यदि पूर्ववर्ती फसल ज्वार, बाजरा, गन्ना, गेंहू, आलू इत्यादि ली गई हो तो सिफारिश किये गये उर्वरकों की मात्रा काम में लें।
- क्षारीयता एवं लवणीयता ग्रस्त मृदाओं में जिनका मृदा पी.एच. 8.0 से अधिक हो, अम्लीय प्रभाव रखने वाले उर्वरक जैसे यूरिया, अमोनियम सल्फेट, डीएपी आदि का चुनाव करें। यदि आपकी मृदा अम्लीय प्रकृति की है तो क्षारीय प्रभाव रखने वाले उर्वरक जैसे सोडियम नाइट्रेट, रॉक फॉस्फेट आदि का चुनाव करें।
- सिंचित फसलें असिंचित फसलों की तुलना में उर्वरकों का अधिक सदुपयोग करती है। अतः सिंचित फसलों की तुलना में असिंचित फसलों को सिफारिश की गई उर्वरकों की आधी मात्रा की आवश्यकता होती है।
- अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्में उर्वरकों का सदुपयोग कर सार्थक परिणाम देती है। अतः उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों का प्रयोग करें।
- क्षारीयता, लवणीयता या अम्लीयता ग्रस्त मृदाओं में विद्यमान पोषक तत्वों को फसलीय पौधे ग्रहण नहीं कर पाते हैं। अतः इस प्रकार की समस्याग्रस्त मृदाओं में दिये जा रहे उर्वरकों का समुचित उपयोग तभी संभव है जब इन मृदाओं में मृदा सुधारक जैसे क्षारीय भूमि में

जिप्सम की सिफारिश की गई मात्रा का प्रयोग कर सुधार करें। सामान्यतः फसल पोषण के लिए जिप्सम 250 से 300 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय मिलायें। अम्लीय भूमि में चूना मिलाकर सुधार करें।

- प्रयोग किये जा रहे रासायनिक उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए सभी फसलों में जैविक कल्चर बीजोपचार द्वारा प्रयोग करना चाहिए। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर से बीज उपचार करें। अदलहनी फसलों में राइजोबियम की जगह एजोटोबेक्टर कल्चर काम में लें। फास्फेट विलायक जीवाणु कल्चर, (पी.एस.बी. कल्चर) सभी फसलों में प्रयोग करें।

- अनुसंधान परिणाम दर्शाते हैं कि रासायनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादें, जैसे गोबर की अच्छी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खादें जैसे सनई, ढेंचा, ग्वार, मूंग आदि का समावेश कर समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन करने से उत्पादकता में वृद्धि होती हैं वरन् दिये गये उर्वरकों का समुचित प्रयोग के साथ–साथ टिकाऊ खेती का आधार मृदा स्वास्थ्य बना रहता हैं। अतः रासायनिक खादों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का भी यथासंभव प्रयोग करें।

(iii) उर्वरकों को उचित मात्रा एवं विधि द्वारा उचित समय पर प्रयोग करें

- उर्वरकों के सदुपयोग के लिए यह आवश्यक हैं कि उर्वरक एवं बीज साथ में मिलाकर प्रयोग नही करें इससे न केवल उर्वरक उपयोगिता घटती है बल्कि बीज अंकुरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। सिफारिश की गई बीज मात्रा से दोगुनी बीज दर किसान प्रयोग करते हैं, उसका मुख्य कारण बीज एवं खाद मिलाकर बोना ही हैं। अतः उर्वरक को सभी फसलों में इस प्रकार ऊर कर दें कि बीज ऊपर एवं उर्वरक बीज से 3–5 सेमी नीचे गिरे। इसके लिए सीड कम फर्टिलाईजर ड्रिल बहुत उपयोगी बुवाई यंत्र है।

- नत्रजनीय उर्वरक जैसे यूरिया, अमोनियम सल्फेट आदि पानी में असानी से घुल जाते हैं। नत्रजनीय उर्वरक पानी में घुलकर बहकर या निक्षालन द्वारा पौधों की पहुंच से दूर हो जाते हैं, इसके अलावा नाइट्रोजन की आवश्यकता पौधों को पूरे वृद्धि काल में होती हैं। अतः इनके सदुपयोग के लिए यह आवश्यक हैं कि इनकी सिफारिश की गई मात्रा को एक ही समय में न देकर 2 – 3 बार में टुकड़ों में दें। सामान्यतया सिफारिश की गई मात्रा की आधी मात्रा बुवाई के समय एवं शेष आधी मात्रा को भारी मृदाओं में पहली सिंचाई पर एवं हल्की मृदाओं में पहली एवं दूसरी सिंचाई पर खड़ी फसल में विभाजित मात्रा में प्रयोग करें।

- दलहनी फसलों में नाइट्रोजन की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय ही दें। 4–5 माह अवधि वाली फसलों को 2–3 टुकड़ों में, 9–12 माह अवधि वाली फसलों को 3–4 टुकड़ों में नाइट्रोजन उर्वरक प्रयोग करें।

- फास्फेटिक उर्वरक जैसे डी.ए.पी., सिंगल सुपरफास्फेट, आदि एवं पोटाशिक उर्वरक जैसे एमओपी आदि जल में कम घुलनशील होते हैं और पौधों को धीरे–धीरे प्राप्त होते हैं अतः इन

उर्वरकों की सिफारिश की गई मात्रा बुवाई के समय ऊर कर देना चाहिए। इन उर्वरकों का बीज के नीचे रहना, इनकी उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

- फसलों को दिये जाने वाले उर्वरकों का लगभग 25–30 प्रतिशत भाग खरपतवार शोषित कर लेते हैं। अतः प्रयोग किये गये उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखने के समन्वित प्रयास करें।
- फसलों की बुवाई कतारों में उचित दूरी पर करें जिससे सभी पौधों को समान रूप से विकसित होने का अवसर मिले और दिये गये पोषक तत्वों का वे भरपूर प्रयोग कर सकें।

(iv) गौण व अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का आवश्यकतानुसार पोषक करें

बिना सन्तुलित पोषण के लगातार खेती करने से भूमि में नाइट्रोजन व फास्फोरस के अलावा अन्य पौषक तत्वों की भी कमी होती जा रही है। प्रमुख तौर पर सल्फर, जिंक, मैंगनीज व लोह तत्व की पूर्ति की आवश्यकता अब होने लगी है।

सल्फर:

सामान्यतः फसलों को सल्फर की उतनी ही मात्रा की आवश्यकता होती है, जितनी की फास्फोरस की। सल्फरयुक्त उर्वरकों के प्रयोग के बिना लगातार खेती करने से भूमि में सल्फर की कमी बढ़ती जा रही है। विभिन्न अनुसंधानों के परिणामों में सल्फर की कमीयुक्त मृदाओं में सल्फर के पोषण से फसल का उत्पादन ही नहीं वरन् गुणवत्ता पर भी सार्थक प्रभाव पड़ता हैं। तेलीय फसलों के बीज में तेल की मात्रा में वृद्धि एवं दानों में प्रोटीन प्रतिशत में वृद्धि के लिए सल्फर का विशेष महत्व हैं। सामान्यतः सल्फर की मात्रा 20 से 40 किग्रा. प्रति हैक्टर की दर से सिफारिश की गई हैं।

- सल्फर के पोषण के लिए सल्फर पाउडर (85–90% सल्फर) का प्रयोग बुवाई के एक माह पूर्व करना चाहिए और मृदा में नमी बनाये रखें जिससे सल्फर का किण्वन होकर प्राप्य अवस्था में बदल जाये।
- यूरिया की जगह अमोनियम सल्फेट को खड़ी फसल में काम ले सकते हैं।
- डी.ए.पी. की जगह सिंगल सुपर फास्फेट प्रयोग में लेने से सल्फर व कैल्शियम तत्व की पूर्ति भी होती है।
- सिंगल सुपर फास्फेट, पोटेशियम सल्फेट, अमोनियम फास्फेट सल्फेट आदि का प्रयोग बुवाई पूर्व या बुवाई के समय करते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति :-

जिंक : जिंक की पूर्ति के लिए सामान्यतः 20–25 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करते है। जिसको अन्तिम जुताई के समय मृदा में मिलाये। अच्छी गोबर की खाद के साथ जिंक सल्फेट मिलाकर देने से अधिक लाभ होता है। खड़ी फसल में जिंक के लक्षण दिखने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट एवं 0.25 प्रतिशत बुझा चूना का घोल बनाकर छिड़काव करते है। इसके लिए 100 लीटर पानी में 250 ग्राम बुझा चूना घोलकर बाद में 500 ग्राम जिंक सल्फेट मिलाकर घोल बनायें।

लोहा : मृदा में लोहा तत्व की कमी नहीं होने पर भी क्षारीय व चूना युक्त मृदाओं, अधिक पीएचमान वाली मृदाओं में लोहा तत्व की कमी के लक्षण पौधों पर दिख सकते हैं। इसका कारण यह होता है कि पौधे लोहा तत्व को फेरस के रूप में काम में लेता है जबकि उपरोक्त दशाओं में लोहा फेरिक अवस्था में बदलने से पौधों के लिए अप्राप्य हो जाता है। अतः ऐसी मृदाओं में पीएच मान कम करने के लिए सल्फर का प्रयोग, जिप्सम का प्रयोग, सल्फ्यूरिक अम्ल का (0.1%) प्रयोग लाभकारी होता हैं। खडी फसल में लोहा तत्व की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट (हरा कसीस) तथा 0.10 प्रतिशत साइट्रिक एसिड का घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

मैंगनीज : इसकी कमी पूर्ति के लिए बुवाई पूर्व 20 किग्रा. मैंगनीज सल्फेट प्रति हैक्टर भूमि में मिला सकते हैं। लेकिन इसका पर्णीय छिड़काव आर्थिक रूप से अधिक लाभकारी होता हैं। खडी फसल में 0.5 से 1.0 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट का घोल बुझे हुए चूना (0.25–0.5%) के साथ बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

बोरोन : भूमि में 5 किग्रा. बोरोन प्रति हैक्टर दें या खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत बोरेक्स या बोरिक अम्ल का घोल बनाकर छिड़काव करें।

तांबा : इसकी कमी पूरी करने के लिए कॉपर सल्फेट (नीला थोथा) 5 से 10 किग्रा. प्रति हैक्टर काम में लें या खड़ी फसल में कॉपर सल्फेट (0.1 प्रतिशत) घोल कर बुझा चूना (0.5 प्रतिशत) के साथ बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

मोलीब्डेनम : इसकी कमी के निवारण के लिए 0.5 प्रतिशत सोडियम मोलिब्डेनम (500 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

उपरोक्त तत्वों में जिंक के अलावा सभी तत्वों में पर्णीय छिड़काव आर्थिक रूप से अधिक लाभकारी होते हैं।

अध्याय – 12

जैविक खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन

दयानन्द[1], रणजीत सिंह राठौड़[2], आर.के. वर्मा[3] एवं एस.एम. मेहता[4]

1. प्रस्तावना
2. जैविक खेती की आवश्यकता
3. जैविक खेती में समन्वित पोशक तत्व प्रबन्धन
4. जैविक खेती में समन्वित पोशक तत्व प्रबन्धन हेतु प्रमुख घटक

1. प्रस्तावना

दूसरी हरित क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार हो, उसकी गुणवत्ता बढ़े। अधिक उत्पादन बढ़ाने की होड़ में रासायनिक खादों के अन्धाधुन्ध प्रयोग ने फसलोत्पादन तो बढ़ाया, परन्तु भूमि की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप रासायनिक खादों एवं अन्य रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग का भूमि की उर्वरता पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगा हैं। एक ओर भूमि की उर्वरता का ह्रास हो रहा हैं, वहीं दूसरी ओर मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर भी गहरा असर हो रहा हैं।

खेती में उर्वरकों के असन्तुलित प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति में गिरावट आयी हैं, जिससे मिट्टी में सूक्ष्म जीव, कीट एवं केंचुए विनाश के कगार पर पहुंच गए हैं। दिनों–दिन मिट्टी में जैव पदार्थ एवं सूक्ष्मात्रिक तत्वों की मात्रा में भारी कमी आई हैं। रासायनिक खेती से जहाँ खेती की लागत बढ़ रही हैं, वहीं उत्पादकता स्थिर हो जाने से किसानों की आय घटने लगी हैं। इसके अतिरिक्त रासायनिक खेती, खेत–खलियान, स्वास्थ्य व परिस्थितिकीय क्षरण, प्रदूषण को तेजी से बढ़ा रही हैं। रासायनिक खादों से उत्पादित फसल, फल–सब्जी के प्रयोग का मानव जीवन पर विपरीत असर पड़ने लगा हैं। नित नये रोगों का जन्म हो रहा हैं। डी.डी.टी. जैसे रसायनों का प्रकोप मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ पशु–पक्षियों पर भी देखा जा रहा हैं। अतः कृषि में प्रयोग हो रहे जहरीले रासायनिकों का एक ही विकल्प है–जैविक खेती। जैविक खेती हेतु समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन के द्वारा जैविक पोषक तत्व प्रबन्धन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

किसानों को अपनी मृदा को स्वस्थ रखने एवं अच्छा कृषि उत्पादन लेने के लिए जैविक खादों को एक विकल्प के रूप में लेना होगा। एक ओर जैविक खाद का प्रयोग अतिरिक्त उत्पादन खर्च कम करता है वहीं दूसरी ओर मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से लाभकारी है। कार्बनिक खादों के रूप में राइजोबियम कल्चर, फास्फोरस कल्चर आदि का प्रयोग करना होगा।

1
2
3
4 कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर –झुन्झुनूँ (राजस्थान)

जैविक उर्वरक न केवल पौधे को सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं वही दूसरी ओर भूमि की उर्वरता, उसकी जल धारण क्षमता, कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा गुणवत्ता में बढ़ोतरी एवं मिट्टी की गुणात्मक दशा को सुधारने का कार्य करते हैं।

जैविक खेती भवि   य की अनिवार्यता है, अतः जनसंख्या, खाद्यान्न, भूमि, जल, पर्यावरण, लाभ–हानि अनुपात एवं खाद्य सुरक्षा में सामंजस्य बनाए रखने की आवश्यकता है तभी हम भविष्य में बढ़ती जनसंख्या का उचित पोषण कर पाएंगे।

क्या है जैविक खेती ?

जैविक खेती, देशी खेती का उन्नत तरीका है जिसमें रासायनिक खाद, कीटनाशकों, वृद्धि नियन्त्रकों का उपयोग नहीं करके खेत में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, जीवाणु खाद, फसल अवशेष, फसल चक्र एवं प्रकृति में उपलब्ध खनिज जैसे रॉक फास्फेट, जिप्सम आदि द्वारा पौधों को पोषक तत्व दिये जाते हैं।

जैविक खेती की आवश्यकता

1. कृषि उत्पादन में टीकाऊपन के लिए।
2. मृदा की जैविक गुणवत्ता बनाये रखने के लिए।
3. प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए।
4. वातावरण प्रदूषण को रोकने के लिए।
5. मानव स्वास्थ्य की रक्षा के लिए।
6. उत्पादन लागत को कम करने के लिए।

जैविक खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन

पौधों को अपना जीवन चक्र पूर्ण करने के लिए 16 प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन पौधों को पानी व हवा से मुफ्त मिल जाते हैं। जबकि जस्ता, मैग्नीज, लोहा, तांबा, बोरोन, मोलीब्डेनम एवं कोबाल्ट की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती हैं। मिट्टी में कैल्शियम एवं मैग्निशियम की प्रायः कमी नहीं पायी जाती हैं। इन तत्वों का बहुत छोटा भाग दानों में संग्रहित होता हैं अतः यदि फसल अवशेष, कम्पोस्ट, गोबर की खाद का नियमित उपयोग रहता है, क्योंकि मनुष्य के लिए उपयोगी दानों में पोटाश की बहुत ही कम मात्रा पाई जाती है। पौधों के लिए शेष तीन महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में गंधक की व्यवस्था जिप्सम का उपयोग कर के भी की जा सकती हैं। इसी प्रकार प्रकृति में उपलब्ध रॉक फास्फेट खनिज एवं पी.एस.बी. व पी.एस.एम. जीवाणु खादों द्वारा फास्फोरस की व्यवस्था की जा सकती है। इसके लिए रॉक फास्फेट को खेत में डालें। बीज को बोने से पहले पी.एस.बी/पी.एस.एम जीवाणु खाद से उपचारित करें। सबसे महत्वपूर्ण तत्व नाइट्रोजन की पौधों के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करना जैविक खेती का सबसे कठिन कार्य है। क्योंकि इस तत्व का जमीन में संचय नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों के अनुसार नाइट्रोजन की मात्रा जमीन के कार्बन पर निर्भर करती है व कार्बन की मात्रा तापमान पर निर्भर है। हमारे राज्य का औसत तापमान ज्यादा है। इस कारण जमीन का कार्बन जलकर कार्बन डाइ– ऑक्साइड गैस बनकर हवा में उड़ जाता है तथा जमीन में कार्बन की कमी बनी रहती हैं।

जैविक खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु प्रमुख घटक :–

1. गोबर की खाद
2. कम्पोस्ट
3. हरी खाद
4. जीवाणु खाद

5. फसल अवशेष
6. फसल चक्र
7. ग्रीष्मकालीन जुताई

1. गोबर की खाद

जैविक खेती में जमीन में पोषक तत्वों का स्तर बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि खेत पर उपलब्ध पशुओं के गोबर को अच्छी तरह से सड़ा गलाकर खेत में प्रयोग करें। साधारणतया देखने में आया है कि किसान वर्ग गोबर को जमीन की सतह के ऊपर खुले ढ़ेर के रूप में इक्कठ्ठा करता है जिससे ना गोबर भली भांती सड़ पाता है एवं तेज धूप और हवा से उसमें उपस्थित नमी एवं लाभदायक पोषक तत्व वाष्पीकरण के द्वारा उड़ जाते हैं। अतः इन नुकसानों से बचने के लिए आवश्यक है कि गोबर को गड्डे में सड़ाया जाये जिससे उसमें उपलब्ध पोषक तत्वों का नुकसान भी न हो एवं अच्छी तरह से सड़ जाए। गड्डे में सड़ाये हुए गोबर को खेत में डालने पर खेत में दीमक का प्रकोप भी कम होता है एवं कुछ मात्रा में खरपतवारों की संख्या भी कम हो जाती है क्योंकि खाद के सड़ाव के दौरान खरपतवारों के बीज भी कुछ मात्रा में सड़ गल जाते हैं। गड्डे में गोबर को सड़ाने के दौरान ध्यान रखें कि उसमें नमी का स्तर उपयुक्त हो एवं सम्भव हो तो पशुओं के पेशाब को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। भली भांती सड़े हुए गोबर में कमोबेश पौधों के लिए आवश्यक लगभग सभी पोषक तत्व पाये जाते हैं जो मृदा की उर्वरता बढ़ाने के साथ–साथ टिकाऊ खेती को भी बढ़ावा देते हैं।

2. कम्पोस्ट

कम्पोस्टिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जैविक तथा रासायनिक दोनों ही प्रकार की क्रियाऐं साथ–साथ चलती हैं। जैविक क्रिया के अन्तर्गत् दो प्रकार के जीवाणु, एक वह जो वायु की उपस्थिति में क्रियाशील होते हैं और दूसरे वह जो वायु की अनुपस्थिति में अपनी साधारण क्रिया द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को कम्पोस्ट में बदलते हैं।

गत् कुछ वर्षों में रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती हुई लागत एवं उनकी बनाने में लगने वाली उर्जा को देखते हुए कम्पोस्टिंग की नई नई पद्धतियों का विकास किया गया। हमारे देश एवं सम्पूर्ण विश्व में कृषि वैज्ञानिकों ने कई वर्षों की शोध एवं प्रयोगों के पश्चात् अब यह मान लिया कि रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ अच्छी किस्म की कम्पोस्ट खाद खेत में डालने पर पौधों को उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है।

कम्पोस्ट कार्बनिक पदार्थ के रूप में काम में लिया जाने वाला वह कार्बनिक कूड़ा–करकट, व्यर्थ पदार्थ व विभिन्न फसलों के अवशेष हैं जिसे नियंत्रित अपघटन क्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। कम्पोस्ट तैयार करने की क्रिया विधि को कम्पोस्टिंग कहते हैं जो एक जैविक अपघटन प्रक्रिया है। कम्पोस्ट निर्माण वायवीय एवं अवायवीय दोनों प्रकार के सूक्ष्म जीवों से तैयार की जा सकती है। जिसमें कार्बनिक पदार्थ का अपघटन होनें के साथ–साथ कार्बन : नत्रजन अनुपात को घटाकर आदर्श स्थिती में लाते हैं। इस प्रकार से कम्पोस्टिंग द्वारा तैयार अन्तिम उत्पाद भली भांती सड़ा हुआ, गहरे काले रंग का, उपयुक्त कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात युक्त होता है जिसे कम्पोस्ट कहते हैं।

कम्पोस्ट की खाद को संश्लेषित गोबर की खाद, कृत्रिम खाद अथवा कूड़ा करकट की खाद भी कहते हैं। गोबर की खाद की तुलना में कम्पोस्ट में कार्बनिक पदार्थ और प्रमुख पोषक तत्वों की अधिक मात्रा एवं उपलब्धता के कारण मृदा उर्वरता बढ़ाने और बनाये रखने में अधिक कारगर होती है।

नेडेप कम्पोस्ट :

नेडेप कम्पोस्ट पद्धति कम से कम गोबर का प्रयोग करके अधिक से अधिक मात्रा में खाद बनाने की पद्धति हैं जो पूर्णतया अप्रदुषणकारी हैं। नेडेप कम्पोस्ट तैयार करने हेतु ईंटों का एक आयताकार टांका तैयार किया जाता हैं। जिसके अन्दर का माप साधरणतया 12x5x3 फुट होता हैं। यह टांका हवादार होना आवश्यक हैं जिससे कम्पोस्ट का अपघटन आसानी से हो सके। इस हेतु टांका निर्माण करते समय चारों दिवारों में छेद रखे जाते हैं एवं टांके के अन्दर दीवारों पर और फर्श पर गोबर एवं मिट्टी का लेप लगा हो।

आवश्यक सामग्री :

- सभी प्रकार के वानस्पतिक अवशेष जैसे डंठल, टहनियां, जड़ें, सुखे पत्ते, छिलके आदि (प्लास्टिक, कांच एवं पत्थर रहित)
- खेत या नाले की मिट्टी (गौमूत्र से सनी मिट्टी विशेष उपयोगी)
- गोबर एवं गोबर स्लरी
- पानी (सूखे वानस्पतिक पदार्थ की मात्रा के बराबर +25 प्रतिशत वाष्पीकरण हेतु अतिरिक्ति)

नेडेप कम्पोस्ट की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु पशुओं का मूत्र भी काम में लिया जा सकता है।

वर्मी कम्पोस्ट :

केचुओं के अवशेष, मल, उनके कोकून, सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु, मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और अपचित जैविक पदार्थों का मिश्रण वर्मी कम्पोस्ट कहलाता है।

उपयुक्त तापमान, नमी, हवा एवं जैविक पदार्थ मिलने पर केंचुऐ अपनी संख्या बढ़ाने के साथ–साथ गोबर एवं वानस्पतिक अवशेष आदि को सड़ाकर जैविक खाद के रूप में परिवर्तित करते रहते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि –

वर्मी कम्पोस्ट इकाई लगाने से पूर्व उपयुक्त आकार की शेड़/छप्पर तैयार करते हैं ताकि उपयुक्त तापमान एवं छाया रखी जा सके। आवश्यकतानुसार एवं उपलब्ध सामग्री के आधार पर जमीन की सतह पर क्यारी तैयार की जाती है जिसमें फसल अवशेष, तिनके, भूसा, जूट अथवा गन्ने के अवशेष आदि को सतह पर 3 इंच की मोटाई में तह लगाकर बिछौना बनाया जाता है एवं उस पर हल्का पानी छिड़क दिया जाता है। इस पर 2 इंच ऊँचाई तक सूखा हुआ कम्पोस्ट या गोबर की खाद बिछाई जाती है और पानी डालकर गीला कर दिया जाता है। इस दूसरी परत पर 1 इंच मोटी परत वर्मी कम्पोस्ट की जिसमें पर्याप्त केंचुऐं मौजूद हो डाल दी जाती है। इस तीसरी परत पर 2 इंच मोटाई की सतह तक दुबारा कम्पोस्ट या गोबर की खाद बिछाई जाती है। अंत में इस परत पर 10–12 इंच मोटाई में गोबर के साथ घास–फूस, पत्तियां एवं वानस्पतिक कचरा पांचवी परत के रूप में बिछा दिया जाता है। तीस प्रतिशत तक नमी बनाए रखने के लिए हर परत पर पानी का छिड़काव किया

जाना चाहिए। इस प्रकार सभी परतों की कुल ऊँचाई 1फुट तक हो जाएगी जिन्हें ऊपर से बोरी के टाट से अच्छी तरह से ढ़क कर पानी छिड़कते है, जिससे नमी उपयुक्त स्तर (30 प्रतिशत) पर बनी रहे। गर्मियों के दिनों में 3–4 बार पानी छिड़कना चाहिए। केंचुऐ लगभग 2 माह में गोबर मिश्रित घास फूस पत्तियां, वानस्पतिक अवशेष एवं कचरा आदि को वर्मी कम्पोस्ट में बदल देते हैं। तैयार वर्मी कम्पोस्ट का रंग चाय के दानों के समान गहरा काला हो जाता है।

वर्मी कम्पोस्ट में औसतन 2.5–3.0 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.5–2.0 प्रतिशत फास्फोरस एवं 1.5–2.0 प्रतिशत पोटाश के अतिरक्त संतुलित मात्रा में जस्ता, तांबा, कैल्शियम, मैग्निशियम, गंधक एवं बोरोन भी पाये जाते है।

हर्बल कम्पोस्ट :

आज जब चारों और जैविक खेती, टिकाऊ खेती की चर्चा हो रही है तो उनमें हर्बल आधारित उत्पादों का विभिन्न रूप में प्रयोग सर्वविदित है। जैविक खेती में विभिन्न प्रकार के हर्बल उत्पाद जैसे आक, धतुरा, नीम, तुलसी, लहसुन एवं तम्बाकू मुख्यतयाः कीट एवं व्याधि नियंत्रण हेतु विभिन्न उत्पाद बनाने में काम में लिए जाते हैं। हर्बल उत्पादों से अर्क प्राप्त करने के बाद बड़ी मात्रा में लुगदी (पल्प) प्राप्त होता है जिसे कम्पोस्टिंग पदार्थ में मिलाकर उच्च गुणवत्ता युक्त कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है जिसे हर्बल कम्पोस्ट कहते हैं। हर्बल कम्पोस्ट में पर्याप्त पोषक तत्वों के साथ साथ मृदा में इसका प्रयोग करने से यह मृदा में उपस्थित हानिकारक कीट एवं रोग कारकों को मारने में भी सक्षम है।

कम्पोस्ट खादों से उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के साथ साथ भूमि की भौतिक और रासायनिक बनावट को भी प्रभावित करता है। इसके प्रयोग से–

- भूमि की जलधारण क्षमता में बढ़ावा होता है।
- सूखे के प्रति सहनशीलता बढ़ती है।
- भूमि का कटाव एवं क्षरण में कमी आती है।
- भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- बीज की अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।
- विटामिन की मात्रा में वृद्धि होती है।
- पौधों की जड़ों का विकास शीघ्र एवं अधिक होता है।
- एन्जाइम उत्पादकता में बढ़ौतरी होती है।
- भूमि एवं जड़ों में वायु संचार एवं श्वसन में वृद्धि होती है।
- उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार आता है।

3. गोबर गैस खाद :

ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू ईंधन की जरूरत को पूरा करने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर गोबर गैस संयत्र लगाये गये हैं। इन संयत्रों में गैस बनने के पश्चात् गोबर की स्लरी निकलती है इस स्लरी के निकलने के साथ ही पानी के धोरों द्वारा पानी के साथ खेत में दिया जा सकता है। अन्य स्थिति में इस स्लरी को जमीन में खोदे गये गड्ढ़ों में सुखा लिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर काम में लिया जा सकता है।

4. हरी खाद

जैविक खेती में जमीन की उर्वरता बढ़ाने के लिए हरी खाद का भी प्रयोग कर सकते हैं जिसमें दलहनी फसलें जैसे ग्वार, मूंग, लोबिया, सनई एवं ढ़ेंचा का प्रयोग कर सकते हैं। हरी खाद हेतु इन फसलों को पुष्पावस्था पर जमीन में पर्याप्त नमी की अवस्था में दबा दिया जाता है। जिससे इनका सड़ाव भली भांती एवं जल्दी हो। हरी खाद जमीन की उर्वरता बढ़ाने के साथ–साथ मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में भी सुधार करती है।

5. जीवाणु खाद

फसल उत्पादन में पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान हैं, इनकी आपूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरक, देशी खाद, जीवाणु खाद, कम्पोस्ट आदि का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता हैं। उर्वरकों की बढ़ती कीमतें, मांग एवं पूर्ति के बीच का अंतर, छोटे व सीमान्त किसानों की सीमित क्रय शक्ति एवं उर्जा की कमी जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं के कारण आवश्यक हैं कि पादप पोषण के कुछ ऐसे सार्थक एवं सस्ते वैकल्पिक स्त्रोत हों जो सस्ता होने के साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषक भी न हों, ऐसे में जीवाणु खाद को नकारा नहीं जा सकता हैं।

पादप पोषण में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस दो महत्वपूर्ण पोषक तत्व हैं। नाइट्रोजन वायुमण्डल में प्रचुर मात्रा में (लगभग 79 प्रतिशत) उपलब्ध हैं। परन्तु पौधे इसका उपयोग तभी कर सकते हैं जब इस नत्रजन को पौधों के उपयोगी स्वरूप में बदल दिया जाए जो कि रासायनिक क्रियाओं द्वारा या विशिष्ट तरह के सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता हैं। नत्रजन के बाद फास्फोरस दूसरा प्रमुख पादप पोषक तत्व हैं जिसकी आपूर्ति हेतु पृथ्वी के गर्भ में उपलब्ध सीमित स्त्रोतों का खनन कर प्राप्त रॉक फास्फेट से फास्फोरस युक्त उर्वरकों का निर्माण किया जाता हैं। फास्फोरस उर्वरकों की उपयोग दक्षता बहुत ही कम होती हैं क्योंकि मृदा में फास्फोरस अचल रूप में होता हैं और क्रिया के फलस्वरूप स्थिर हो जाता हैं।

भारतीय कृषि में जीवाणु खाद का महत्वपूर्ण स्थान है एवं इनका अधिक से अधिक मात्रा में प्रयोग कर उर्वरकों की खपत कम की जा सकती है, पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है, फसल उत्पादन की लागत में कमी की जा सकती है, एवं फास्फोरस उर्वरकों की उपयोग क्षमता बढ़ाई जा सकती है। बैक्टेरिया, कवक, नीलहरित शैवाल इत्यादि के सक्रिय प्रभावी विभेद की पर्याप्त संख्याओं के उत्पाद को मुख्यतया जीवाणु खाद कहते हैं। वायुमण्डल के नाइट्रोजन व भूमि के फास्फोरस को पौधों को उपलब्ध कराने वाले जीवाणुओं को जीवित अवस्था में लिग्नाइट व कोयले के चूरे में मिलाकर जीवाणु खाद तैयार किया जाता है। जीवाणु खाद में इन लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एक ग्राम में दस करोड़ से अधिक रखी जाती है। ये जीवाणु तीन प्रकार के होते हैं–

1. राइजोबियम – यह एक मृदा बैक्टेरिया है जो दलहनी फसलों की जड़ों पर गुलाबी रंग की गांठे बनाकर उनमें रहते हैं तथा हवा में से नाइट्रोजन लेकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इसके द्वारा मृदा में स्थिर की गई नत्रजन की मात्रा जीवाणु का

प्रकार, पौधे की किस्म, मृदा गुण, वातावरण एवं की जाने वाली शस्य क्रियाओं पर निर्भर करती हैं। इनके द्वारा मृदा में स्थिर की गई नाइट्रोजन कार्बनिक अवस्था में होती है, उसका नुकसान बहुत कम होता है एवं पौधे ज्यादा दक्षता से उसका उपयोग कर पाते है।

2. एजेटोबेक्टर – यह जीवाणु खाद बिना दलहन वाली फसलों में उपयोग की जाती है। यह जमीन में स्वतन्त्र रूप से रहकर हवा की नाइट्रोजन को ग्रहण कर भूमि में छोड़ते हैं, जो पौधों को उपलब्ध होती है। मृदा में इनकी संख्या में बढ़ोतरी मृदा में पाये जाने वाले कार्बनिक कार्बन पर निर्भर करती है।

3. फास्फेट विलेयक जीवाणु (पी.एस.बी.)– फसलों को फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने हेतु मुख्यतया डी.ए.पी. एवं सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग किया जाता है, जिनका एक बहुत बड़ा भाग जमीन में अघुलनशील हो जाता है जिसे पौधे आसानी से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। जीवाणु खाद पी.एस.बी. इसी अघुलनशील फास्फोरस पौधों को घुलनशील बनाकर उपलब्ध कराता है।

जीवाणु खाद उपयोग विधि –

जीवाणु खाद का फसल उत्पादन में प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे

1. बीजोपचार द्वारा – आवश्यकतानुसार पानी में 150 ग्राम गुड़ 1 लीटर पानी के हिसाब से घोल कर गर्म करें। इसे ठण्डा कर इसमें जीवाणु खाद के तीन पैकेट (एक हैक्टैयर क्षेत्र हेतु) घोलें। अब इस घोल को एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए आवश्यक बीज की मात्रा पर छिड़कते हुए हल्के हाथ से बीजों को पलटते जायें, जिससे बीजों के ऊपर जीवाणु खाद की एक बारीक परत चढ़ जाए। अब बीजों को किसी छायादार स्थान पर सुखाकर शीघ्र ही बुआई करनी चाहिए।

2. जड़ों के उपचार द्वारा– फल, सब्जियों एवं अन्य पौधों की जड़ों को रोपाई से पूर्व जीवाणु खाद के घोल में लगभग 15 मिनट तक डुबोकर रखें तथा बाद में इनकी भूमि में रोपाई करनी चाहिए।

3. भूमि उपचार – जीवाणु खाद को नम मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलाकर पूरे खेत में सायंकाल छिटक कर सिंचाई कर देनी चाहिए।

सावधानियां –

1 जीवाणु खाद को पैकेट पर लिखी फसल के लिए ही पैकेट पर अंकित अन्तिम तिथि से पूर्व प्रयोग करें।

2. जीवाणु खाद को अत्यधिक ठंड, गर्मी एवं धूप से बचाकर रखा जाना चाहिए।

3. जीवाणु खाद को रासायनिक उर्वरक एवं नाशकों के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

4. बीज को कवकनाशी, कीटनाशी एवं जीवाणु खाद सभी से उपचारित करना हो तो इसी क्रम में (एफ.आई.आर.) प्रयोग में लेना चाहिए।

5. जीवाणु खाद को गुड़ के गर्म घोल में नहीं मिलाना चाहिए अन्यथा जीवाणु मर जाएगें।

6. जीवाणु खाद से उपचारित बीज को छाया में सुखाना चाहिए।

6. फसल अवशेष

खेत पर उपलब्ध फसल अवशेष जिन्हें पशु नहीं खाते हों उन्हें जलाने के बजाय अच्छी तरह से सड़ा गलाकर जैविक खाद के रूप में मृदा में पोषक तत्वों का स्तर बढ़ाने में काम में लिया जा सकता है जैसे सरसों का भूसा एवं अन्य फसल अवशेष। इन फसल अवशेषों को पर्याप्त नमी अवस्था में गढ्ढ़ों में सड़ा गलाकर जैविक खाद तैयार की जा सकती है।

7. फसल चक्र

मृदा उर्वरता बढ़ाने हेतु फसल चक्र का प्रयोग किया जाना चाहिए एवं फसल चक्र में अधिक से अधिक दलहनी फसलों का समावेश किया जाना चाहिए क्योंकि दलहनी फसलें वातावरण में उपलब्ध नाइट्रोजन को जीवाणुओं की सहायता से मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं जिसका दलहनी फसलों के अलावा आगामी फसलों को भी फायदा मिलता है।

अध्याय – 13

सरसों की फसल का समेकित कीट प्रबंधन

अमित यादव[1], पुष्पा सिंह[2], वीर सिंह[3] एवं अभिषेक यादव[4]

1. प्रस्तावना
2. सरसों की फसल के प्रमुख कीट
3. सरसों की फसल के प्रमुख कीटों का प्रबन्धन

सरसों की गिनती भारत की प्रमुख तीन तिलहनी फसलों (सोयाबीन, मूंगफली एवं सरसों) में होती है जो देश में आई, पीली क्रांति के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। इसके कारण भारत के द्वारा तेलों के आयात में न केवल कमी हुई बल्कि निर्यात् की संभावनाएं भी बढ़ी हैं। सरसों में अनेक प्रकार के कीट समय–समय पर आक्रमण करते हैं लेकिन 4–5 कीट ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसलिए यह अति आवश्यक हैं कि इन कीटों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जाएं। इस लेख में सरसों के कीटों के लक्षण व उनकी रोकथाम के उपाय दियें गए हैं।

तिलहन की फसलों में सरसों (तोरिया, राया और सरसों) का भारत वर्ष में विशेष स्थान हैं। भारत के अधिकतर राज्यों में सरसों की खेती की जाती हैं। लेकिन मुख्य रूप से इसकी खेती राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, असम आदि राज्यों में की जाती हैं। राजस्थान में मुख्य रूप से सरसों की खेती भरतपुर, जयपुर, टोंक, बारां, नागौर आदि जिलों में मुख्य रूप से की जाती हैं। भारत में वर्ष 2012–13 में सरसों का उत्पादन 78.20 लाख टन तथा राजस्थान में इसका उत्पादन 39.20 लाख टन था। सरसों क्रसीफेरी (ब्रैसीकेसी) कुल का द्वि बीज पत्री, एक वर्षीय शाक जातीय पौधा हैं। इसका वैज्ञानिक नाम ब्रेसिका कम्प्रेसटिसहै। सरसों के बीज से तेल निकाला जाता हैं जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाने और शरीर में लगाने में किया जाता हैं। इसका तेल अचार, साबुन तथा ग्लिसराल बनाने के काम आता हैं। तेल निकाले जाने के बाद प्राप्त खली मवेशियों को खिलाने के काम आती हैं। खली का उपयोग उर्वरक के रूप में भी होता हैं। इसकी खली में 4–5 प्रतिशत नाइट्रोजन होती हैं। इसका सूखा डंठल जलावन के काम में आता हैं। इसके हरे पत्ते से सब्जी भी बनाई जाती हैं। इसके बीजों का उपयोग मसाले के रूप में भी होता हैं। यह आयुर्वेद की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसका तेल सभी चर्म रोगों से रक्षा करता हैं। सरसों रस और विपाक में चरपरा, स्निग्ध, कड़वा, तीखा, गर्म, कफ तथा वातनाशक, रक्तपित्त और अग्निवर्द्धक, खुजली, कोढ़, पेट के कृमी आदि नाशक है और अनेक घरेलू नुस्खों में काम आता हैं। जर्मनी में सरसों के तेल

[1]शोध छात्र, कृषि कीट एवं जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थानकाशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
[2]शोध छात्र, कृषि कीट एवं जन्तु विज्ञान विभाग, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार
[3]आचार्य एवं विभागाध्यक्ष कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर
[4]

का उपयोग जैव ईंधन के रूप में भी किया जाता हैं। सरसों में अनेक प्रकार के कीट समय–समय पर आक्रमण करते हैं विभिन्न प्रकार के कीट सरसों में 15–30 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचा देते हैं। राई–सरसों की फसल में लगभग 50 प्रतिशत नुकसान कीट पहुँचाते हैं। लेकिन 4–5 कीट ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उनमें से मुख्य रूप से चैंपा या माहूँ, आरा मक्खी तथा चितकबरा कीट हानि पहुँचाते हैं। इसके अलावा अन्य मुख्य कीट मटर का पर्णखनक व बिहार की रोयेदार सूड़ी भी नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए यह अति आवश्यक हैं कि इन कीटों की सही पहचानकर उचित रोकथाम की जाएं। इस लेख में सरसों के कीटों के लक्षण व उनकी रोकथाम के उपाय दियें गए हैं।

1. माहूँ (लिपाफिस इरिसिमी)

माहूँ सभी सरसों उगाने वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। यह मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब आदि क्षेत्रों में अधिक आक्रमण करती है, यह कीट हल्के हरे–पीले रंग का 1.0 से 1.5 मि.

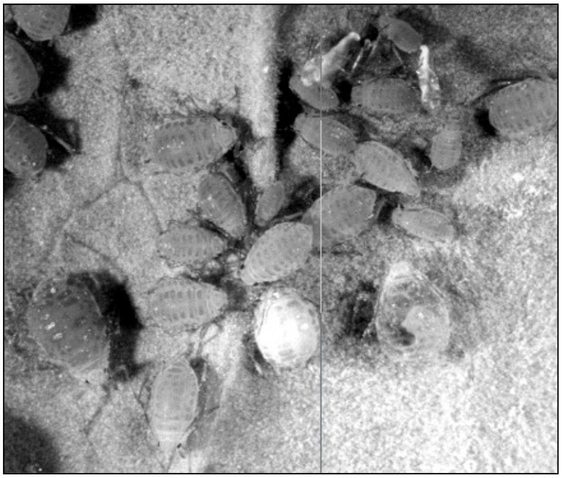

ली. लम्बा होता हैं। इसके प्रौढ़ एवं शिशु पत्तियों की निचली सतह और फलों की टहनियों पर समूह में पाये जाते हैं। इसका प्रकोप दिसम्बर मास के अंतिम सप्ताह में (जब फसल पर फुल बनने शुरू होते हैं) होता हैं व मार्च तक बना रहता हैं। ये कीट पंखयुक्त या बिना पंख के होते हैं। इस कीट के अगले पंख बड़े व पिछले छोटे होते हैं। इनके शरीर के उदर के पांचवें या छठवें खंड पर एक जोड़ी मधुनलिकायें (cornicle) पायी जाती हैं जिससे ये अतिरिक्त रस को बाहर निकाल देती हैं जिसे मधु पदार्थ (Honey dew) कहते हैं। इस कीट में बहुरूपता (Polymorphism) पायी जाती है। सरसों, तोरिया (राई), मूली, गोभीवर्गीय, पालक, आलू, तारामीरा आदि फसलों पर आक्रमण करते हैं। ये कीट दिसम्बर–मार्च तक सक्रिय रहते हैं तथा गर्मियों में पहाड़ों की तरफ चले जाते हैं। ये कीट 20°C से नीचे तापक्रम पर अधिक सक्रिय होते हैं। इस कीट के प्रौढ़ व शिशु दोनों पौधों की पत्तियों से रस चूसते हैं। लगातार आमण रहने पर पौधों के वभन भाग चपचपे हो जाते हैं, जिन पर काला कवक लग जाता है। अधिक आक्रमण होने

पर पौधें के पुष्पक्रम, तनों, फलियों पर अधिक संख्या में प्रौढ़ व निम्फ रस चूसते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती हैं, पत्तियाँ मुड़ जाती हैं, पुष्पों में फलियों का विकास नहीं होता है तथा लगभग 20–25 प्रतिशत तक उपज में हानि होती है।

प्रबंधन (Management)

- माहूँ कीट के प्रकोप से बचने के लिये सरसों के फसल की अगेती बुवाई अक्टूबर माह के तीसरे सप्ताह तक अवश्य कर दें।
- उर्वरकों का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से करें।
- शीघ्र पकने वाली प्रजाति जैसे वरूणा और क्रान्ति उगायें।
- इस कीट से ग्रसित पौधे को खेत से निकाल दें।
- खेत में खरपतवार न पनपने दें।
- रोगप्रतिरोधी किस्में जैसे– पूसा जय किसान, लाहा–101, पूसा कल्याणी आदि का प्रयोग करें।
- इस कीट के जैविक नियंत्रण के लिये निम्न परभक्षी कीटों का प्रयोग करें।

Coccinella septumpunctata, Menochilus sexmaculata, Chrysoperla cornea, Entomophthora cornata

- जब कीट का आर्थिक देहली स्तर (Economic Threshold level) 50–60 शिशु या प्रौढ़ / 10 से.मी. हो तो निम्न रसायनों का प्रयोग करें–

  डाइमेथोएट (Dimethoate) 30EC, या मैलाथियान 50EC, / 625–1000ml. दवा का 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

2. सरसों का आरा मक्खी (एथेलिया प्राक्सिमा और एथेलिया लजेन्स):–

यह कीट भारत के सभी सरसों उगाने वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इस कीट के प्रौढ़ का रंग नारंगी होता है। शरीर के ऊपर पीली व बादामी धारियाँ पायी जाती हैं। इस कीट के लार्वा गहरे हरे रंग तथा इनमें 8 जोड़ी टाँगें पायी जाती हैं अतः इनके लार्वा को 'स्यूडोकैटरपिलर' कहते हैं। इनकी लम्बाई 18–20 मिमी. तक होती है। यह कीट ब्रैसीकेसी कुल की सभी पौधों पर आक्रमण करता है, जैसे– सरसों, फूलगोभी, पात्तागोभी, गांठगोभी आदि। यह कीट अक्टूबर–मार्च माह में प्रजनन करते हैं तथा शेष महीने कोकूना में पड़े रहते हैं। इस कीट के प्रौढ़ अक्टूबर में निकलते हैं तथा ये 2–8 दिन तक जीवित रहते हैं। मादा कीट निषेचन के 2 दिन बाद पत्तियों को चीरकर उनमें एक–एक करके अंडे देती हैं। प्रायः अंड़े 30–35 दिये जाते हैं। अंडे 4–8 दिन बाद फूटते हैं तथा इनसे हरे रंग के लार्वा निकलते हैं जो 16–35 दिन में पूर्ण रूप से बड़े हो जाते हैं तथा प्यूपा बनाते हैं। प्रायः लार्वा

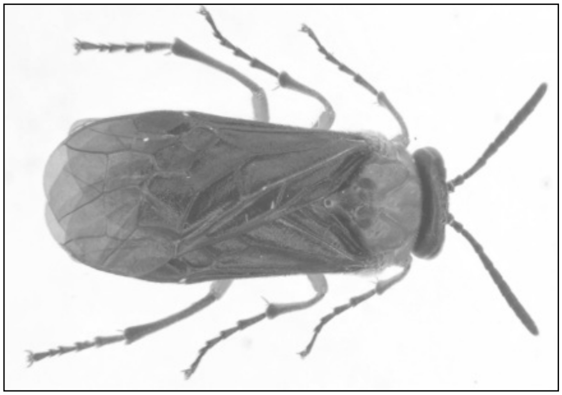

प्यूपा मिट्टी में बनाते हैं। प्यूपाकाल 11–20 दिनों का होता है, और फिर इनसे प्रौढ़ निकलते हैं। इस प्रकार इनका जीवनचक्र 30–34 दिन में पूर्ण होता है। इस कीट के लार्वा हानिकारक होते हैं। लार्वा पौधों की पत्तियों में पहले छोटे–छोटे छेद बनाते हैं तथा पूरी तरह से पत्तियों को खा जाते हैं, इस तरह से पत्तियों में केवल शिरायें ही शेष रहती हैं।

प्रबंधन (Management)

- अप्रैल–मई महीने में खेत की गहरी जुताई करें जिससे मृदा में उपस्थित प्यूपा नष्ट हो जायेंगे।
- फसल की अगेती बुवाई करें।
- खेत की सिंचाई बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद कर दें।
- खेत में खरपतवार न पनपने दें।
- खेत से लार्वा को हाथ से इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- रासायनिक नियंत्रण के लिये डाईमेथोएट (रोगार) 30EC का 625 मिली. दवा 250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर दें।
- फसल में इस कीड़े का कोप होने पर मैलाथयान 50 ई.सी. 200 मिली. दवा को 200 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

3. सरसों का चितकबरा कीट (बर्गाडा क्रूसीफरेरम):-

यह भारत के सभी सरसों उगाने वाले प्रांतों में पाया जाता है। इस कीट के प्रौढ़ 3.7 मिमी. लम्बे होते हैं, जिनका रंग काला होता हैं। शरीर के ऊपर नारंगी रंग और लाल रंग की बिन्दियाँ पाई जाती हैं। मादाकीट नर की अपेक्षा बड़ी होती है। यह कीट मूली, सरसों, शलजम, पात्तागोभी, फूलगोभी और अन्य बैसीकैसी कुल के पौधों पर आक्रमण करता है। यह कीट प्रायः दिसम्बर–मार्च महीने तक सक्रिय रहता है। इस कीट की मादा हल्के पीले रंग के अंडे पत्तियों, तंतुओं (Stalks), फलियों पर देती हैं। इन अंडों के फूटने के बाद इनसे छोटे–छोटे शिशु निकलते हैं, जिन्हें 'अर्भक' कहते हैं। इस कीट के निम्फ व प्रौढ़ पत्तियों व फली से रस चूसते हैं। ग्रसित पौधे सूखने लगते हैं तथा पौधे की वृद्धि रूक जाती है।

प्रबंधन (Management)

- खेत की सिंचाई बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद करें।

- फसल की बिजाई तब करें जब दिन का तापमान 30°C हो जाए।
- खेतों में समय से निराई–गुड़ाई व खरपतवार निकालते रहें।
- कटी हुई फसल की मड़ाई शीघ्र करें।
- जैविक नियंत्रण के लिये निम्न परजीवियों अंडा परजीवी Gryon sp. तथा प्रौढ़ परजीवी Alophora sp. को खेतों में स्थापित करें।
- बीज को 5 मिली. ईमीडाक्लोप्रीड 70 डब्ल्यू. एस. 5 किलोग्राम बीज के दर से उपचार करें।
- छोटी फसल में यदि प्रकोप हो तो क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत या मेलाथियान 5 प्रतिशत धूल 20–25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव सुबह के समय करें।
- अत्यधिक प्रकोप के समय मेलाथियान 50 ई. सी. तथा क्यूनालफास 25 ई.सी. का 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- फलियों का रंग सुनहरा होने पर फसल की कटाई कर लें जिससे कि अधिक हानि न हो और खलिहान में अधिक नुकसान से बचने के लिए जल्दी से जल्दी मढ़ाई कर लेनी चाहिए।

4. बिहार की रोयेंदार सूंडी (डाइक्रेसिया ऑब्लीक्यूआ वाकर):-

यह अत्यधिक बहुभोजीय व आकस्मिक प्रकृति का नाशीकीट है। पूर्ण विकसित सूंडी की 40–50 मिली. तक लम्बाई होती है। शरीर मोटे व लम्बे बालों द्वारा ढ़का रहता है। इस कीट की सूंड़ियों का प्रकोप तोरिया पर ज्यादा होता है। इस कीट के प्रथम व द्वितीय अवस्था की शिशु झुण्ड में इकट्ठा होकर पत्तियों के पर्णहरित को खाते हैं। यह कीट फसल की वानस्पतिक अवस्था में सितम्बर–नवम्बर के माह में अधिक आक्रमण करता है।

प्रबंधन (Management)

- इस कीट की सूंड़ियों को प्रथम और द्वितीय शिशु अवस्था में ही इनके झुण्ड को पत्तों सहित पकड़कर केरोसिन या कीटनाशी के घोल में डुबोकर नष्ट कर देना चाहिए।
- खेत के आस–पास के अन्य पौधे व खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- ज्यादा प्रकोप की अवस्था में फसल पर मेलाथियान 5 प्रतिशत धूल या मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत धूल कर 20–25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकाव करें। या मेलाथियान 50 ई.सी. 1 लीटर 500 ली. पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।

5. मटर का पर्णखनक (कोमेटोमाइया हॉर्टीकोला गौरयू)

मटर का पर्णखनक अत्यधिक बहुभोजीय नाशीकीट है। इस नाशीकीट की अधिकतम संख्या फरवरी–मार्च में पायी जाती है। 20–30°C तापमान पर ये कीट अधिक गुणन करते है। यह कीट लगभग 4.4–15.5 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचा सकता है। यह कीट घरेलु मक्खी के समान होता है। परन्तु आकार में काफी छोटा होता है। और उसी में कृमिकोष में चला जाता है। अत्यधिक ग्रसित पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया

प्रभावित होती है जिससे पुष्पन व फलन की गतिविधियां भी प्रभावित होती है।

प्रबंधन (Management)

- ग्रसित पत्तियों को तोड़कर जमीन में दबा देना चाहिए, ताकि पत्तियों में छिपे अपादक व कृमिकोष मर जाये।
- सर्वांगी कीटनाशी जैसे ऑक्सीडेमेटान मिथाइल 25 प्रतिशत सांद्रण या डाइमिथोएट 30 प्रतिशत साद्रंण की 1 ली दवा को 600–800 ली. पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करने से कीट का प्रभावी नियन्त्रण किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त तरीकों को अपनाकर किसान सरसों के प्रमुख कीटों का समेकित प्रबन्धन कर सकते हैं तथा पैदावार बढ़ा सकते हैं।

अध्याय – 14

टिकाऊ खेती के लिए गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनायें

के.एम. शर्मा[1] एवं हरीश वर्मा[2]

1. प्रस्तावना
2. जीवांश खादों का महत्त्व
3. गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनाने की विधियां
4. गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनाने में रखी जाने वाली सावधानियां

फसल उत्पादकता वृद्धि के लिये संतुलित पोषण आवश्यक है। उर्वरकों का फसलों में बेहिसाब एवं अंधाधुन्ध प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य पर दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं, साथ ही कीमती उर्वरकों के प्रयोग द्वारा किसानों को फसल उत्पादकता में बिना सार्थक वृद्धि आर्थिक भार वहन करना पड़ता है। अनुमानतः भारत देश में प्रति वर्ष खाद व उर्वरकों द्वारा जितनी मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश भूमि में दिये जाते है, उससे 10–11 मिलीयन टन अधिक ये तत्व भूमि से शोषित किये जाते हैं।

वे सभी कृषि पद्धतियां जिनमें कृषि रसायनों व उर्वरकों का बेहिसाब प्रयोग किया जाता है, तात्कालिक उत्पादकता बढ़ा सकते हैं लेकिन कृषि रसायनों का मृदा स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव होने से मृदा की उत्पादकता कम होती जा रही है। फसलों में असंतुलित पोषण से मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों का लगातार दोहन हो रहा है, मृदा उर्वरता स्तर घटता जा रहा है। मृदा में जैविक खादों के कम प्रयोग, कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग एवं अकुशल जल प्रबंधन से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल होती जा रही है। टिकाऊ खेती के लिए मृदा स्वास्थ्य का प्रबन्धन करना आवश्यक हो गया है। टिकाऊ खेती से आशय यह है कि हम ऐसे कृषि पद्धतियां अपनाये जिससे वर्तमान जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति होने के साथ–साथ भविष्य की संततियों की आवश्यकता का भी ध्यान रखें एवं मृदा व वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखें। टिकाऊ खेती तब ही संभव है जब हम मृदा के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए उत्पादकता स्तर बढ़ाये। मृदा स्वास्थ्य से आशय है कि भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के अनुकूल बनी रहे।

अनुसंधान परिणाम दर्शाते हैं कि रासायनिक उर्वरकों के साथ जीवांश खादें, जैसे गोबर की अच्छी पकी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खादें जैसे सनई, ढेंचा, ग्वार, मूंग आदि का समावेश कर समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन करने से न केवल उत्पादकता वृद्धि होती है वरन् दिये गये उर्वरकों का समुचित प्रयोग के साथ–साथ टिकाऊ खेती का आधार मृदा स्वास्थ्य

[1]सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा (राज.)
[2]सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड़ (राज.)

भी बना रहता है। अतः रासायनिक खादों के साथ–साथ जीवांश खादों का भी यथासंभव प्रयोग करने की आवश्यकता है।

जीवांश खाद से तात्पर्य प्रायः पशुओं के मलमूत्र, बिछावन तथा पशुओं द्वारा छोड़ा गया चारा एवं फसलों के अवशेष आदि के सड़ाने के बाद प्राप्त पदार्थ से है। गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट (नेडेप कम्पोस्ट, सुपर कम्पोस्ट व वर्मी कम्पोस्ट) खली और हरी खाद आदि जीवांश खादें है। इन खादों में सभी तरह के पोषक तत्व उपलब्ध होते है लेकिन कम मात्रा में होते है। इनसे पोषक तत्वों की प्राप्ति धीर–धीरे होती है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने में जीवांश पदार्थो का विशेष महत्व है। जिन मृदाओं में जीवांश पदार्थ 0.5 प्रतिशत से कम हो, उन्हें ''अजीवित मृदा'' की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि जीवांश पदार्थ नहीं होने से मृदा में लाभदायी सूक्ष्म जीवाणुओं की उपलब्धता एवं सक्रियता नहीं होने का पता चलता है। जीवांश पदार्थ मृदा की भौतिक दशा सुधारने में सहायक होते हैं। मृदा की दानेदार संरचना, अच्छी जलधारण क्षमता, पोषक तत्वों का संतुलन आदि महत्वपूर्ण मृदा स्वास्थ्य के मापदण्डों के लिए मृदा में जीवांश पदार्थों की मात्रा बनाये रखना आवश्यक है।

जीवांश खादों का महत्त्व

- मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है।
- समस्याग्रस्त भूमि के सुधार के लिए उपयोगी है।
- पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व पाए जाते हैं।
- सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं कार्यशीलता में वृद्धि होती है।
- मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है।
- गुणवत्तायुक्त गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट अच्छी तरह पकी होने से दीमक एवं खरपतवार के प्रकोप में कमी होती है।
- रासायनिक उर्वरकों की घुलनशीलता बढ़ती है, जिससे उर्वरक पौधों को आसानी से उपलब्ध होते है।

गुणवत्तायुक्त जीवांश खादें बनाने की विधियां–

1. गोबर की खाद (FYM)

गोबर की खाद तैयार करने तथा रख–रखाव के समय पोषक तत्वों की उल्लेखनीय मात्रा में क्षति हो जाती है। इसे पूर्णतया रोकना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी उन्नत विधि द्वारा खाद तैयार करने से इन हानियों को कम किया जा सकता है। गोबर की खाद तैयार करने की एक उत्तम विधि खाई विधि है। इस विधि में पशुओं की संख्या के अनुसार उपयुक्त आकार की खाई खोद लेते हैं। सामान्यतः खाई की लम्बाई 3 से 5 मीटर तक रखी जाती है, चौड़ाई 1 से 1.6 मीटर तथा गहराई 1 मीटर होती है। पशुओं की संख्या के आधार पर खाई के आकार को कम या ज्यादा रख सकते हैं लेकिन गहराई 1 मीटर ही रखते हैं।

खाई की भराई एक सिरे से प्रारम्भ करते हैं। प्रतिदिन पशुमूत्र सहित बिछावन तथा गोबर आपस में भली–भाँति मिलाकर खाई में एक ओर से डालना शुरू करते हैं। पहले लगभग एक मीटर लम्बी खाई को इस प्रकार भर लेते हैं कि उसकी ऊँचाई भूमि की सतह से 50 से.मी. ऊपर आ जावें।

फिर ऊपरी सतह को मिट्टी की पतली परत से ढ़क देते हैं। उसके बाद लम्बाई में एक मीटर का अगला भाग गोबर और बिछावन से भरते हैं। फसलों के अवशेष जैसे–पुआल, भूसा तथा घर का कूड़ा–कचरा भी पशुओं के गोबर व मूत्र के साथ मिलाकर खाई में भरा जा सकता है।

जब खाई पूर्णरूपेण भर जावें तब दूसरी खाई का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जब तक दूसरी खाई भरेगी, पहली खाई की खाद सड़कर तैयार हो चुकी होगी, जिसे खेत में डालकर गड्डे को पुनः खाद बनाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

2. कम्पोस्ट खाद

कम्पोस्ट बनाना एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थो, खरपतवार, भूसा, पुआल, फसलों के अवशेष जैसे कपास, तिल, सरसों के डण्ठल, मूंगफली के छिलके, घर का कूड़ा, कचरा, पशुओं की बिछावन व मूत्र, अवशेष पशुचारा आदि को सड़ाकर उनका कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात घटाया जाता है। इस प्रकार भली–भांति सड़ी हुई खाद को कम्पोस्ट कहते हैं। कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग की गई विधि के अनुसार इसको नेडेप कम्पोस्ट, सुपर कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट इत्यादि नामों से जाना जाता है। गोबर की खाद की तुलना में कम्पोस्ट में कार्बनिक पदार्थ और प्रमुख पोषक तत्वों की मात्रा अधिक पायी जाती है एवं मृदा को उर्वरक बनाये रखने में अधिक मूल्यवान होती है। विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ निम्न प्रकार से हैं :–

2.1 नेडेप कम्पोस्ट

इस नेडेप विधि में कम्पोस्ट जमीन के ऊपर पक्का ढांचा बनाकर तैयार की जाती है। कम्पोस्ट तैयार करने की यह वायविय (एरोबिक) विधि है।

(अ) टांका (होज) का नाप एवं निर्माण विधि

जमीन के ऊपर जहां पानी इकट्ठा नहीं होता हो, 12 फीट लम्बाई, 5 फीट चौड़ाई तथा 3 फीट गहराई का आयताकार पक्का ढांचा (होज/टांका) तैयार किया जाता है। दीवार की मोटाई 9 इंच से 12 इंच रखी जाती है तथा उसमें हवा के आवागमन हेतु प्रत्येक दीवार में लम्बाई की तरफ 7–8 तथा चौड़ाई की ओर 4–5 छिद्र रखे जाते हैं। ढांचे का फर्श भी ईंटों/पत्थर द्वारा पक्का बनाया जाता है तथा दीवारों व फर्श को सीमेन्ट द्वारा पक्का प्लास्टर किया जाता है, जिससे पोषक तत्व जमीन में/दीवारों से रिसकर नष्ट न हो।

(ब) टांका भरने की आवश्यक सामग्री–

1. खेत से प्राप्त अनावश्यक कार्बनिक पदार्थ जैसे–खरपतवार, फसल, अवशेष, सूखी पत्तियां, पशु–पुआल इत्यादि–1500–2000 किग्रा.
2. कचरा गोबर 90–100 किग्रा.
3. सूखी छनी खेत की बारीक मिट्टी–1500 किग्रा.
4. पर्याप्त पानी 1200–1500 लीटर।

(स) टांका भरने की विधि

प्रथम भराई

1. सबसे पहले 8–10 किग्रा. गोबर को 100–125 लीटर पानी में घोल बनाकर तैयार ढांचे के अन्दर की दीवारों व फर्श पर छिड़कें।

2. पहली परत–फसल अवशेषों की 15 सेमी. मोटी बनायें।
3. दूसरी परत 8–10 किग्रा. गोबर की 125–150 लीटर पानी घोलकर पहली परत पर इस प्रकार छिड़कें की यह पूरी तरह से भीग जाये।
4. तीसरी परत खेत की छनी हुई बारीक मिट्टी लगभग एक इंच मोटी परत (60–70 किग्रा.) दूसरी परत के ऊपर लगा देते हैं तथा पानी छिड़क कर गीला कर देते हैं।
5. तदुपरान्त इसी क्रम में टांके को भरते चले जाते हैं तथा टांके की ऊपरी सतह को झोपड़ीनुमा आकृति एक–डेढ ऊँचाई तक भरी जाती है।
6. अन्त में ढलवा आकृति पर 5–7 सेमी. मोटी परत बारीक रेत की लगाते हैं व मिट्टी गोबर के मिश्रण का लेप लगाकर टांके को बन्द कर देते हैं।

द्वितीय भराई

पहली भराई के 15–20 दिन बाद जब गड्ढा बैठ जावे तब ऊपर बताये गये क्रमानुसार 1.5 फीट ऊँचाई तक पुनः परत लगाते हैं। मिट्टी व गोबर के मिश्रण का पूर्व की भांति लेप लगाकर बन्द कर देना चाहिए। यदि बाद में दरारें आती है तो पानी छिड़क कर बन्द करना चाहिए। समय–समय पर पानी छिड़क कर नमी को बनाये रखनी चाहिए। 100–120 दिनों में कार्बनिक पदार्थ सड़कर तैयार (भूरे रंग का) हो जाता है। इस विधि द्वारा एक गड्डे से 12–15 टन तक कम्पोस्ट खाद प्रतिवर्ष तैयार की जा सकती है।

2.2 सुपर कम्पोस्ट

इस विधि में कम्पोस्ट भूमि के अन्दर गड्डा बनाकर तैयार की जाती है। कम्पोस्ट तैयार करने की यह एक अवायवीय (एरोबिक) विधि है। कम्पोस्ट में फास्फोरस की मात्रा बढ़ाने व फास्फोरस को लम्बे समय तक पौधे के लिए उपलब्ध रूप में बनाये रखने के उद्देश्य से कार्बनिक पदार्थो के साथ जिप्सम, रॉक फास्फेट या सिंगल सुपर फास्फेट मिलाकर तैयार की गई कम्पोस्ट 'सुपर कम्पोस्ट' कहलाती है।

(अ) आवश्यक सामग्री

1. फसल अवशेष, गोबर, मूत्र, कूड़ा करकट, पुआल, पशु बिछावन आदि।
2. जिप्सम 100 किग्रा. या रॉक फास्फेट 200 किग्रा. या सिंगल सुपर फास्फेट 50 किलोग्राम
3. जीवाणु कल्चर जिसमें अवायवीय परिस्थितियों में सड़ाने वाले जीवाणु हो।

(ब) विधि

ऐसे स्थान पर जहाँ पर वर्षा का पानी जमा नहीं होता हो 10 फीट लम्बा, 6 फीट चौड़ा व 3 फीट गहरा आकार का 1/2' ढाल वाला गड्ढा तैयार करें। इस गड्डे के तल पर एक परत सड़े गोबर की लगावें। फिर इसके ऊपर 1 फिट ऊंचाई तक गोबर के साथ पशु बिछावन/कूड़ा कचरा/सूखी पत्तियां/ खरपतवार/ घास–पात/पशुओं का बचा हुआ चारा/कड़बी आदि जो भी उपलब्ध हो डाले। इसे पानी छिड़क कर नम करें व इसके ऊपर 17 किग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 47 किग्रा. रॉक फास्फेट व 33 किग्रा. जिप्सम की परत लगावें। यही प्रक्रिया दो बार पुनः दोहरावें। इस गड्डे के ऊपर गुम्बदाकार रूप में कचरा भरें व मिट्टी की हल्की परत से ढ़क कर मिट्टी व गोबर मिश्रण का लेप करें। करीब तीन–चार माह में सुपर कम्पोस्ट बनकर तैयार हो

जाता है। यह जाँच करने के लिए सुपर कम्पोस्ट तैयार हुआ या नहीं, मध्य से एक बांस को गड्डे के तल तक डाले। अगर बांस धीरे–धीरे आसानी से पैंदे तक चला जाता है तो खाद तैयार है।

वर्मी कम्पोस्ट खाद क्या है ?

केंचुओं के द्वारा आवश्यक नमी, तापक्रम एवं ऑक्सीजन मिलने पर फसलों के अवशेष, गोबर एवं धीमे सड़ने वाले कार्बनिक पदार्थों के विघटन से बनी खाद जिसमें केंचुओं की कास्टिंग, मल, केंचुऐं कोकून, लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु एवं आवश्यक पोषक तत्व इत्यादि पाये जाते है। इसे ही वर्मी कम्पोस्ट खाद कहते है। उपयुक्त तापमान, नमी, हवा एवं जैविक पदार्थ मिलने पर केंचुऐं अपनी संख्या बढ़ाने के साथ–साथ गोबर एवं वनस्पति अवशेष आदि को सड़ाकर जैविक खाद के रूप में परिवर्तित करते हैं। केंचुओं का वैज्ञानिक तरीके से प्रजनन तथा बडे करना वर्मी कल्चर कहलाता है। वर्मी कल्चर का मुख्य उद्‌देश्य केंचुओं की जल्दी, कम समय एवं कम जगह में बढ़ोतरी कर भूमि की दशा में सुधार करना है।

केंचुओं का चयन

कम्पोस्टिंग प्रक्रिया को शीघ्रता से करने के लिए केवल उन्हीं प्रजातियों का चयन करना चाहिए जिनमें वातावरण के उतार–चढ़ाव सहन करने की क्षमता, प्रजनन एवं वृद्धि दर अधिक है। कार्बनिक पदार्थो को शीघ्र व अधिक मात्रा में कम्पोस्ट बनाने की क्षमता हो। इन गुणों से युक्त आईसीनिया फोइटिडा प्रजाति उपयुक्त पाई गई है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि

वर्मी कम्पोस्टिंग वह विधि है, जिसमें केंचुओं व सूक्ष्म जीवों से कूडा–करकट कार्बनिक अवशेष व गोबर को उपजाऊ खाद वर्मी कम्पोस्ट में बदला जाता है।

- वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए गोबर, कचरा, पानी एवं छाया की आवश्यकता होती है। इसके लिए गोबर की मात्रा के अनुसार 8–10 फीट ऊँचा छायापट शेड बनाया जाता है।
- जमीन की सतह पर सुविधा एवं गोबर की मात्रा के अनुसार 3 फीट चौड़ी व 10 फीट लम्बी एक डोली के आकार की बैड बनाई जाती है।
- तैयार बैड पर 6–7 फीट उंचाई पर कम लागत की टापरी/छान द्वारा अस्थाई/स्थाई छाया तैयार कर लेते हैं, ताकि उपयुक्त तापमान व छाया बनाई जा सके। ये स्थानीय रूप से उपलब्ध घास–फूस व बल्ली डण्डियों की सहायता से तैयार की जा सकती है।
- गोबर की बैड में 5–6 दिन तक दिन में एक बार पानी का छिड़काव करते हुए दो दिन के अन्तराल पर पंजे की सहायता से उलट–पुलट करते हैं, जिससे गोबर से निकलने वाली गैस बाहर निकल जाये और वायु संचार तथा गोबर का तापमान भी ठीक हो जाता है।
- 5–6 दिन बाद तापमान को देखने के लिए कचरे व गोबर के ढेर मे हाथ डालकर देखने पर गर्मी महसूस नहीं होनी चाहिए जब ढेर का तापमान 25–30 डिग्री सेल्शियस हो जाये, उस समय 3 किग्रा. केंचुऐं (आइसीनिया फोईटिडा) प्रति 10x3x1क्युबिक फीट बैड के हिसाब से ढेर में छोड़ देवें।

- प्रति 10x3x1क्युबिक फीट लम्बी बैड में 200 ग्राम ट्राइकोडरमा, 200 ग्राम एजोटोबेक्टर, 200 ग्राम पी.एस.बी. व 500 ग्राम नीम की खली को समान रूप से बिखेरकर वर्मी कम्पोसट ढेर में मिलायें।
- फिर इस ढेर को पुरानी जूट की बोरियों या अन्य कार्बनिक अवशेषों से ढक देना चाहिए, क्योंकि केंचुऐं अंधेरे में अधिक क्रियाशील रहते हैं।
- 30–35 प्रतिशत आर्द्रता (नमी) बनाये रखने के लिए सर्दियों में एक बार व गर्मियों में दो बार प्रतिदिन पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। पानी का छिडकाव आवश्यकतानुसार करें। आवश्यकता से अधिक गीला नहीं करें।
- लगभग दो माह में गोबर व कार्बनिक अवशेषों को केंचुऐं व सूक्ष्म जीव वर्मी कम्पोस्ट खाद में बदल देते हैं।
- तैयार वर्मी कम्पोस्ट दानेदार काले रंग का (चाय की सूखी पत्ती के समान) रूप ले लेता है, जो इसके तैयार होने की पहचान है।
- तैयार वर्मी कम्पोस्ट को बैड से बाहर निकालकर छलनी द्वारा वर्मी कम्पोस्ट खाद को अलग करके कैंचुओं को पुनः वर्मी कम्पोस्ट खाद बनाने के काम में ले लेते हैं। या तैयार वर्मी कम्पोस्ट बैड से वर्मी कम्पोस्ट खाद उतारते रहे। आखिर में थोडी सी खाद की मात्रा के साथ कैंचुऐं ही शेष रहते है। उसी बैड के पास नई बैड लगा देते हैं। जैसे ही कैंचुओं को उपयुक्त वातावरण मिलेगा, अपने आप ही नई बैड में आ जायेंगे।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने में रखी जाने वाली सावधानियाँ

- रोग ग्रसित फसल अवशेषों का प्रयोग नहीं करें।
- कठोर टहनियों व शाखाओं का प्रयोग नहीं करें, क्योंकि इनके सड़ने में देरी लगती है तथा केंचुऐं खा नहीं पाते। इन अवशेषों को कुट्टी काटने की मशीन से काट लेवें।
- खरपतवार अवशेषों को फूल आने से पूर्व ही काम लेवें।
- वर्मी कम्पोस्ट बैड छाया और ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए, क्योंकि पानी की आवश्यकता समय–समय पर पड़ती रहती है।
- वर्मी कम्पोस्ट बैड का तापमान 25–30 सैल्शियस बनाये रखना उपयुक्त है अधिक तापमान में केंचुऐं के शरीर से पानी का निकास हो जाता है, जिसके कारण केंचुए मर जाते है।
- वर्मी कम्पोस्ट बैड में अंधेरा बनाये रखना उचित होता है क्योंकि केंचुऐं रात्रिचर होने के कारण अंधेरे में अधिक क्रियाशील होते हैं।
- वर्मी कम्पोस्ट बैड में 30–35 प्रतिशत नमी होनी चाहिए, इसकी जांच के लिए बैड से वर्मी कम्पोस्ट पदार्थ लेकर मुट्ठी से निचोने पर नमी महसूस हो, लेकिन हाथ गीला नहीं होना चाहिए।
- वर्मी कम्पोस्ट बैड में प्रत्येक सप्ताह कम से कम एक पंजा चलाकर वायु संचार बढ़ाना चाहिए। जिससे केंचुऐं को वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त वातावरण मिल सकें।

- तैयार बैड में 5–6 दिन बाद ही केंचुऐं छोड़े ताकि गैस व तापमान उपयुक्त हो जाये अन्यथा कैंचुए मर जाने की संभावना रहती है।

वर्मी कम्पोस्ट का फसलों पर प्रयोग :– वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है।

कृषि वैज्ञानिकों व कृषि के अन्य विशेषज्ञ जो वर्मी कम्पोस्ट का विभिन्न फसलों पर अध्ययन कर रहे हैं, उनके व्यवहारिक अनुभव के आधार पर प्रस्तावित सिफारिशें तालिकानुसार है।

फसलों के लिए वर्मी कम्पोस्ट की मात्रा

क्र.सं.	फसलें	मात्रा	प्रयोग समय
1	सब्जियां	8 टन/है.	बुवाई व पौध रोपण से पूर्व
2	फसलें	4 टन/है.	बुवाई से पूर्व
3	फलदार पौधे	10 किग्रा./पौधा	नई फूटान के एक माह पूर्व
4	नर्सरी (1.0’x15’)	20 किग्रा/क्यारी	बीज रोपण से पूर्व
5	थैलियों में	मिट्टी के बराबर	थैली भरते समय
6	गमले वाले पौधे में	200 ग्राम / गमला	पौधा बदलते समय

खंड–3

पशुपालन तकनीक

अध्याय – 15

बकरी पालन एक लाभकारी व्यवसाय

हँसराम मीना[1]

1. प्रस्तावना
2. बकरियों की नस्ले
3. चारा प्रबन्धन
4. आवास प्रबन्धन
5. बीमारियों से बचाव
6. प्रजनन के समय बकरियों की देखभाल
7. गर्भ अवस्था के समय देखभाल
8. बकरी के बच्चों की देखभाल

परिचय

बकरी पालन भूमिहीन कृषकों सीमान्त पशु पालकों का एक पूरक व्यवसाय है चुँकि अन–उपजाऊ एवं बंजर भूमि पर उगी झाडियों कटीले वृक्षों की पत्तियाँ खा–खा कर अपना जीवन निर्वाह करने में सक्षम हैं। यह वर्ष में दो या दो से अधिक बच्चे पैदा कर, दिन में कई बार दूध दोहन कर, अधिक दूध एवं कम वसा वाले मांस (चेवन) के उत्पादन में सहायक है। इसका दूध फफूँदी नाशक, जीवाणु नाशक एवं एलर्जी नाशक होने के कारण अत्यन्त पाचक होता हैं। इसका व्यवसाय कम लागत, पशु घर की कम आवश्यकता, कम प्रबन्धन तथा कम जोखिम वाला है। इसलिए इसको चलता फिरता प्रशीतक। बकरी को गरीब की गाय की संज्ञा दी गई है।

पशु सर्वेक्षण के आधार पर भारत में संसार की बकरियों की सबसे अधिक संख्या होने के

कारण प्रथम पंक्ति में इसे रखा गया है। इसकी उन्नत नस्लों में जमुनापारी, बीटल, जखराना, बरबरी, मारवाडी, सिहोही, ब्लेक बंगाल तथा पहाड़ी बकरी आदि प्रमुख हैं। ये प्रायः 10–12 माह की अवस्था में युवा होकर 16–17 माह तक पहला बच्चा दे देती हैं, जो अपने दुग्ध काल (150–195) दिन में 100–200 किलों दूध तथा इसके नर एक वर्ष की आयु में 10 किलों मांस तक दे देता हैं। अच्छे व्यवसाय हेतु 6 वर्ष की आयु के पशु को झुण्ड से बाहर निकालना अति आवश्यक हैं।

बकरियों की नस्ल

विश्व में लगभग 102 बकरियों की नस्ल पायी जाती हैं जिसमें करीब 20 नस्लें भारतवर्ष में पायी जाती हैं। बकरियों को मुख्यरूप से दुग्ध उत्पादन व मॉस उत्पादन के लिए पाला जाता हैं लेकिन मॉस उत्पादन मुख्य उदेश्य होता हैं। बकरी पालन के उदेश्यों के अनुसार निम्नलिखित मुख्य नस्लें पायी जाती हैं।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल 132001 (हरियाणा) भारत

तालिका : 1 बकरी पालन की कुछ आर्थिक लक्षण निम्नलिखित होते हैं :-

1.	वयस्क बकरी की उम्र	9 से 12 महिने
2.	पहले ब्याँत की उम्र	15 से 18 महिने
3.	गर्भकाल अवधि	145 से 150 दिन
4.	दो ब्याँतों का अन्तर	8 से 9 महिने
5.	दो बच्चों की सम्भावना	30 से 40 प्रतिशत
6.	तीन बच्चों की सम्भावना	10 से 15 प्रतिशत
7.	उत्पादन उम्र	6 से 7 वर्ष
8.	बच्चों की मत्यु दर	8 से 10 प्रतिशत
9.	वयस्क बकरियों की मत्युदर	5 प्रतिशत
10.	दो वर्ष में बच्चे	तीन
11.	नर मादा अनुपात	1:11

तालिका : 2 उम्र के अनुसार बकरी के बच्चों का वजन

क्र.स.	उम्र	नर कि.ग्रा	मादा कि.ग्रा.
1.	जन्म के दिन	2.0	2.0
2.	3 महिने	6.5	5.5
3.	6 महिने	12.0	10.25
4.	12 महिने	19 से 22	19 से 20

1. दुग्ध व मॉंस दोहरे उद्देश्य बरबरी, जमुनपारी, सागानेरी, बीतल, अजमेरी तथा कच्ची / कच्छी
2. मॉंस उत्पादन के लिए – मारवाडी, असमी, काली बंगाली व भुरी बंगाली
3. उन उत्पाादन– अंगोरा गददी औार पश्मीना
4. विदेशी नस्लें – सानन, एलपाइन, टोनानर्ब, एगलोनुबेग

मॉंस उत्पादन के मुख्यतः दो कारक होते हैं।

1. नवजात बच्चों की / मेमनों की बढवार।
2. बच्चों की दर

प्रति बकरी अधिक बच्चे देना व बच्चों की बढवार व्यवसायरूप से बहुत महत्वपूर्ण होता हैं। यह दर अलग–अलग नस्लों में भिन्न–भिन्न होती हैं।

मॉंस उत्पादन का उपयुक्त समय / उम्र 10 से 12 महीने होती हैं इस उम्र का मॉंस स्वादिष्ट, मूलायम तथा लोगों को बहुत पसन्द आता हैं। उपरोक्त वजन उम्र के अनुसार केवल मॉं का दूध पिलाने पर होता हैं अगर बच्चों को बाजार में उपलब्ध राशन दिया जाये तो अधिक बढवार / वजन प्राप्त किया जा सकता हैं। शरीर भार का 50 से 55 प्रतिशत भाग मॉंस के रूप में उपलब्ध होता है।

तालिका: 3 चारा दाना- यदि बकरियों को पूर्ण रूप से रताल/घर में ही रखकर पाला जाता हैं तो निम्न चारा/दाना प्रतिदिन देने की आवश्यकता होती हैं।

1	हरी घास	3 से 4 किग्रा
2	सूखी घास	1 से 2 किग्रा
3	बना बनाया दाना	200 से 250 ग्राम

यदि बकरियों को चारागाहों में चारा खाने हेतु भेजा जाता हैं तो उपरोक्त मात्रा का 50 प्रतिशत दिया जा सकता हैं।

बच्चों का चारा दाना

बकरियों के बच्चों को शुरू से ही माँ का दुग्ध/चुघने दिया जाना चाहिए जिससे कि उनको उचित मात्रा में खीस मिल सके और बीमारियों से लडने की प्राकृतिक शक्ति प्राप्त हो सके। दस से बारह दिनों के बाद अतिरिक्त विशेष राशन बच्चों को दिया जाना चाहिए। लेकिन दूध लगातार ढाई से तीन माह तक की उम्र तक पिलाना चाहिए। इसके साथ –साथ मुलायम हरी घास जैसे मक्का के पत्ते रिजका या दूसरी पत्तियों को खिलाना चाहिए

आवास प्रबन्धन

1. बकरियों का बाडा शुष्क एवं समतल सतह पर बनाना चाहिए।
2. पानी भराव व दलदली स्थानों को बाड़े के लिए नहीं चुनना चाहिए।
3. ढलान व अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बाड़े की छत अच्छी प्रकार से बनाई जानी चाहिए।
4. शीतोष्ण हिमालय क्षेत्रों में बाडें की छत लकडी की बनानी चाहिए ताकि अधिक ठंड से बचा जा सके।
5. बकरियों का बाड़ा जमीन से करीब 10 फीट ऊँचाई पर होना चाहिए और हवा निकास के लिए समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
6. नर बकरियों (बकरों) को अलग–अलग बाड़े में रखना चाहिए ताकि एक दूसरे के साथ झगड़ न पाये।
7. एक बाड़े में करीब 60 बकरियों को एक साथ रखा जा सकता है।
8. गर्मियों के समय में बकरियों को छायादार स्थान तथा ठंडा व शुद्ध पानी पीने के लिए उपलब्ध कराना चाहिए।
9. बकरियों के मल–मूत्र को ठीक प्रकार से एकत्रित कर रखना चाहिए यह भी बहुमूल्य पदार्थ है और बेचने पर अधिक आय देते हैं।
10. बकरियों को रहने के लिए समुचित व्यवस्था करें तथा किसी भी प्रकार की भीड़–भाड़ से बचायें ।

प्रजनन हेतु पशुओं का चुनाव एवं प्रबन्धन

1. बकरियों की खरीददारी किसी विश्वसनीय व्यक्ति या नजदीकी फार्म से करनी चाहिए जिसकी पूर्व में पूर्ण जानकारी हो।
2. खरीदते समय पशु स्वस्थ हो तथा दिखने में भी सुन्दर दिखाई दे। पशु की खरीददारी करते समय पशु चिकित्सक या बैंक के तकनीकी अधिकरी की सहायता पशु के चुनाव में लेनी चाहिए।

तालिकाः 4 बकरियों को निम्न प्रकार से स्थान की आवश्यकता होती है :-

क्र.सं.	बकरियों के प्रकार	स्थान की आवश्यकता वर्गमी./बकरी	प्रति बाड़ा बकरियों की अधिकतम संख्या
1	युवा बकरी	1.00	60
2	दूध देने वाली बकरी	1.68	केवल एक
3	बकरा (नर बकरी)	3.4	केवल एक
4	बच्चे	0.4	75

3. खरीदे गये पशु प्रजनन के लिए तैयार हो और उत्पादकता की उचित अवस्था में हो।
4. नये खरीदे गये पशुओं को उचित प्रकार से पहचान नम्बर या मार्क लगाकर चिन्हित कर पहचान करें ।
5. नये खरीदे गये पशुओं का टीकाकरण करायें ।
6. नये खरीदे गये पशुओं को करीब 15 दिनों तक अलग रख कर निरीक्षण करना चाहिए कि किसी प्रकार की बीमारियों के लक्षण तो नहीं हैं।
7. बिना उत्पादक पशुओं को बेच देना चाहिए और नये खरीदे गये या फार्म में जन्में पशुओं को मिलाना चाहिए ।
8. अधिकतम उत्पादन के लिए 8–9 महिनों के अन्तराल पर ही प्रजनन कराना चाहिए ।
9. छः वर्ष से अधिक आयु वाले पशुओं को मीट के लिए बेच देना चाहिए ।
10. अधिक गर्मी व सर्दियों के दिनों में बकरियों से बच्चे उत्पादन नहीं कराना चाहिए।

चारा/राशन प्रबन्ध

1. बकरियों को चबाने के लिए झाडियाँ व कटीले वृक्ष प्रचुर मात्रा में होने चाहिए ।
2. यदि झाडियाँ उपलब्ध नहीं हो तो फार्म/खेतों में चारे की फसल उगाकर चारा आपूर्ति सुनिश्चित करें।
3. बकरियों को मोटा चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करायें।
4. जैसा कि सर्व मान्य नियम है कि पशुओं को आवश्यक 2/3 भाग ऊर्जा मोटे चारे से ही मिलनी चाहिए। कुल चारे की मात्रा का आधा मोटा चारा दलहनी फसल की हरा चारा तथा शेष घास या पेड़ पोधों की पत्तियों से आपूर्ति करनी चाहिए।
5. उच्च गुणवत्ता वाली हरी घास अधिक मात्रा में नहीं होने पर दाने से आपूर्ति करनी चाहिए।
6. नये जन्में बच्चे को करीब 5 दिनों तक खीस पिलाना चाहिए तत्पश्चात् स्र्टाटर राशन की आपूर्ति करनी चाहिए।
7. करीब 15 दिनों के बाद नये जन्में बच्चों को हरा मुलायम या दलहनी फसलों का चारा देना चाहिए।
8. स्वस्थ पानी व नमक की आपूर्ति हमेशा बकरियों के शैड में होनी चाहिए।
9. प्रजनन के समय बकरों व वयस्क बकरियों को राशन की मात्रा अधिक देनी चाहिए।

बीमारियों से बचाव

1 किसी भी प्रकार के बीमारी के लक्षण को ध्यान से देखना चाहिए जैसे चारे खाने में कमी करना, अप्रिय श्रव और अप्रिय व्यवहार।

2 अगर किसी प्रकार की बीमारी का अंदेशा हो तो नजदीकी पशु चिकित्सक से तुरन्त संपर्क करना चाहिए।

3 सामान्य बीमारियों से पशुओं का बचाव करना चाहिए।

4 किसी भी प्रकार की संक्रमित बीमारी की महामारी से बचाने के लिए सबसे पहले संक्रमित पशुओं को बीमार पशुओं से अलग कर देना चाहिए। तत्पश्चात् आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए।

5 एक निश्चित अन्तराल पर पशुओं को कीटों की दवा का सेवन कराना चाहिए तथा पशु चिकित्सक से गोबर की जाँच कराकर पेट के कीडो की उचित दवा पिलानी चाहिए।

6. पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए साफ पानी व अच्छा चारा उपलब्ध कराना चाहिए ।

7. निर्धारित टीकाकरण को उचित समय व पशुओं की उम्र के अनुसार लागू करना चाहिए। बकरियों के लिए मुख्य रूप से बकरी चेचक, पी.पी.आर. आदि का टीकाकरण करना जरूरी है ।

प्रजनन के समय बकरियों की देखभाल

- प्रबन्धन के वैज्ञानिक तरीकों को अपनाना चाहिए ताकि दो वर्षो में तीन बार बच्चे लिये जा सके ।
- प्रजनन ऋतु में करीब 25 बकरियों के लिए एक बकरा उपलब्ध रहना चाहिए ।
- अधिकतम गाभिन दर के लिए गर्मी के लक्षण दिखाई देने के करीब 12 घण्टे बाद बकरी को गाभिन कराना चाहिए ।
- गर्भ धारण न करने वाली बकरियों का निरिक्षण एवं उपचार कुशल पशुचिकित्सक से कराना चाहिए और अगर जरूरी हो तो उन्हें झुण्ड से बाहर कर बेच देना चाहिए ।

गर्भ अवस्था के समय देखभाल

- पशुओं को प्रसुति के अन्तिम दिनों में एक अलग शैड में रखना चाहिए या मुख्य शैड के एक निश्चित जगह पर जो कि ठीक प्रकार से जीवाणु रहित होनी चाहिए। प्रसूति के बाद पशुओं को गर्म भूसी जैसे–गेहूँ की, चावल की आदि दो दिनों तक देना चाहिए ।

बकरी के बच्चों की देखभाल

- नये जन्में बच्चे के नाल को 1.5 –2 इंच छोड कर एक तेज धार वाले चाकू या ब्लेड से काट देना चाहिए और उसके ऊपर टिंचर आयोडीन लगा देना चाहिए।
- शुरू के दो महीनों तक बच्चों को अधिकतम गर्मी व सर्दी से बचाना चाहिए।
- बच्चों को दो सप्ताह के अन्दर सींग रोघन पशु चिकित्सक की सलाह से कर देना चाहिए।
- उच्च गुणवत्ता मीट के उत्पादन हेतु नर पशुओं का बंधियाकरण कर देना चाहिए।
- निर्धारित टीकाकरण कार्यक्रम के अनुसार पशुओं का टीकाकरण करना चाहिए।
- करीब 8 सप्ताह के बाद बच्चों का माँ से दूध पिना छुडवा देना चाहिए ।
- नये जन्मे बच्चों को एक अलग शैड या बांस लगाकर अलग रखना चाहिए ताकि बड़े पशुओं के नीचे न आ सके ।
- अच्छे पशु प्रबन्धन के लिए सभी पशुओं का रिकार्ड रखना चाहिए और जन्म के समय का शरीर भार व दूध छोड़ने पर शरीर भार के आधार पर ही पशुओं की छटनी करनी चाहिए।

अध्याय – 16

मुर्गी पालन एवं अण्डा उत्पादन : ग्रामीण व्यवसाय

पंकज कुमार[1] एवं सरोज कुमार रजक[2]

1. प्रस्तावना
2. कुक्कुट पालन के आर्थिक पहलु
3. कुक्कुट पालन के व्यवसायिक पहलु
4. चूजों के प्रबंधन में सावधानियाँ
5. बैक यार्ड मुर्गी की प्रजातियाँ

आज हमारे देश में मुर्गी पालन का व्यवसाय लोकप्रिय हो चुका है। गांव से लेकर शहर तक हर जगह लोगों ने मुर्गी पालन का व्यवसाय अपनाना शुरू कर दिया है। हम सभी इस बात को जानते हैं कि आहार को संतुलित बनाने के लिए पशुधन से प्राप्त होने वाले प्रोटीन जैसे–दूध, मांस और अंडे का उपयोग आवश्यक है। मुर्गी पालन का व्यवसाय कम जमीन, कम पूंजी और थोड़ी मेहनत से ही शुरू किया जा सकता है। खेती के काम के बाद बचे समय में मुर्गी पालन किया जा सकता है। घर की औरतें और बच्चे भी अपने फालतू समय में इस व्यवसाय को आराम से कर सकते हैं। घरों में अगर मुर्गियाँ पाली जाये तो उसके रख–रखाव तथा खुराक पर अधिक खर्च नहीं करना पड़ता क्योंकि घर का बचा–खुचा भोजन एवं अन्य कृषि उत्पाद मुर्गियों को दे दिया जाता है तथा उसके बदले हमें ताजे और पौष्टिक अण्डे मिलते हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक लाभप्रद हैं। जो लोग शाकाहारी हैं वे भी उन अण्डों को जो बिना मुर्गे से प्राप्त होते हैं, खा सकते हैं। इस तरह लोग अपने बचे हुए समय में मुर्गियाँ पालकर उसके अण्डे तथा मांस बेचकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

उपयोगिता के आधार पर मुर्गियाँ तीन प्रकार की मानी जाती है। पहली वे मुर्गियाँ जो सिर्फ मांस की पैदावार के लिए उपयोगी होती है, दूसरे प्रकार की मुर्गियाँ ज्यादा अण्डे देती है तथा तीसरे प्रकार की मुर्गियाँ दोनों प्रकार से उपयोगी होती है, यानि उससे मांस और अण्डे दोनों की प्राप्ति होती है। कुछ लोग मनोरंजन के लिए भी मुर्गीपालन करते हैं। इसके अतिरिक्त आजकल गहन शोध के फलस्वरूप संकर किस्म की मुर्गियाँ उत्पन्न की गई हैं, जिनको विभिन्न व्यवसायिक नामों से हैचरियों द्वारा बेचा जाता है। ये नाम है हाई–लाइन, रानीशेभर, बैबकौक, हवाई इत्यादि। प्रत्येक में अंडा देने वाली (लेयरस्ट्रेन) तथा मांस उत्पन्न करनेवाली (ब्रोयलर स्ट्रेन) किस्में होती हैं। इनकी उत्पादन क्षमता शुद्ध नस्लों की अपेक्षा अधिक होती है। इनकी साल में अंडा उत्पादन क्षमता 260 से 280 अंडे होती है। इसका शारीरिक वजन पाँच सप्ताह की उम्र में एक किलो हो जाता है तथा आठ सप्ताह में दो किलो से भी अधिक हो जाता है। परन्तु एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ये सभी व्यवसायिक नस्लें संकर (क्रोस ब्रीड) किस्म

[1]सहायक प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा), बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना (बिहार)
2

की मुर्गियाँ है, अतः इसकी अधिक उत्पादन क्षमता केवल एक पीढ़ी तक ही संतोषप्रद रहती हैं। इससे उत्पन्न चूजों का उत्पादन बहुत ही घट जाता हैं इसलिए प्रत्येक बार एक दिन के चूजों से ही व्यवसाय शुरू करना चाहिए।

मुर्गी पालन व्यवसाय शुरू करने से पहले इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि अंडा उद्योग करना है या मांस उद्योग उसी के अनुसार मुर्गी की नस्लों को रखना चाहिए। छोटे तथा मध्यम श्रेणी के मुर्गी पालकों के लिए यह श्रेयस्कर होगा कि वे व्यवसायिक नस्लों की मुर्गियाँ ही रखें।

ग्रामीण क्षेत्रों में बैक यार्ड मुर्गीपालन बहुत ही पुराना है। इसमें ज्यादातर किसान देशी मुर्गियों का चयन करते है। बैक यार्ड मुर्गीपालन खुले स्थान, घर के पिछवाड़े या आंगन में किया जाता हैं। मुर्गियाँ बचा हुआ खाना, साग–सब्जी एवं कीड़े–मकोड़े खाकर अपना पालन–पोषण करती है। मुर्गियों को किसी प्रकार के विशेष आवास की आवश्यकता नहीं होती है। इस तरह के मुर्गियों में रोग प्रतिरोधक क्षमता ब्रॉयलर एवं लेयर नस्लों से ज्यादा होती है। ग्रामीण क्षेत्रों की अण्डे एवं मांस की मांग को घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन से पूरा किया जा सकता है।

अगर आप कुक्कुट पालन को वृहद स्तर पर सीमित संसाधनों में करना चाहते हों तो इसके निम्न आर्थिक एवं व्यवसायिक पहलुओं पर ध्यान देना होगा।

कुक्कुट पालन के आर्थिक पहलु : कुक्कुट पालन व्यवसाय में भी अन्य व्यवसायों की तरह उतार–चढ़ाव होता रहता है। इस व्यवसाय में लाभ आमतौर पर इसमें लगी लागत एवं उत्पादों की बिक्री से प्राप्त आय के सम्यक संबंध पर निर्भर करता है। कुक्कुट व्यवसाय में लाभ निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है :–

- मुर्गियों की प्रति वर्ष अण्डा उत्पादन क्षमता।
- मृत्यु दर एवं रख–रखाव में निपुणता।
- व्यवहार में आनेवाले उपादानों, खासकर कुक्कुटों के खाद्य पदार्थों का मूल्य ।
- बिजली की दर।
- अण्डों एवं प्रति किलो मांस की बिक्री दर।
- प्रक्षेत्र में मुर्गियों की संख्या एवं बिक्री की निपुणता।
- आहार को मांस या अण्डा में परिवर्तन करने की मुर्गियों की क्षमता– व्यवसाय के लिए मुर्गियों के बच्चे हमेशा मान्यता प्राप्त हैचरियों से ही प्राप्त करना चाहिए क्योंकि इसमें उत्कृष्ट अनुवांशिक गुणों का होना आवश्यक है।

कुक्कुट पालन के व्यवसायिक पहलु : मुर्गी पालन का व्यवसाय शुरू करने के पहले मुर्गीपालकों को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है:–

- अनुभव के लिये व्यवसाय पहले छोटे रूप में प्रारंभ करना चाहिए फिर धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए।
- व्यवसाय शुरू करने से पहले मुर्गी के घर, उपकरण एवं चारा दाने का प्रबंध कर लेना चाहिए।
- ज्यादा अण्डा देने वाली मुर्गियाँ, अण्डा या एक दिन का चुजा खरीद कर यह व्यवसाय शुरू

किया जा सकता है। हमेशा अधिक अण्डा देने वाली उन्नत नस्ल की मुर्गियों का ही चुनाव करें। सरकारी मुर्गी फार्म से आप जब भी अण्डा देने वाली मुर्गियाँ खरीदें तो यह अवश्य देख लें कि उन्हें रानी खेत और चेचक का टीका लग चुका है।

- 8–10 मुर्गियों के लिए एक ही मुर्गा रखना पर्याप्त है और यदि निर्जीव अण्डा पैदा करना है, तो मुर्गा रखने की जरूरत नहीं हैं।
- मुर्गी का घर ऊंची जगह होना चाहिए ताकि जमीन में नमी न रहे क्योंकि नमी से बीमारियाँ फैलती है।
- बिजली एवं स्वच्छ पानी का प्रबंध मुर्गी फार्म में अवश्य होना चाहिए।
- चूजों को पालने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। लेयर चूजों के एक डेढ़ महीने संवेदनशील होते हैं। अतः ब्रुडर हाऊस के प्रबंधन पर विशेष निगरानी रखनी चाहिए।
- मुर्गियों के लिये आरामदायक तथा हवादार स्थान बनाना चाहिए। मुर्गी घर हवादार बनाने के लिये उसके चारों ओर तार की जाली लगा दें। मुर्गी घर में 50° से 75° फारेनहाइट के बीच तापक्रम रहने से मुर्गियों को पूरा आराम मिलता है।
- मुर्गियों को केज या डीप लीटर पद्धति में रखने से समय एवं जगह की बचत होती है तथा मेहनत भी कम पड़ती है लीटर को खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
- मुर्गियों को हमेशा संतुलित आहार देना चाहिए। एक बड़ी मुर्गी 24 घंटे में लगभग 4 आँस दाना खाती है। मुर्गियों को हमेशा स्वच्छ पानी मिलना चाहिए।
- हमेशा याद रखें कि मुर्गियों में शुरू से ही रोग निरोधक उपायों का अमल करना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होता है। मुर्गियों को रानी खेत तथा चेचक का टीका अवश्य लगवायें, चूजों के आहार में खूनी दस्त की बीमारी से बचाव हेतु दो माह में कृमिनाशक दवाइयाँ देनी चाहिए।
- अण्डा तथा मुर्गा बेचने के लिये शहर के नजदीक यह व्यवसाय शुरू करना चाहिए, जिससे इनकी खपत आसानी से हो सके तथा बाजार तक अण्डा, मुर्गी ले जाने में सुविधा रहे।
- पशुपालन विभाग द्वारा मुर्गी पालकों को दी जाने वाली सुविधाओं का अवश्य लाभ उठायें।
- मुर्गीपालन व्यवसाय शुरू करने से पहले इसमें होने वाले आय–व्यय की एक रूप रेखा अवश्य बना लें और आय–व्यय का पूरा हिसाब रखें।

चूजों के प्रबंधन में सावधानियाँ

- ब्रायलर के चूजे की खरीददारी में ध्यान दें कि जो चूजे आप खरीद रहे हैं उनका वजन 5 सप्ताह में 3 किलो दाना खाने के बाद कम से कम 1.5 किलो हो जाय तथा मृत्यु दर 3 प्रतिशत से अधिक नहीं हो।
- अच्छे चूजे की खरीद के लिए अपने समीपवर्ती कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा पशु चिकित्सा महाविद्यालय के कुक्कुट विशेषज्ञ या राज्य के संयुक्त निदेशक, कुक्कुट से सम्पर्क कर लें। उनसे आपको इस बात की जानकारी मिल जायेगी कि किस हैचरी का चूजा खरीदना अच्छा होगा।
- चूजा के आते ही उसे बक्से समेत कमरे के अन्दर ले जायें, जहाँ ब्रूडर रखा हो। फिर बक्से

का ढक्कन खोल दें। अब एक–एक करके सारे चूजों को इलेक्ट्रल पाउडर या ग्लूकोज मिला पानी पिलाकर ब्रूडर के नीचे छोड़ते जायें। बक्से में अगर बीमार चूजा हो तो उसे हटा दें।

- चूजों के जीवन के लिए पहला तथा दूसरा सप्ताह संकटमय होता है, इसलिए इन दिनों में अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। अच्छी देखभाल से मृत्यु दर कम की जा सकती है।
- पहले सप्ताह में ब्रूडर में तापमान 90° एफ होना चाहिए। प्रत्येक सप्ताह 5° एफ कम करते जायें तथा 70° एफ से नीचे ले जाना चाहिए। यदि चूजे ब्रूडर के नीचे बल्ब के नजदीक एक साथ जमा हो जायें तो समझना चाहिए कि ब्रूडर में तापमान कम है। तापमान बढ़ाने के लिए अतिरिक्त बल्ब का इन्तजाम करे या जो बल्ब ब्रूडर में लगा है, उसको थोड़ा नीचे करके रखें। यदि चूजे बल्ब से काफी दूर किनारे में जाकर जमा हो तो समझना चाहिए कि ब्रूडर में तापमान ज्यादा है। ऐसी स्थिति में तापमान कम करें। इसके लिए बल्ब को ऊपर खींचे या बल्ब की संख्या या पावर को कम करें। उपर्युक्त गर्मी मिलने पर चूजे ब्रूडर के चारों तरफ फैल जायेंगे। चूजों के चाल–चलन पर नजर रखें ताकि उनका व्यवहार समझकर तापमान नियंत्रित किया जा सके।
- पहले दिन जो पानी चूजों को दें, उसमें इलेक्ट्रल पाउडर या ग्लूकोज बी–काम्पलेक्स प्रति 100 चूजों के हिसाब से दें। इलेक्ट्रल पाउडर या ग्लूकोज दूसरे दिन से बन्द कर दें। बाकी दवा सात दिनों तक दें। वैसे ही बी–काम्पलेक्स या कैल्सियम युक्त दवा 10 मि. ली. प्रति 100 मुर्गियों के हिसाब से हमेशा दे सकते हैं।
- जब चूजे पानी पीलें तो उसके 5–6 घंटे बाद अखबार पर मकई का दर्रा या सूजी छीट दें, चूजे इसे खाना शुरू कर देंगे। इस दर्रे को 12 घंटे तक खाने के लिए देना चाहिए।
- तीसरे दिन से फीडर में प्री–स्टार्टर दाना दें। दाना फीडर में देने के साथ–साथ अखबार पर भी छींटे। प्री–स्टार्टर दाना 7 दिनों तक दें। चौथे या पाँचवे दिन से दाना केवल फीडर में ही दें, अखबार पर न छींटे।
- आठवें रोज से 28 दिन तक ब्रायलर को स्टार्टर दाना दें। 29 से 42 दिन या बेचने तक फिनिशर दाना खिलायें।
- दूसरे दिन से पाँच दिनों के लिए कोई एन्टी बायोटिक्स दवा पशु चिकित्सक से पूछकर आधा ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर दें, ताकि चूजों को बीमारियों से बचाया जा सके।
- शुरू के दिनों में बिछाली (लीटर) को रोजाना साफ करें। पानी के बर्तन रखने की जगह हमेश बदलते रहें।
- पाँचवें या छठे दिन चूजे को रानीखेत का टीका एक आँख तथा नाक में एक–एक बूँद दें।
- 14वें या 15वें दिन गम्बोरो का टीका आई.वी. डी. आँख तथा नाक में एक–एक बूँद दें।
- मरे हुए चूजे को कमरे से तुरन्त बाहर निकाल दें। नजदीक के अस्पताल या पशु चिकित्सा महाविद्यालय या अपने पशु चिकित्सक से पोस्टमार्टम करा लें। पोस्टमार्टम कराने से यह मालूम हो जायेगा कि चूजे की मौत किस बीमारी या कारण से हुई है।

- मुर्गी घर के दरवाजे पर एक बर्त्तन या नाद में पांच प्रतिशत लाल पोटाश (पोटेशियम परमेगनेट) का घोल मिला पानी या फिनाइल का पानी रखें। मुर्गीघर में जाते व आते समय पैर धो लें। यह पानी 1–2 दिनों पर बदल दें।

बैक यार्ड मुर्गी की प्रजातियाँ

ग्रामीण एवं अर्द्ध शहरी इलाकों के लिए ग्रामप्रिया तथा वनराजा मुर्गी की उन्नत किस्में हैं। इन प्रजातियों को अण्डा और मांस दोनों के लिए पाला जाता है। पौष्टिकता एवं स्वाद में इसके अण्डे एवं मांस देशी मुर्गी के समान होता है। इन प्रजातियों की मुर्गियों का वजन आठ सप्ताह में 1.3 किलोग्राम हो जाता है। अण्डे का रंग भूरा होता है एवं अण्डों का औसत वजन 55 ग्राम तक होता है। ये प्रतिवर्ष 150–176 अण्डा देती हैं।

आहार प्रबन्धन: बैक यार्ड मुर्गी पालन में ऊपर से दाने खिलाने की आवश्यकता ब्रॉयलर और लेयर मुर्गियों की तुलना में काफी कम पड़ती है। पक्षियों को मिश्रित प्रकार का अनाज खिलाना चाहिए और प्रयास करना चाहिए कि संतुलित आहार के रूप में उन्हें प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिन मिश्रण भी मिलता रहे। शाम के समय 30–40 ग्राम दाना प्रति मुर्गी प्रति दिन देना उचित रहता है।

आहार में मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूँ का चोकर, चावल की पालिश, मुँगफली की खली, मांस तथा मछली का चूरा विभिन्न अनुपातों में मिलाया जाता है इस मिश्रण में विटामिन्स तथा खनिज लवण मिलाकर सम्पूर्ण आहार तैयार करके खिलाया जाना लाभकर होता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि ग्रामीण मुर्गी पालन कृषि के सहायक धंधों के रूप में घर के पिछवाड़े (बैक यार्ड) अथवा लघु व्यवसाय के रूप में अपनाकर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में कारगर होता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम बदलते परिवेश में अपने संसाधनों को पहचाने एवं उनका भरपूर सदुपयोग करना सीखें। तभी निश्चित तौर पर मुर्गी पालन एवं अण्डा उत्पादन से हम अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

तालिका न. 1 मुर्गियों में उम्र के अनुसार दाने व पानी की आवश्यकता :

उम्र (सप्ताह)	दाना की मात्रा (ग्राम / चूजा / दिन)	पानी की मात्रा (लीटर में) 100 मुर्गियों के लिए	तापमान (डिग्री फारेनहाईट)
1	5	2	95
2	10	3.5	90
3	20	5.5	85
4	25	7.5	80
5	40	9.5	75
6	51	10.5	70
7	81	12	70
8	110	13.5	70

अध्याय - 17

मुर्गी पालन में उचित आहार एवं प्रबन्धन से बढ़ाएं आय

मुकेश कुमार[1]

1. प्रस्तावना
2. मुर्गी पालन का आर्थिक महत्व
3. भारत में मुर्गीपालन को प्रभावित करने वाले कारक
4. मुर्गीपालन की आवश्यकता
5. मुर्गी फार्म बनाने की प्रणालियां
6. मुर्गियों में आहार प्रबन्धन
7. मुर्गियों में बीमारी प्रबन्धन

1. प्रस्तावना

भारत में मूख्यतः पक्षियों को अंडे, मीट, पंख के लिये पाले जाते है। उपरोक्त उत्पाद को पाने के लिये मुर्गी, बतख, बटेर, हंस, टर्की, छोटी मुर्गी, तीतर, इमू आदि को पाला जाता है। जिनमें से मुर्गियां अत्यधिक पाली जाती है।

मुर्गियां भारत में मुख्यतः घर के पिछवाड़े में लघु स्तर पर व बड़े स्तर पर मुर्गियों को पाला जाता है।

भारत में मुर्गियों के व्यवसाय की शुरुआत 1957 में “All India Poultry development project" के नाम से बैंगलूरु, मुम्बई, भुवनेश्वर, दिल्ली व शिमला में शुरुआत की गई।

2. मुर्गी पालन का आर्थिक महत्व

- भारत दूनिया में तीसरा सबसे बड़ा अण्डा उत्पादक है जिसमें से आंध्रप्रदेश सर्वाधिक अण्डा उत्पादन करता है।
- भारत दूनियां में 5वां सबसे बड़ा मुर्गी मीट उत्पादक देश है।
- ब्रॉयलर एवं लेयर मुर्गियों में नस्ल सुधार कार्यक्रम ने अच्छी भूमिका निभाई है। जिससे औसत एक मुर्गी से 310 अण्डे प्रति वर्ष व 1.8 से 2.0 किग्रा वजन टाईप 5 हफ्ते में मुर्गियों का उत्पादन लिया जा सकता है।
- भारत में 45 अण्डे व 2.4 किग्रा मीट प्रति व्यक्ति की उपलब्धता है। जबकि 180 अण्डे व 9.5 किग्रा प्रति व्यक्ति की आवश्यकता है। अतः मुर्गी उत्पादन व्यवसाय में वृद्धि की आवश्यकता है।

3. भारत में मुर्गीपालन को प्रभावित करने वाले कारक

1. एक मुर्गी एक वर्ष में 250–310 अण्डे देती है। लगभग उतने ही चूजे लिये जा सकते हैं।
2. मुर्गियों में विभिन्न वातावरण को सहन करने की क्षमता है।
3. इस व्यवसाय में शुरुआती व्यय भी कम है।
4. अच्छी नस्ल व उच्च गुणवत्ता वाले चूजे आसानी से मिल जाते हैं।
5. इस व्यवसाय में कम मजदूरों से भी काम चलाया जा सकता है तथा मजदूर मिलना भी आसान है।

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

6. वैज्ञानिक तरीके से मुर्गियों को रखना, खिलाना, उच्च रखरखाव व बीमारियों के उपचार की सुविधा भी भारत में अच्छी है।

7. अण्डा हमें संतुलित मात्रा में वसा, प्रोटीन देता है व आसानी से पचता है।

8. मुर्गियों से 72–75 प्रतिशत मीट प्राप्त होता है। जबकि गाय–भैंस से 50–55 प्रतिशत, सुअर में 68–72 प्रतिशत व भेड़ व बकरी में 40–48 प्रतिशत मीट प्राप्त होता है।

9. मुर्गी के अण्डे व मीट को दुनियाभर में खाया जाता है तथा इसका किसी धर्म से कोई संबंध नहीं हैं।

10. मुर्गियां फीड को सर्वाधिक मीट में बदलने की क्षमता रखती है। मुर्गियों 2 किग्रा फीड खाकर 1 किग्रा वजन बनाती है जो कि अन्य जानवरों के मुकाबले सर्वाधिक है।

उपरोक्त नस्लों में से Leghorn नस्ल भारत में विख्यात है और White Leghorn नस्ल भारत में सर्वाधिक उपयोग में ली जाती है। इनका वजन 2 किग्रा से 2.7 किग्रा होता है एवं यह नस्ल अण्डा उत्पादन में भी सर्वाधिक उपयोग में ली जाती है।

4. मुर्गीपालन की आवश्यकता

1. पक्षियों को वातावरण से बचाने के लिये।
2. मुर्गियों के साथ आसानी से व सस्ते तरीके से काम करने के लिये।
3. वैज्ञानिक तरीके से रखरखाव व खिलाने के लिये।
4. बीमारियों से बचाने के लिये।
5. मुर्गियों का उचित प्रबन्धन व देखरेख के लिये।

मुर्गियों की मुख्य नस्लें-

American Class	**English Class**	**Moditer Class**	**Asiatic Class**
Plymontha Rock	Sussex	Legham	Brahma
Rhode Island Red	Astrolonp	Minorea	Cochin
New Hamshire	Cormish Orpingtor	Andolusian	Longshan
Yandotle	Dorking		
Jersey black giont			

मुर्गियों के लिये उचित वातावरण घटक

तापमान	–	220-300 (70° F-85° F)
आद्रता	–	30-60%
NH3स्तर	–	25 PPM से कम
लीटर नमी	–	15-25%

मुर्गी फार्म के लिये जगह व सुविधाओं का निर्धारण

1. मुर्गी फार्म आवासीय, औद्योगिक क्षेत्र से दुर बनाना चाहिये।
2. सड़क, बिजली व स्वच्छ पानी की सुविधा होनी चाहिये तथा वातानुकूलित होना चाहिये।
3. कम दाम पर मजदूर होने चाहिये।
4. मुर्गी फार्म चौड़ा ऊंचाई व सूखी जगह पर होना चाहिये तथा पानी का रुकाव आस पास नहीं होना चाहिये।
5. किसी शहर से उचित दूरी पर हो ताकि उत्पाद को आसानी से बेचा जा सके।

5. मुर्गी फार्म बनाने की प्रणालियां

1. व्यापक प्रणाली (अस्थाई छत):

इस प्रकार की प्रणाली में मुर्गियों को खुले स्थान में रखा जाता है तथा मुर्गियों को आहार खुले में प्राकृतिक तरीके से दिया जाता है, यह प्राचीन तरीका है। इस प्रणाली के तहत 250 पक्षी प्रति हैक्टर रखे जा सकते हैं।

2. अर्द्ध गहन प्रणाली

इस प्रकार की प्रणाली में मुर्गियों को दिन में खुले में रखा जाता है तथा रात्रि को बन्द बाड़े या छोटे फार्म में रखा जाता है। इस प्रणाली के तहत 750 पक्षी प्रति हैक्टर रखे जा सकते हैं।

3. गहन प्रणाली

इस प्रकार की प्रणाली में मुर्गियों को 24 घण्टे मुर्गी फार्म में रखा जाता है। उनका आहार जल व्यवस्था फार्म में ही किया जाता है। यह मुख्यतः 4 प्रकार का होता है।

1. बिछावन प्रणाली / Deep litters System
2. ऊपर उठाये हुये फर्श पर रखना / Slatted Floor System
3. ऊपर उठाये हुये व बिछावन विधि / Slat cum litters System
4. पिंजरा प्रणाली / Cage System

मुख्यतः बिछावन प्रणाली / Deep litters System को मीट टाईप / ब्रॉयलर के लिये इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि में बिछावन, चावल का छिलका चावल का भूसा, मूंगफली का छिलका, कागज की कटिंग, लकड़ी का बुरादा गेहूं का भूसा इत्यादि का इस्तेमाल किया जाता है जिसे पक्के फर्श (जो कि 8–12 इंच गहरा है) में 3 से 5 इंच तक भरा जाता है जिसे अण्डे टाईप में प्रतिवर्ष हटाया जाता है तथा मीट टाईप / ब्रॉयलर में हर बार नया बिछाया जाना चाहिये।

पिंजरा प्रणाली / Cage System

भारत में 95 प्रतिशत लेयर / अण्डा प्रकार की मुर्गियों के लिये इस प्रकार की प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। जिसमें फीडर व ताजा पानी आपूर्ती पिंजरों से जुड़ी होती है। इस प्रणाली में साफ सफाई दाना व पानी उपलब्ध करवाना

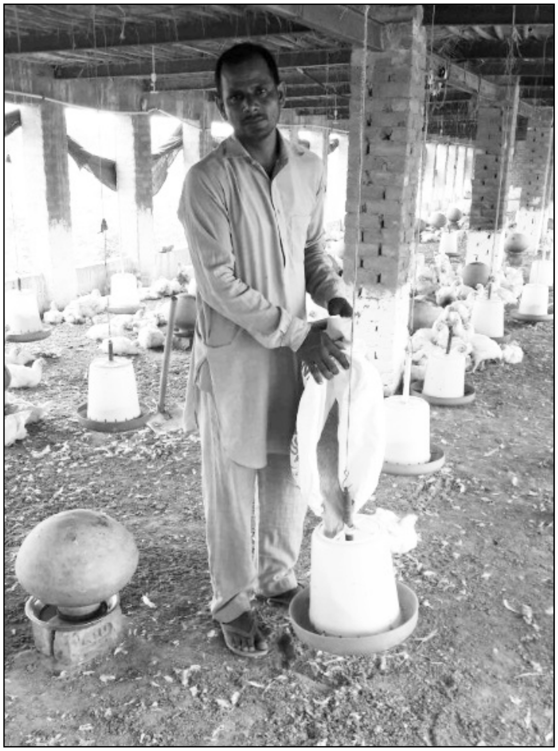

आसान है। इस प्रणाली में अण्डे का नुकसान भी कम से कम होता है। इस प्रणाली में कम जगह, कम मजदूर की आवश्यकता होती है फीड की अपव्यय भी नहीं होता है।

6. मुर्गियों मेंआहार प्रबन्धन

व्यवसायिक मुर्गी पालन में मुर्गी का आहार मुख्य भाग है क्योंकि मुर्गी पालन में आहार का खर्चा सर्वाधिक होता है। अतः मुर्गी पालन को लाभ में लाने के लिए B.I.S. Standerds के अनुकूल होना चाहिए। इसके लिए सभी प्रकार की मुर्गी के आहार में अधिकतम 11% नमी नमक अधिकतम 0.6% तथा कम से कम 0.5% फोसफोरस होना चाहिए।

नोट–

1. उपरोक्त मानकों के अनुसार ही मुर्गी का दाना तैयार करें।
2. उपरोक्त आंकडे Dry matter basis के आधार पर है। तथा इनके आधार पर मक्का, जौ, जई, बाजरा, ज्वार, शीरा, चना, चावल, Blood meal, Fish meal, Bone meal, तथा विभिन्न प्रकार की खलों इत्यादि का उपयोग करते हुए मुर्गी का दाना तैयार करके अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं।

अन्य मुख्य घटक–

घटक	Layer starter	Layer grover	Layer feed	Breeder feed	Broiler starter	Broiler finisher
Crude protein% min.	20	16	18	18	23	20
Crude fiber % max.	7	8	8	8	6	6
Acid insoluble ash% max.	4	4	4	4	3	3
Calcium% min.	1	1	3	3	1.2	1.2
Lysine% min.	0.9	0.6	0.65	0.65	1.2	1
DL-Methionine % Min.	0.3	0.25	0.3	0.3	0.5	0.35
Metabolizable energy Kcal/kg Min.	2600	2500	2600	2600	2800	2900

7. मुर्गी में बीमारी प्रबन्धन

मुर्गी में अनेक बीमारियों का टिकाकरण करके मुर्गी को उन बीमारियों से बचाया जा सकता है। ब्रॉयलर व अण्डा देने वाली मुर्गियों के टीकाकरण की सारणी निम्न प्रकार हैं।

नोटः-

1. उपराक्त बीमारियों का टीकाकरण सही समय व प्रशिक्षित व्यक्ति से ही करवायें।
2. टीके का भण्डारण फ्रिज में 4°C से 8°C पर ही करना चाहिए।
3. दवाईयों पर लिखी सावधानियाँ प्रयोग की विधि के अनुसार ही प्रयोग करें व किन्हीं दो टीके को न मिलायें।

ब्रॉयलर के लिए / Broiler

Age	Disease	Vaccine	Route
4-5days	RD	Lasota/f	Occulonasal/ drinking water
12-14 days	IBD(gumboro)	IBD live vaccine	drinking water
28-30 days	RD	Lasota/f	Occulonasal/ drinking water

अण्डा देने वाली मुर्गियों के लिए/Layer

Age	Disease	Vaccine	Route
1day	Marek's	HVT vaccine	I/M
5-7 days	RD	Lasota/f	Occulonasal/ drinking water
24-28 days	IBD(gumboro)	IBD live vaccine	drinking water
8^{th} week	RD	R2B/RDVK	s/c injection
16-18 week	RD	R2B/RDVK	s/c injection

अध्याय - 18

मछली पालन की उन्नत तकनीकी

अनुप कुमार[1]

1. प्रस्तावना
2. पालने योग्य मछलियों की प्रजातियां
3. मछली पालन हेतु आधारभूत आवश्यकतायें
4. पूरक आहार प्रबन्धन
5. बीमारी प्रबन्धन

1. प्रस्तावना

मछली पालन एक तरह की जलीय खेती है। जिसे ''जल कृषि'' भी कहा जाता है। यह कृषि जलीय तालाबों में की जाती है। इस कृषि में तालाब एक खेत है। मछली का जीरा ''बीज'' है तथा मछली ''फसल'' है। जिस तरह से खेत में अच्छी फसल लेने के लिये अच्छे बीज, सही मिट्टी, उचित मात्रा में पानी, खाद, उर्वरक एवं अच्छी देखरेख की जरुरत पड़ती है ठीक उसी तरह मछली की अच्छी फसल लेने के लिये तालाब का उचित प्रबन्धन जैसे तालाब की मिट्टी, मछली का बीज (जीरा), खाद, पुरक आहार इत्यादि की जरुरत होती है। तालाबों में मछली बीज (जीरा) का संचय किया जाता है तथा 8 से 10 माह तक उचित प्रबन्धन कर इनका पालन किया जाता है। तत्पश्चात इन मछलियों का विपणन किया जाता है। मछली पालन में कृषि तथा पशुपालन दोनों का ही समायोजन है।

2. पालने योग्य मछलियां

उत्पादन की दृष्टि से भारतीय मेजर कार्प एवं विदेशी कार्प मछलियों का पालन एक साथ किये जाने की प्रणाली का काफी विकास हुआ है। इसे ''सघन मछली पालन'' कहा जाता है।

तालिका : 1 मुख्य रुप से पाली जाने वाली मछली प्रजातियों का विवरण

मछली प्रजाति	भोजन का प्रकार	तालाब में भोजन प्राप्ति स्थल	सामान्य बढ़ोतरी किग्रा./वर्ष
अ) भारतीय मेजर कार्प			
1. कतला	जन्तु प्लवक	उपरी सतह पर	1.0–1.5
2. रोहू	पादप प्लवक	मध्य भाग में	0.8–1.8
3. मृगल	सड़ी गली वनस्पति एवं अपरद	पैंदे में	0.5–0.8
ब) विदेशी कार्प			
1) सिल्वर कार्प	पदप प्लवक	ऊपरी सतह पर	0.8–1.0
2) ग्रास कार्प	जलीय वनस्पति	सभी जगह पर	1.0–1.5
3) कॉमन कार्प	सर्वभक्षी	पैंदे में एवं किनारों पर	1.0–1.5

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक (मत्स्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

3. मछली पालन हेतु आधारभूत आवश्यकताएँ

मछली पालन व्यवसाय शुरु करने के लिये आधारभूत आवश्यकताओं की जानकारी होनी चाहिये।

- मिट्टी तथा पानी के रासायनिक व भौतिक गुणों की जानकारी।
- पानी की उपलब्धता तथा प्रचलित मछली किस्मों की जानकारी।
- मछली पालन में सम्भावित अड़चनों व विषम परिस्थितियों का ज्ञान।
- मछली के बीजों की उपलब्धता तथा विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी।
- मछलियों के लिये पूरक आहार की जानकारी।
- मछलियों के सामान्य रोगों की जानकारी।
- मछली पकड़ने के औजार उनकी पैकिंग एवं विपणन हेतु बाजार की जानकारी।
- आय–व्यय का अनुमान।

मिट्टी पानी की जांच : सफल मछली पालन के लिये मिट्टी एवं पानी की जांच, पोषक तत्वों का ज्ञान तथा विभिन्न खाद एवं उर्वरकों की जानकारी होना आवश्यक है। इसलिये मिट्टी तथा पानी के रासायनिक एवं भौतिक गुणों की जांच समय–समय पर करवाने से मत्स्य उत्पादन बढ़ाने तथा पोषक तत्वों की अनुकूल स्थिति बनाये रखने में सहायता मिलती है।

मछली पालन हेतु तालाब निर्माणः ग्रामीण जलाशयों में मछली पालन के साथ–साथ कृषक अपनी स्वयं की जमीन पर भी 0.2 से 2.0 हैक्टर तक का तालाब निर्माण करके मछली पालन शुरु कर सकते हैं। तालाब की गहराई 1.5 से 2.0 मीटर, चौड़ाई अधिकतम 50 मीटर तथा लम्बाई सुविधानुसार अधिक से अधिक रखी जा सकती है। तालाब के इनलैट तथा आऊटलैट पर महीन लोहे की जाली लगानी चाहिये। ताकि अनावश्यक मछलियां बाहर से अन्दर तथा अन्दर से बाहर न जा सके। तालाब में पानी वर्षा जल, कैनाल अथवा ट्यूबवैल से भरा जा सकता है। तालाब को प्रत्येक दूसरे–तीसरे वर्ष खाली करके सुखा लेने से उत्पादकता बढ़ती है।

मछली पालन में चूने की भूमिका

तालाब में मत्स्य बीज छोड़ने से पूर्व पानी की साफ–सफाई करना अति आवश्यक है। पानी

तालिका : 2 जल एवं मृदा का आदर्श मानक :-

रंग	– हरा/ हरा भूरा	**नाईट्रेटस**	– 50 मिग्रा/100 ग्राम मिट्टी
तापमान	– 20 से 30 डिग्री से.	**फॉस्फेटस**	– 6 मिग्रा
पी.एच. मान	– 7.5 से 8.5	**ऑर्गेनिक कार्बन**	– 1 प्रतिशत
घुलनशील ऑक्सीजन	– 3 से 5 पीपीएम		
कार्बनडाईऑक्साईड	– 0 से 3 पीपीएम		
सम्पूर्ण क्षारीयता	– 150–300 पीपीएम		
बाई कार्बोनेट	– 150–300 पीपीएम		
अमोनिया	– 0.05–0.5 पीपीएम		
क्लोराईड	– 30–50 पीपीएम		

का पीएच मान 7.5 से 8.5 के बीच रहना मछली उत्पादन के लिये लाभदायक है। इससे कम या अधिक पीएच का होना मछली उत्पादन को प्रभावित करता है। चूने के उपयोग से निम्नलिखित फायदे हैं।

1. जैविक पदार्थों का विघटन तेजी से होता है।
2. मछलियों में बीमारी उत्पन्न करने वाले विभिन्न परजीवी व जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।
3. घुलनशील ऑक्सीजन का स्तर अनुकूलतम रहता है।

चूना धीरे धीरे पानी में घुलता है। इसका प्रभाव धीमा होता है तथा यह सस्ता भी होता है। आमतौर पर चूने की मात्रा का निर्धारण मिट्टी के पी.एच. मान के आधार पर किया जाता है। सामान्यतः 200 से 250 किग्रा. चूना प्रति हैक्टर तालाब में उपयोग किया जाता है।

खाद एवं उर्वरकः मछली पालन में गोबर की पुरानी खाद का बहुत योगदान है। गोबर की खाद तथा उर्वरकों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिये ताकि वर्ष भर मछलियों को प्राकृतिक भोजन (पादप प्लवक तथा जन्तु प्लवक) मिलता रहे।

मत्स्य बीज पालन करने वाले कृषकों को उपरोक्त खाद डालने के दूसरे दिन मल्टीप्लेक्स 250 ग्राम/हैक्टर को 50 लीटर पानी में घोलकर नर्सरी पौंड में 4–5 स्थानों पर तालाब में डालना चाहिये।

प्रायः 80–100 मिमी की 10000 अंगुलिकायें प्रति हैक्टर जल क्षेत्र में जूलाई से सितम्बर के बीच में संचय की जानी चाहिये अथवा 15–20 मिमी की 20000 से 25000 फ्राई का उपयोग प्रति हैक्टर किया जा सकता है। बशर्ते की पानी में अन्य किसी प्रकार की मछली अथवा बीज को नष्ट करने वाले कीड़े नहीं हों।

मत्स्य बीजों को एक विशेष अनुपात में संचय किया जाना चाहिये, ताकि सम्पूर्ण जल क्षेत्र का अधिकतम सदुपयोग किया जा सके। क्योंकि सभी प्रजातियों के जल क्षेत्र में रहने तथा खाने की

तालिका : 3 गोबर की खाद तथा उर्वरकों का उपयोग

खाद व उर्वरक	दर	प्रतिमाह
गोबर की खाद	10 से 15 हजार किलो/हैक्टर/वर्ष	1000 से 1200 किलो/माह
सिंगल सूपर फॉस्फेट	240 किलो/हैक्टर/वर्ष	20 किलो / माह
यूरिया	120 किलो/हैक्टर/वर्ष	10 किलो/माह

तालिका :4 मत्स्य बीज की विभिन्न अवस्थायें:- मत्स्य बीज की मुख्यतया तीन अवस्थायें होती है।

अवस्था	आकार	बीज/हैक्टर संचय क्षमता
स्पान	8 मिमी से छोटा	50000
फ्राई	8 मिमी से 40 मिमी	20000–25000
अंगुलिकायें	40 मिमी से 100 मिमी	10000–12000

अलग–अलग आदतें होती है। साधारणतया 4 : 3 : 3 के अनुपात में मछलियों को तालाब में छोड़ा जाता है।

4. पूरक आहार प्रबन्धन

मछली की जल्दी बढ़ोतरी एवं अधिक उत्पादन के लिये प्राकृतिक खाद्य के साथ–साथ पूरक आहार भी दिया जाना आवश्यक है। पूरक आहार में सरसों या मूंगफली की खल तथा चावल की भूसी बराबर मात्रा में मिलाकर संचित किये गये मत्स्य बीज के कुल वजन का 2 से 3 प्रतिशत तक का उपयोग प्रतिदिन किया जाना चाहिये। खाद्य पदार्थ के दुरुपयोग को रोकने के लिये बांस की बनी ट्रे में रखकर जलाशय के विभिन्न पूर्व निश्चित स्थान पर रखना चाहिये। भोजन प्रायः प्रातः के समय देना चाहिये। ध्यान रहे कि मछली पालन की कुल लागत का 70 प्रतिशत व्यय उनके आहार पर होता है।

उपरोक्त सभी सामग्री को निर्धारित अनुपात में मिलाकर तैयार खाद्य पदार्थ को ''आदर्श पूरक आहार'' माना जाता है।

वृद्धि एवं स्वास्थ्य जांचः प्रत्येक 15 दिवस के अन्तराल पर सैम्पल नैटिंग द्वारा कुछ मछलियों को पकड़कर उनकी लम्बाई एवं वजन के अभिलेख की सारणी रखनी चाहिये ताकि उनकी वृद्धि की जानकारी रहे। प्रत्येक माह के वजन के आधार पर खाद्य पदार्थ के वजन में कमी या बढ़ोतरी की जा सकती है तथा मछलियों की बीमारी की जानकारी भी होती रहती है।

मत्स्य उत्पादन

व्यवस्थित प्रबन्धन के साथ सघन मछली पालन करने पर वर्ष में औसतन मछली 1 किलो से 1.5 किलो तक वजन धारण कर लेती है। इस प्रकार प्रति हैक्टर 8 से 10 टन मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं।

5. बीमारियां एवं प्रबन्धन

मछलियों में भी अन्य प्राणियों की भांति प्रतिकूल वातावरण में विभिन्न प्रकार की बीमारियां लग जाती है। साधारणतः मछलियां रोग–व्याधि से लड़ने में पूर्णतः सक्षम होती है लेकिन समुचित देखभाल के अभाव में मछलियां रोगी हो जाती है। रोगी मछली के सामान्य लक्षण इस प्रकार हैः–

1. बीमार मछली तालाब में न रहकर किनारे पर अलग दिखाई देती है। उसके सामान्य व्यवहार तथा तैरने में काफी फर्क आने लगता है ओर वह शिथिल हो जाती है।
2. मछली के बीमार होते ही उसके आहार ग्रहण करने की क्षमता में कमी आने लगती है।
3. बीमार मछली के स्वभाव में ही नहीं उसकी शारिरिक बनावट, रंग–रुप तथा आकार में भी अन्तर आ जाता है।

तालिका :5 पोषक तत्वों से परिपूर्ण आहार निम्न प्रकार भी बनाया जा सकता है।

सरसों या मूंगफली की खल	40 प्रतिशत
चावल की भूसी (कणकी)	40 प्रतिशत
सोयाबीन का आटा	15 प्रतिशत
सुखी मछली का चूरा	4 प्रतिशत
एग्रीमीन	1 प्रतिशत

4. मछली का बार–बार सतह पर आना, कठोर सतहों पर रगड़ने की प्रवृति, आंखों में सूजन, संतुलन बनाये रखने में कठिनाइ इत्यादि रोगी मछली के लक्षण हो सकते हैं।

रोगों के कारणः मछली चूंकि जलीय जीव है, उसके जीवन पर आस–पास के वातावरण की बदलती परिस्थितियां बहुत असरदायक होती है। इसलिये जलाशय का वातावरण मछली के अनुकूल रहना अत्यन्त आवश्यक है। मछली के बीमार होने के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार है।

1. पानी का पीएच तापमान, ऑक्सीजन व कार्बनडाईऑक्साइड का सन्तुलन मत्स्य पालन की दुष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इन सभी कारकों की प्रतिकुलता मछली को बीमार कर देती है।
2. जलाशय में खाद उर्वरक तथा पूरक आहार की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने की स्थिति में कुछ गैसें जैसे– हाईड्रोजन सल्फाईड, अमोनिया, कार्बनडाई ऑक्साईड की मात्रा बढ़ जाती है। जो मछलियों के लिये नुकसान दायक होती है।
3. मत्स्य बीजों की अत्यधिक संचयदर भी उनके रोगी होने का एक कारण है।
4. कभी कभी तापमान में उतार–चढ़ाव, मछली के सहनशक्ति सीमा से अधिक होने पर वह भारी दबाव में आ जाती है, जिसमें उसके रोगी होने की सम्भावना बढ़ जाती है।
5. बहुत से रोगजनक जीवाणु पानी में रहते हैं, जब मछली प्रतिकूल परिस्थितियों के दबाव में आकर कमजोर हो जाती है तब जीवाणु उस पर आक्रमण करके उन्हें रोगी बना देते हैं।

विभिन्न प्रकार के रोग व उनका उपचारः मछलियों को संक्रमित करने वाले रोगजनक कई प्रकार के होते हैं, जैसे बाहरी व आन्तरिक परजीवी जीवाणु, फफूंद, वायरस इत्यादि। अनुकूल परिस्थितियों में इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि होती है।

परजीवी रोग व उपचारः परजीवी दो प्रकार के होते हैं, एक आन्तरिक परजीवी जो आन्तरिक अंगों जैसे शरीर गुहा, रक्त नलिका, इत्यादि में रहते हैं। दुसरे बाह्य परजीवी जो मछली के चर्म, गलफड़ों, पंखों इत्यादि पर रहते हैं। इन परजीवी रोग जनकों से अनेक प्रकार की बीमारियां फैलती है। मछलियों में मुख्य रुप से पाई जाने वाली कुछ सामान्य बीमारियां व नियंत्रण इस प्रकार है।

सफेद धब्बेदार रोगः यह रोग इक्थियोपथिरियस प्रोटोजोन द्वारा होता है। इसमें मछली की त्वचा, पंखों व गलफड़े पर छोटे–2 सफेद धब्बे आ जाते हैं। इस बीमारी में जीरा तथा अंगुलिकाओं को भारी नुकसान होता है।

उपचार

1. तालाब में 15–20 पीपीएम फार्मीलीन हर दुसरे दिन रोग पूरी तरह समाप्त होने तक डालते रहें।
2. 0.1 पीपीएम मेलाकाईट ग्रीन+50 पीपीपएम फार्मीलीन में 1–2 मिनिट डुबोयें।

आरगुलौसिसः यह रोग आरगुलस नाम क्रेस्टेशियन परजीवी से होता है। यह मछली की त्वचा पर गहरे घाव कर देता है। जिससे उस पर दुसरे जीवाणु व फफूंद आक्रमण कर देते हैं।

उपचार

1 500 पीपीएम पौटेशियम परमैंगनेट के घोल में एक मिनिट के लिये डुबोयें।

2. 0.25 पीपीएम मैलाथियॉन को 1–2 हफ्ते के अन्तराल में तीन बार दें।

फिन एण्ड टेल रॉटः यह रोग मुख्यतः ऐरोमोनास फ्लूओरेसेन्स, स्युडोमोनास फ्लुओरेसेन्स नामक विषाणुओं के संक्रमण से होता है। इससे मछली के मीन पक्ष तथा पूंछ सड़ने लगते हैं और तीन–चार दिन में मछली मर जाती है।

उपचारः पानी की स्वच्छता ही इसका उपाय है। साथ ही फोलिक एसिड को आहार के साथ मिलाकर खिलाना चाहिये इमेक्विल नामक दवाई 10 मिली प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर संक्रमित मछली को 12–24 घंटों के लिये इस घोल में रखना चाहिये।

ड्रॉप्सीः यह बीमारी आमतौर पर उन तालाबों में पाई जाती है। जहां मछलियों को प्र्याप्त भोजन नहीं मिल पाता है। इसमें मछली की धड़ उसके सिर के अनुपात में काफी पतली हो जाती है और वह दुर्बल हो जाती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण मछली के शल्कों का बहुत अधिक गिरना तथा उसके उदर गुदा में पानी का जमाव होना है।

उपचार

1. मछलियों को पर्याप्त मात्रा में भोजन देना, साथ ही पानी की गुणवत्ता को बराबर बनाये रखना चाहिये।
2. तालाब में प्रति माह 100 किलो चुना/हैक्टर की दर से डालना लाभदायक है।

लालघाव की बीमारीः यह रोग सभी प्रकार की मछलियों को प्रभावित करता है। संक्रमित रोगी मछली के शरीर में जगह–जगह घाव हो जाते हैं। इनका फैलाव अलग–अलग जाति की मछलियों में अलग–अलग प्रकार से होता है।

उपचारः यह एक अति घातक रोग है। रोग का उपचार अगर जल्दी नहीं किया जाता तो कुछ ही समय में यह रोग तालाब की सारी मछलियों को संक्रमित कर देता है तथा मछलियां मरने लग जाती है। अतः रोग का पता चलते ही तालाब में 250 से 300 किलोग्राम चूना प्रति हैक्टर की दर से सात दिन तक देना चाहिये। अथवा सीफा भूवनेश्वर द्वारा तैयार ''सीफेक्स'' एक लीटर प्रति हैक्टर तालाब में एक बार में उपयोग करने से यह बीमारी पूर्णतया नियंत्रित हो जाती है। यह उपचार चूने से भी सस्ता पड़ता है।

अध्याय – 19

कृत्रिम गर्भाधान एवं वीर्य लिंग निर्धारण – पशुपालन उपयोगी सहायक प्रजनन तकनीक

रजनी कुमारी[1] एवं संजय कुमार[2]

1. प्रस्तावना
2. तकनीकी इतिहास
3. फ्लो साइटोमेट्रिक तकनीक
3. तकनीकी बाधाएं
4. निष्कर्ष

पशुपालन व्यवसाय को लाभदायक बनाने में पशु प्रजनन क्षमता का महत्वपूर्ण योगदान है। पशुपालन व्यवसाय में होने वाले आर्थिक नुकसानों का मुख्य कारण भी पशु प्रजनन संबंधी समस्याएं होती हैं। ऐसे में पशु उत्पादन में वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग से इन समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। सहायक प्रजनन तकनीकों द्वारा पशुओं में प्रजनन संबंधी अनेक समस्याओं का निदान किया जा सकता है। इनमें मुख्य है कृत्रिम गर्भाधान, सुपर ओव्यूलेशन, गैर सर्जिकल, भ्रूण संग्रह, क्लोनिंग, वीर्य का लिंग निर्धारण इत्यादि। इन प्रजनन तकनीकों द्वारा विश्व भर में क्रांतिकारी बदलाव आए है। भारतीय परिदृश्य में कृत्रिम गर्भाधारण एक अत्यंत महत्वपूर्ण सहायक प्रजनन तकनीक है जिसका पशु संवर्धन में भी बहुत महत्त्व है।

तकनीकी इतिहास

ऐतिहासिक दृष्टि से, पहली बार 1784 में स्पैलैन्ज़नी ने कुतिया में सफल गर्भाधान किया था। धीरे–धीरे विश्व भर में विभिन्न प्रजातियों में विभिन्न शोधकर्त्ताओं ने इसे आगे बढ़ाया। फ्रोजन वीर्य का उपयोग करके पोल्ज एवं उनके साथियों ने 1949 में, कृत्रिम गर्भाधान के क्षेत्र में क्रांति ला दी। फ्रोजन वीर्य दस से पंद्रह वर्षों तक प्रवाही नाइट्रोजन गैस में सुरक्षित रखा जा सकता है एवं इस प्रकार श्रेष्ठ सांडों के वीर्य का उपयोग उनके मरणोपरांत भी हो सकता है। फ्रोजन वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या लगभग बराबर रहती है। फ्रोजन वीर्य के उपयोग से सांड/बाछा का प्रोजेनी टैस्टिंग हो सकता है इसलिए पशु विकास में फ्रोजन वीर्य का उल्लेखनीय योगदान है। देश–विदेश में उच्च कोटि के सांड की अनुपलब्धता की परिस्थिति में श्रेष्ठ सांडों के फ्रोज़न वीर्य का उपयोग किया जा सकता है। सफल कृत्रिम गर्भाधान के मुख्य स्तंभ है – वैज्ञानिक पद्धति से वीर्य का एकत्रीकरण, जाँच, मूल्याँकन, संरक्षण एवं उचित परिवहन। गर्मी में आई योग्य ;हीटद्ध मादा का चुनाव भी सफल कृत्रिम गर्भाधान के लिए आवश्यक है। प्रजनन संबंधी समस्याएँ जैसे – गर्भपात, ब्रुसेलोसिस, ट्राइकोमोनिएसिस आदि पर सफलतापूर्वक नियंत्रण कृत्रिक गर्भाधान से संभव है।

हाल ही में, कैपर एवं उनके साथियों ने अपने शोध में बताया कि कृत्रिम गर्भाधान विधि के उपयोग के परिणामस्वरूप कार्बन प्रतिसर्जन की मात्रा प्रति बिलियन लीटर के दूध उत्पादन पर घटी है। 1944 में होने वाले कार्बन उत्पादन की मात्रा की तुलना में यह महज़ 37% है।

[1]आई.सी.ए. आर – आर.सी.ई.आर., पटना
[2]पशु पोषण विभाग, बिहार वेटरनरी कॉलेज, पटना

कृत्रिम गर्भाधान ग्लोबल वार्मिंग जैसी गंभीर समस्याओं से निपटने में भी सक्षम है। 2008 के वार्षिक प्रतिवेदन के अनुसार भारतवर्ष में लगभग 44 मिलियन फ्रोज़ेन वीर्य के स्ट्रा का उत्पादन किया गया एवं 41 मिलियन पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान किया गया। निम्न गर्भाधारण दर जो कि लगभग 35–40% है, इस क्रांतिकारी तकनीक के प्रभावी असर के लिए गतिरोधक है। निम्न गर्भाधारण के मुख्य कारण है :–

अनुकुल प्रबंधन न होना एवं तकनीकी शैली में कमी।

सफल कृत्रिम गर्भाधान के लिए किसानों तक इस विधि का वैज्ञानिक रूप में पहुँचना अत्यंत आवश्यक है। वर्ष 1980 में एक आविष्कार ने गाय–भैंस के कृत्रिम गर्भाधान में बहुत महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ दी।

अमेरिका में वैज्ञानिकों ने फ्लो साइटोमिट्री नामक तकनीक का आविष्कार कर के पेटेंट करवाया। यह तकनीक X वीर्य और Y वीर्य को अलग करने में सक्षम है। जब X वीर्य मादा जनन कोशिका अंडाणु को निषेचित करता है तब मादा भ्रूण उत्पन्न होता है, एवं जब Y वीर्य अंडाणु को निषेचित करता है, तब नर भ्रूण उत्पन्न होता है।

इस तकनीक के उपयोग द्वारा मादा पशुओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है। दुधारू पशुओं जैसे गाय, भैंस में मादा पशुओं की मांग नर पशुओं की अपेक्षा अधिक होती है। बकरियों में नर बकरों की मांग मांस उत्पादन हेतु अधिक होती है। इस प्रकार इस तकनीक द्वारा वांछित परिणाम पाए जा सकते हैं।

फ्लो साइटोमेट्रिक तकनीक

यह तकनीक X एवं Y वीर्य में विद्यमान भिन्न डीएनए की मात्रा पर आधारित है। गाय भैसं में यह X एवं Y वीर्य में विद्यमान डीएनए की मात्रा 3.6 से 4% की मात्रा तक भिन्न होती है। सर्वप्रथम इस तकनीक का उपयोग खरगोश में जॉनसन वैज्ञानिक द्वारा 1989 में वीर्य के लिंग जांच के लिए किया गया। तत्पश्चात् इस तकनीक का उपयोग पशुओं की अन्य प्रजातियों के वीर्य पर भी किया गया। गारनर वैज्ञानिक के अनुसार इस तकनीक द्वारा वीर्य के लिंग जांच 85% – 92% तक सही होती है। इस तकनीक का व्यवसयीकरण भी कई कंपनियों द्वारा किया गया है। ये कंपनियाँ लिंग जांचे हुए वीर्य की बिक्री करते हैं। 2009 में लगभग 6 मिलियन की मात्रा में इस प्रकार के वीर्य का विपणन हुआ। हाल में भारत में केरल के किसान ने इस प्रकार के वीर्य के उपयोग द्वारा प्रथम मादा पशु का उत्पादन किया है। पंजाब सरकार भी इस तरह के X लिंग वाले वीर्य का आयात कर रही है। आनंद (गुजरात) में स्थापित अमूल नामक संस्था ने भी इस दिशा में काम करना शुरू किया है। भारत में कई वैज्ञानिक वीर्य के लिंग जाँच की दिशा में शोध कर रहे हैं।

तकनीक बाधाएं

1. यह काफी मंहगा है। इस प्रकार के वीर्य की निषेचन दर सामान्य वीर्य अर्थात् जिस वीर्य का लिंग जाँच नहीं हुआ हैं उसकी तुलना में 70–75% कम है।
2. वर्तमान परिदृश्य में इस दिशा में और अधिक शोध की आवश्यकता है, जिससे कि इन कमियों पर सफलता पाई जा सके।

निष्कर्ष:

कृत्रिम गर्भाधान एवं वीर्य के लिंग जांच द्वारा पशु उत्पादकता में अद्भुत क्रांति लाई जा सकती है। इस तकनीक द्वारा कम पशुओं को रख कर अधिक उत्पादन किया जा सकता है जो देश की वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए आवश्यक है एवं ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याओं को कम कर सकता है।

अध्याय - 20

कृषि विविधिकरण में पशुपालन का योगदान

एस.एम. मेहता[1], आर.एस. राठौड[2] एवं दयानन्द[3]

1. प्रस्तावना
2. कृषि को प्रभावित करने वाले कारक
3. कृषि विविधिकरण की विधियां

1. प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के समय भारत का खाद्यान्न उत्पादन लगभग 50 मिलियन टन था, जो देश की जनता का पेट भरने के लिए अपर्याप्त था। जनता को भूखमरी से बचाने के लिए समय–समय पर विदेशों से खाद्यान्न आयात करना पड़ता था। सरकार की कृषि उत्पादन बढ़ाने की सकारात्मक सोच, कृषि वैज्ञानिकों के सतत् अनुसंधानों तथा कृषकों की कड़ी मेहनत से इस दिशा में प्रगति हुई, जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादन तेजी से बढ़ा। नहरों का विस्तार, विद्युत चलित कृषि कुओं की संख्या बढ़ाकर, साथ ही वैज्ञानिक तकनीक, उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाईयां, उन्नत कृषि यंत्र व कृषि के यांत्रिकरण के कारण फसल उत्पादन में एकतरफा वृद्धि हुई। परिणाम स्वरूप भारत कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया तथा समय समय पर विदेशों को खाद्यान्न निर्यात करने लगा।

2. कृषि को प्रभावित करने वाले कारक

पिछले कुछ समय से खेती में काम आने वाले आदानों जैसे– रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाईयां, बिजली, डीजल, उन्नत बीज, मजदूरी आदि की कीमतें लगातार बढ़ रही है। रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशक दवाईयों की कीमत ही नहीं बल्कि प्रति इकाई क्षेत्र इनकी खपत की मात्रा भी बढ़ रही है। इसी प्रकार लगातार सिंचाई से भूमि में कठोरपन बढ़ रहा है जिस कारण भूमि की जुताई व बुवाई पर भी खर्चा बढ़ रहा है। पिछले एक दशक से फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता में गिरावट आ रही है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास हो रहा है। खेती पर होने वाले खर्च के अनुपात में उत्पादन नहीं मिल पा रहा। इस कारण किसान लगातार कर्ज में डूब रहा है तथा खेती घाटे का सौदा होता जा रहा है। जिसके सम्भावित कारण निम्न हैं:–

- लगातार फसल उत्पादन से भूमि में पौषक तत्वों की कमी।
- क्षेत्र विशेष की चुनी हुई फसल लगातार लेने से भूमि की उर्वरता में कमी।
- सघन खेती से बीमारियों व खरपतवारों का अधिक प्रकोप।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख
[2]सहायक आचार्य (पशुपालन)
[3]सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर, झुन्झुनूं (राजस्थान)

- भूमिगत जल के अधिक दोहन से भू–जल स्तर में गिरावट।
- उर्वरकों के अधिक प्रयोग तथा खराब सिंचाई जल के उपयोग से भूमि में लवण एवं क्षार की मात्रा बढ़ना।
- फसल कटाई के समय बाजार भाव में अप्रत्याशित गिरावट।
- उत्पादन लागत के हिसाब से समर्थन मूल्य का कम होना।
- कृषि में काम आने वाले आदानों की कीमत में लगातार वृद्धि।
- प्राकृतिक प्रकोपों जैसे पाला, आँधी, तूफान, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि, अल्पवृष्टि, बाढ़ आदि का उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव।

उपरोक्त समस्याओं पर विचार करने से जो मुख्य समस्यायें उभर कर सामने आती हैं वे मुख्य रूप से– सिंचाई हेतु पानी की कमी, आदानों पर बढ़ता खर्चा तथा भूमि की उत्पादन क्षमता में लगातार गिरावट होना हैं। इन समस्याओं का एक मात्र समाधान ''कृषि का विविधिकरण'' है। कृषि विविधिकरण से तात्पर्य – किसान अपने पास उपलब्ध संसाधन, रूचि व जलवायु के अनुकूल फसल उत्पादन के साथ–साथ अन्य धन्धे जैसे पशुपालन, मछली पालन, मुर्गीपालन सुअर पालन, सब्जी उत्पादन, फल–फूल उत्पादन, मसाला, औषधीय एवं सुगन्धित फसलों की खेती, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन आदि करें ताकि किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। कृषि विविधिकरण से किसान के पास उपलब्ध संसाधन यथा– भूमि, पानी, श्रम शक्ति, यंत्र आदि का सदुपयोग होगा तथा पुरे वर्ष रोजगार मिल सकेगा अर्थात कृषि क्षेत्र में व्याप्त अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा मिलेगा।

कृषि विविधिकरण की इन विधियों में से पशुपालन किसान के लिये सभी परिस्थितियों एवं जलवायु के लिये उपयुक्त हैं। हालांकि किसान हमेशा से पशु पालता आ रहा है लेकिन लगभग 90 प्रतिशत किसान अपनी घरेलू आवश्यकता की पूर्ति के लिये पशु पाल रहे हैं। यदि वैज्ञानिक विधि से अच्छी नस्ल के पशु पाले तो एक दुधारू गाय/भैंस से 10,000 से 15,000 रूपये प्रतिवर्ष शुद्ध आमदनी मिलती है, इसके साथ ही एक पशु से 40 से 50 क्विंटल गोबर मिलता है जिसमें 60 से 75 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40–50 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 40–50 किलोग्राम पोटाश मिलता है। इसके अलावा अन्य गौंण तत्व जैसे जिंक, सल्फर, लोहा आदि संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। इस प्रकार एक पशु के गोबर से साल भर में रासायनिक उर्वरक के हिसाब से लगभग तीन कट्टा यूरिया, दो कट्टा डी.ए.पी. तथा डेढ़ कट्टा म्यूरेट ऑफ पोटास मिलता है व भूमि को आवश्यक अन्य गौंण तत्व भी संतुलित व पर्याप्त मात्रा में मिलते है। दूसरे शब्दों में, फसल उत्पादन एवं पशु पालन एक दूसरे के पूरक हैं।

यदि किसान फसल उत्पादन के साथ–साथ 4–5 अच्छी नस्ल के दुधारू पशु रखे तो उसे पशुओं से लगभग 50,000–60,000 रूपये शुद्ध आमदनी व बछड़े–बछड़ी तथा गोबर की खाद अतिरिक्त मिलेगी। किसान जितनी भूमि पशुओं हेतु हरा चारा उगाने में काम लेगा, उससे अधिक उत्पादन गोबर की खाद डालने से प्रति यूनिट क्षेत्र की पैदावार बढ़ने से हो जायेगा। इस प्रकार पशु

आधारित खेती करने से भूमि की भौतिक दशा सुधरेगी, जल धारण क्षमता बढ़ेगी तथा प्रति इकाई क्षेत्र फसल उत्पादन बढ़ेगा। पशु आधारित खेती जैविक खेती की परिकल्पना भी पूरी करेगी, क्योंकि पशुधन ही जैविक खेती का मुख्य आधार है।

कृषि विविधिकरण की अन्य विधि जैसे–सब्जी, फल–फूल उत्पादन ऐसे क्षेत्र के किसानों को करना चाहिये जहां सिंचाई का मीठा पानी पर्याप्त मात्रा में हो, शहर से आवागमन के साधन अच्छे हों तथा शहर नजदीक हों। इस प्रकार सब्जी व फल–फूल उत्पादन की बहुत बड़ी सम्भावनायें हैं। सिंचित क्षेत्र में खेत के एक तिहाई भाग में व्यवस्थित ढ़ंग से फलदार पौधे लगाकर उनमें बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति अपनायी जाये तो सिंचाई जल की कमी को काफी हद तक कम किया जा सकता है। बारानी क्षेत्र में आमतौर पर खेतों से पानी का कुण्ड पानी पीने हेतु बनाते हैं तथा जलग्रहण योजना के अन्तर्गत भी काफी कुण्डों का निर्माण करवाया गया हैं। एक बीस हजार लीटर पानी की क्षमता के कुण्ड से, जो कि एक–दो अच्छी वर्षा होने पर आसानी से भर जाता है, उन्नत किस्म के 50 बेर के पौधों को सिंचाई कर पाला जा सकता है। उन्नत किस्म के 50 बेर के पौधों की यदि सही ढ़ंग से सार–सम्भाल कर लें तो अकाल के समय किसान अपनी आजीविका चला सकता है तथा रोजगार के लिए घर नहीं छोड़ना पड़ेगा।

3. कृषि विविधिकरण की विधियां

कृषि विविधिकरण की अन्य विधियों जैसे–मुर्गीपालन, सुअर पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन आदि भी किसान अपने पास उपलब्ध संसाधन, अपनी रूचि व ज्ञान तथा जलवायु की अनुकूलता के अनुसार अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ–साथ रोजगार के अवसर पैदा कर सकता है। कृषि विविधिकरण के सभी व्यवसाय कमोबेस फसल उत्पादन के पूरक है तथा फसल उत्पादन बढ़ाने में सहयोगी है। कृषि विविधिकरण अपनाने से जोखिम को कम किया जा सकता है और साथ–साथ किसान को वर्ष भर कुछ न कुछ आमदनी भी मिलती रहेगी। कृि ा विविधिकरण में धीरे–धीरे प्रति इकाई लागत भी कम होती चली जायेगी। भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होगी तथा सिंचाई के पानी की बचत होगी। इस प्रकार की कृषि प्रणाली से किसान को वर्ष भर लगातार उत्पादन व आमदनी मिलेगी।

खंड–4

कृषि प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

अध्याय - 21

प्रसंस्करण उद्योगों में ध्वनि प्रदूषण का वैज्ञानिक आंकलन

इन्दु रावत[1]

1. प्रस्तावना
2. गेहूँ पिसाई इकाई का चुनाव
3 गेहूँ पिसाई इकाई में कार्यविधि
4. कार्यस्थल पर शोर की अधिकतम सीमा
5. शोर का स्वास्थ्य पर प्रभाव
6. आटा मिल में उच्च शोर के मुख्य कारक
7. अनुशंसाएँ

भारत में असंगठित प्रसंस्करण इकाईयों में कार्य करने का वातावरण श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से जोखिम भरा है। अधिकांश रूप से औद्योगिक इकाईयों से उत्पन्न शोर को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक माना जाता है, अधिक शोर कार्य करने में बाधा डालता है एवं ऐसे वातावरण में ज्यादा देर कार्य करने से श्रवण शक्ति स्थायी रूप से खराब हो सकती है। चूंकि भारत में कानून श्रमिकों को ध्वनि प्रदूषण से सुरक्षा प्रदान नहीं करता है, अतः शोर, कार्य वातावरण का नियमित व अवांछनीय हिस्सा बन गया है।

कृषि प्रसंस्करण उद्योग में शोर के मुख्य स्त्रोत मोटर इंजन, बैल्ट, पुली, गियर, चैन, बकेट एलीवेटर, चैन कनवेयर, स्क्रू कनवेयर और प्रसंस्करण उपकरण आदि हैं। वैज्ञानिक अध्ययन में यह पाया गया है कि हर 6 में से एक वयस्क श्रवण क्षति से प्रभावित होता है और 16 प्रतिशत श्रवण क्षति शोरगुल वाले कार्यक्षेत्र में देर तक कार्य करने से होती है। विभिन्न देशों में शोर की स्वीकृत सीमाएं निर्धारित की गई हैं। ओ.एस.एच.ए. (ऑक्यूपेशनल सेफ्टी एंड हैल्थ एडमिनिशट्रेशन), ओशा व एन.आई. ओ. एस. एच. (नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ऑक्यूपेशनल सेफ्टी एण्ड हैल्थ), नियोश के मानक सर्वाधिक मान्य हैं।

प्रतिदिन 8 घंटे कार्य करने पर ओशा की निर्धारित सीमा 90 डेसीबल व नियोश की 85 डेसीबल है। विभिन्न श्रेणियों जैसे औद्योगिक क्षेत्र, व्यापारिक क्षेत्र, आवासीय क्षेत्र व शान्त क्षेत्र के लिए भारत में ओशा व नियोश के अनुसार दिन व रात में शोर सीमा 78/70, 65/55, 50/45 व 50/40 डेसीबल हैं। आस्ट्रेलिया में औद्योगिक क्षेत्र के लिए दिन में 65 डेसीबल व रात में 55 डेसीबल, व्यापारिक क्षेत्र के लिए 55 व 45 डेसीबल, आवासीय क्षेत्र के लिए 45 व 35 डेसीबल एवं शांत क्षेत्र के लिए 45 व 35 डेसीबल है, कनाडा में पहली तीन श्रेणियों के लिए मानक 65/60, 60/55 व 55/45 जबकि इजराइल में 70 डेसीबल , 55, 50 व 45 डेसीबल हैं जापान में आकड़े 65/50, 60/50, 50/40 व 45/35 डेसीबल है, अमेरिका में अलग–अलग राज्यों में यह आकड़े अलग–अलग है, औद्योगिक क्षेत्र में दिन में 60–80 डेसीबल, रात में 55–75 डेसीबल, व्यापारिक क्षेत्र में 60–65 व 55–65 एवं 50–60 डेसीबल है।

[1]वैज्ञानिक (एस.एस.), भा.कृ.अनु.प.– भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, 218, कौलागढ़ रोड, देहरादून

गेहूँ पिसाई इकाई (यूनिट) में विभिन्न स्थानों पर जहाँ शोर के मुख्य स्त्रोत है, शोर के स्तर का आंकलन करना बहुत आवश्यक है। इस आंकलन से श्रमिकों द्वारा अवशोषित शोर की मात्रा, शोर के स्त्रोतों की पहचान और शोर नियंत्रण तकनीकों का विकास व उचित श्रवण सुरक्षा आवश्यकताओं को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, गेहूँ पिसाई इकाई में विभिन्न स्थानों पर शोर के स्तर का अध्ययन करने के लिए एक शोध किया गया।

गेहूँ पिसाई इकाई का चुनाव

लुधियाना (पंजाब) की गेहूँ पिसाई इकाईयों का सर्वेक्षण किया गया, इकाई के बारे में पूर्व जानकारियाँ जैसे आउटपुट क्षमता, विद्युत स्त्रोत का आकार, मशीनों की मरम्मत/अवस्था एवं चुनी गयी इकाईयों में कार्यस्थल का आकार व संरचना आदि ली गयी थी। मिल में मशीनों व श्रमिकों के स्थानों को दर्शाते हुए लेआउट बनाया गया, शोर के आकड़े इकट्ठा करने हेतु इकाई के आकार पर आधारित 2 मीटर^2 आकार के ग्रिड लेआउट बनाये गये, मिल में एक कोने से शुरू करके विभिन्न स्थानों को चिन्हित किया गया। शोर स्तर को मापने के लिए एक ध्वनि स्तर मीटर जमीन से 1.5 मीटर की ऊँचाई पर रखा गया जिससे आपरेटर व अन्य वस्तुओं द्वारा शोर मापने में कोई बाधा न हो। प्रत्येक ग्रिड बिन्दु पर 30 सेकंड के लिए ध्वनि स्तर मीटर के 'A' पैमाने में शोर का स्तर मापा गया। शोर का आंकलन करने के लिए कार्यस्थल का कन्टूर मैप (नक्शा) बनाया गया जिसमें मशीन का शोर स्तर व मशीन की स्थिति का आकड़ा प्रयोग किया गया। इस शोर स्तर की तुलना स्वीकृत शोर सीमा से की गयी जिससे वहाँ पर संभावित शोर वाले क्षेत्रों को पहचाना गया।

बहुत ज्यादा शोर की स्थिति में, कार्यस्थल में शोर स्तर व अवधि से एक आंशिक शोर स्तर निर्धारित किया गया। आठ घंटे की अवधि में आंशिक शोर स्तरों को जोड़कर प्रतिदिन के शोर स्तर की गणना की गयी। अंत में आठ घंटे का टाइम वेटेड औसत (टी. डब्ल्यू. ए.) शोर स्तर डेसीबल में निर्धारित किया गया जिसकी तुलना शोर की स्वीकृत एक्सपोजर स्तर के साथ की गयी।

गेहूँ पिसाई इकाई में कार्यविधि

गेहूँ पिसाई इकाई में पहले गेहूँ ट्रक से उतारा जाता है एवं कुछ समय के लिए भंडारित किया जाता है। आटा चक्की में डालने से पहले गेहूँ का बाहर का छिलका उतारा जाता है। इसके बाद गेहूँ को शारीरिक रूप से या यांत्रिक तरीके से हॉपर में डाला जाता है। शारीरिक रूप से यह श्रमिकों द्वारा थैले या स्कूप द्वारा डाला जाता है। पिसाई के बाद, वाइब्रेशन छलनी द्वारा प्राप्त आटे से छिलका अलग हो जाता है, इसके पश्चात् श्रमिकों द्वारा आटा बैग में इकट्ठा किया जाता है, फिर इसे तोलकर पैक किया जाता है। इन मिलों में प्रत्येक मशीन अलग–अलग बिजली मोटर द्वारा चलायी जाती है या सभी मशीन एक मोटर से लगी शाफ्ट के द्वारा बैल्ट ड्राइव से चलायी जाती हैं। आटा चक्की में कार्य अवधि सामान्यतः 12 घंटे है, जांच के दौरान, मिल के कमरों मे शोर, औसत तापमान, सापेक्ष आर्द्रता व वायु वेग क्रमशः 69 डेसीबल, 31.9 डिग्री सेल्सियस, 82 प्रतिशत व 5.3 मी./से. पाये गये।

कार्यस्थल (वर्कस्टेशन) में शोर स्तर की निर्धारित मानकों से तुलना

आठ घंटे की कार्यअवधि के लिए नियोश के अनुसार स्वीकृत एक्सपोजर सीमा 85 डेसीबल

है जबकि ओशा की स्वीकृति सीमा 90 डेसीबल है। यघपि पिसाई इकाई में श्रमिकों के कार्य माल उतारना, गेहूँ हॉपर में डालना, आटा इकट्ठा करना, वजन तोलना, बैग भरना, सील करना व बैग ट्रक में लोड करना आदि हैं लेकिन इकाई के दो श्रमिकों के मुख्य कार्य गेहूँ हॉपर में डालना, व आटा इकट्ठा करना हैं। इन क्षेत्रों में श्रमिक 8 घंटे प्रतिदिन कार्य करते है यद्यपि इकाई में शोर की स्थिति में उन्हें नियोश व ओशो के मानकों के अनुसार 8 घंटे से कम समय के लिए कार्य करना चाहिए। डिब्रानिग इकाई में अधिकतम शोर स्तर पाया गया जो 92.8 डेसीबल से लेकर 94.3 डेसीबल तक था। यहाँ पर नियोश व ओशा के अनुसार श्रमिकों को क्रमशः केवल 0.99 व 4.4 घंटों के लिए कार्य करना चाहिए। न्यूनतम शोर स्तर (86.4) तराजू (वेइंग बैलेंस) के पास पाया गया।

शोर का स्वास्थ्य पर प्रभाव

शोर से स्वास्थ्य पर अवांछनीय खतरा रहता है। ज्यादा शोर में कार्य करने से कान के भीतरी भाग में कोकलियर संरचना पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे सुनने की क्षमता स्थायी रूप से खराब हो जाती है। शोर से न केवल श्रवण शक्ति खराब होती है बल्कि इससे तनाव होता है व सिस्टोलिक रक्तचाप भी बढ़ता है शोर के बढ़ने से धमनियों मे रक्त प्रवाह बाधित होता है और रक्त दवाब बढ़ता है। विभिन्न प्रकार की तनाव प्रतिक्रियाओं से सामान्य न्यूरो, वेजीटेटिव व हार्मोनल प्रक्रियाएँ असंतुलित होती हैं एवं शरीर के जरूरी कार्यों के संतुलन में विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रमुख प्रभाव हृदय संबंधी पैरामीटर जैसे रक्तचाप, हदय कार्य, सीरम कोलेस्ट्राल, ट्राइग्लिसराइड एवं मुक्त वसीय अम्ल, हीमोस्टेटिक कारक (फाइब्रोजन), प्लाज्मा श्यानता (विस्कोसिटी), रक्त शुगर सांद्रता के रूप में रक्त प्रवाह को बाधित करते हैं। इससे रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है।

इबादन में फीड मिल श्रमिकों में ध्वनि के एक्सपोजर स्तर का आंकलन करने के लिए एक प्रश्नावली (क्वैशनर) व ध्वनि स्तर मीटर की सहायता से आंकड़े प्राप्त करने हेतु एक शोध किया गया। फीड मील में काफी मात्रा में शोर उत्पन्न हुआ जो कि श्रमिकों के लिए हानिकारक हो सकता है और शोर स्तर को ध्यान मे रखते हुए सर्वोत्तम उपाय किये गये, फीड मील में शोर स्तर 82.5–115.9 डेसीबल था जबकि अधिकांश श्रमिक सप्ताह में 6 दिन में प्रतिदिन 8–10 घटों के लिए कार्य करते हैं। कुछ मिलों में श्रमिक सप्ताह में सभी दिन कार्य करते हैं। ज्यादातर मिलों में शोर स्तर 8 घंटे की कार्य अवधि में अधिकतम स्तर (85 डेसीबल) के विशिष्ट कोड से ऊपर था। अधिकांश मिलों में श्रमिकों के लिए किसी भी शोर नियंत्रण उपकरण की व्यवस्था नहीं थी और कुछ मिलों में उपकरण होने के बावजूद श्रमिकों द्वारा इनका प्रयोग नहीं होता है।

आटा मिल में उच्च शोर के मुख्य कारक

लम्बी व चपटी बैल्ट ड्राइव, खुली हुई मोटर, मशीनों की मरम्मत में कमी, गेहूँ पिसाई इकाई में अपर्याप्त अकास्टिक डिजाइन आदि शोर के मुख्य कारण हैं। सुरक्षित कार्य वातावरण को मुहैया कराने के लिए मिल में सभी श्रमिकों को शोर नियंत्रण उपकरण प्रदान करने चाहिए एवं कार्य करते समय उनके उपयोग पर जोर डालना चाहिए। मशीनों का नियमित रूप से रखरखाव

करना चाहिए जिससे मशीनों में कम कम्पन्न पैदा हो। इसके अतिरिक्त मिल के मालिकों को श्रमिकों की कार्य अवधि में कटौती करनी चाहिए जिससे वे शोर के वातावरण में कम समय के लिए कार्य करें।

निष्कर्ष

लुधियाना (पंजाब) के चुनिंदा गेहूँ पिसाई उद्योगों में शोर के स्तर के सर्वेक्षण से पता चला कि श्रमिक मिलों में काफी ज्यादा शोर वाले वातावरण में कार्य करते हैं जिसका उनके स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ सकता हैं। उनके कार्यक्षेत्र में 85 डेसीबल (नियोश की स्वीकृत सीमा) से ज्यादा शोर स्तर पाया गया जिसमें वे ज्यादा समय तक कार्य करते है। गेहूँ पिसाई उघोग में सामान्यतः कार्य अवधि 12 घंटे प्रति दिन है। इसमें शोर के मुख्य स्त्रोत गेहूँ पिसाई मशीन, आटा छानने की मशीन एवं बिना ढकी हुई मोटर आदि हैं।

अनुशंसाएँ

1. व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण जैसे इयर प्लग श्रमिकों को देने चाहिए और उनके उपयोग को सुनिश्चत करना चाहिए।
2. सभी मिलों में मशीनों का उचित रखरखाव आवश्यक है।
3. यदि शोर लगातार हो रहा है तो श्रमिकों की कार्यअवधि नियोश व ओशा के अनुसार कम करनी चाहिए।

अध्याय - 22

दूध एवं दूध उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन

सविता सिंघल[1], पूनम कालश[2], एवं एस.के. शर्मा[3]

1. प्रस्तावना
2. पनीर बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं विधि
3. छैना मुर्की बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं विधि
4. रसगुल्ले बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं विधि
5. रसमलाई बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं विधि
6. आइसक्रीम बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं विधि

भारत में डेयरी उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन एक पुरानी परम्परा हैं। कुछ पारम्परिक दूध उत्पाद जैसे संदेश, बरफी, दही, श्रीखण्ड, कुल्फी आदि अत्यन्त लोकप्रिय हैं। आजकल घरेलु स्तर पर पनीर, छैना मुर्की, आइसक्रीम, रसगुल्ले, कलाकन्द इत्यादि भी आसानी से बनाये जा सकते हैं। दूध उत्पाद पौष्टिकता से भरपूर होते हैं।

सब्जियाँ तथा बंगाली मिठाइयां बनाने के लिए पनीर का प्रयोग किया जाता है। भारतीय बाजारों में सब्जी आदि के लिए तो पनीर आसानी से मिल जाता हैं लेकिन ये पनीर बंगाली मिठाई जैसे रसगुल्ला, चमचम, रसमलाई आदि बनाने में काम नहीं आता। प्रस्तुत आलेख में कुछ दूध उत्पादों को बनाने की विधि की जानकारी दी जा रही हैं जो अत्यन्त सरल हैं इन उत्पादों को घरेलु स्तर पर बनाकर अपना एवं परिवार का स्वास्थ्य एवं सेहत अच्छी रख सकते हैं साथ ही साथ लघु उद्योग के रूप में भी अपना कार्य शुरू किया जा सकता हैं।

पनीर

सामग्री– दूध–1 लीटर, नींबू का रस या सिरका–2 चाय के चम्मच या नींबू का सत–2 ग्राम

विधि–

1. पनीर बनाने के लिए हमेशा फुल क्रीम दूध का प्रयोग करें।
2. दूध को भारी तले के बर्तन में गरम करें, जब दूध में उबाल आ जाए तब इसमें नींबू निचोड़कर/सिरका डालकर या नींबू के सत को एक गिलास पानी में घोलकर दूध में डालें।

1–3 कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर

3. दूध में पानी अलग तथा पनीर अलगे दिखने लगेगा, गैस बंद करे तथा इसमें थोड़ा सा ठण्डा पानी या बर्फ मिला दे ताकि पनीर एक दम पानी से अलग हो जाए।
4. अब छैने को किसी साफ, सूती मलमल के कपड़े से छानिए तथा कपड़े सहित किसी भारी वजनदार पत्थर से दबा कर 20–25 मिनट के लिए रख दे।
5. पनीर को कपड़े से निकालें और चौकोर टुकड़े करें। पनीर विभिन्न व्यंजन बनाने के लिए तैयार हैं।

छैना मुर्की

सामग्री– पनीर 150 ग्राम, चीनी 200 ग्राम, पानी 100 ग्राम

विधि–

1. सबसे पहले पनीर के छोटे–छोटे टुकड़े करें।
2. 100 ग्राम पानी में चीनी डालकर तीन तार की चाशनी बनायें।
3. पनीर के टुकड़ो को चाशनी में डालें।
4. जब सफेद झाग बनने लगे तथा चाशनी एकदम गाडी हो जाए तब गैस बंद करें तथा लगातार हिलाते रहें
5. कुछ देर बाद हम देखेंगें की चीनी की चाशनी एक दम सूख जाएगी तथा पनीर पर चढ़ जाएगी, छैना मुर्की तैयार है।
6. ये मिठाई करीब 15 दिनों तक खराब नहीं होती है।

रसगुल्ले–

सामग्री– दूध 1 लीटर, चीनी–400 ग्राम, पानी 800 ग्राम।

विधि–

1. दूध को फाड़कर छैना बनायें।
2. एक प्लेट में छैने को डालकर हथेली से खूब मसलें तथा छोटी–छोटी गोलियां बनायें।
3. चीनी, पानी को एक गहरे भगोने में मिलाकर गैस पर रखें तथा जब चाशनी उबलने लगे तब छैने के गोले एक–एक करके चाशनी में डालें।
4. भगौने को सख्त ढक्कन से ढकें, भाप बाहर ना निकले। 15 मिनट तक पकायें।

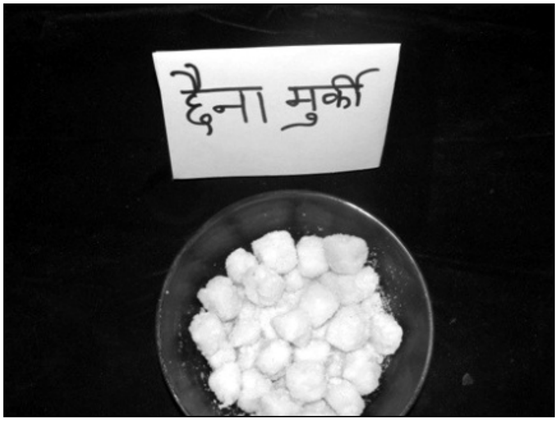

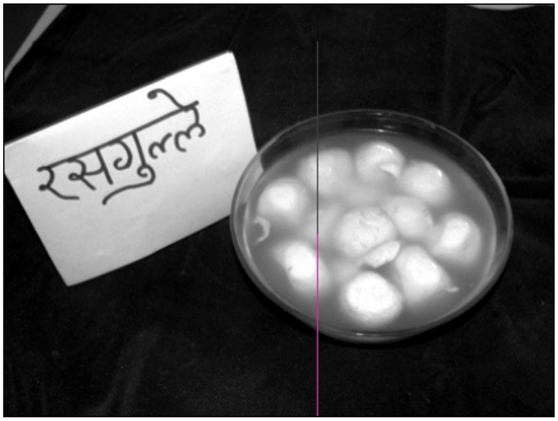

5. 15 मिनट बाद गैस बंद करे तथा 2 कटोरे पानी डाले। ठण्डा करें तथा परोसे।

रसमलाई

रसमलाई बनाने के लिए रस तथा मलाई को अलग–अलग बनाया जाता है।

रस

सामग्री– दूध–2 लीटर, चीनी–3 कटोरी, पानी–8 कटोरी

विधि–

1. दूध को फाड़कर, कपड़े में बांधकर कपड़ा लटका दे ताकि उसका पानी निकल जाए (छैना तैयार है)
2. छैना तैयार होने के बाद उसमें 1 चम्मच मैदा डालकर मसलें तथा पेड़े बना लें ।
3. चीनी तथा पानी मिलाकर चाशनी बनायें जब चाशनी अच्छी तरह उबलने लगें तब छैने के पेड़े चाशनी में डालें।
4. 15 मिनट बाद उसको पलटना है। लगभग आधा घंटे पकाने के बाद रस को मलाई में डालें।

मलाई–

सामग्री– दूध–3 किलो, चीनी–1 कटोरी।

विधि–

1. दूध को आधा रहने तक उबालें।
2. इसमें छोटी ईलायची, कतरी बदाम, पिस्ता आदि स्वादानुसार डालें।

आइसक्रीम

सामग्री– दूध– 2 कप, क्रीम– 1 कप, चीनी–3/4 कप, कॉर्न फ्लोर–2 चाय के चम्मच, मिल्क पाऊडर– 1 कप, वनीला एसेंस–8–10 बूंद।

विधि–

1. दूध को गुनगुना करके इसमें कॉर्न फ्लोर तथा मिल्क पाउडर डालकर गैस पर एक उबाल आने तक गर्म करें लेकिन ध्यान रखे गांठे ना बंधें।
2. अब इसमें क्रीम डालें तथा ठण्डा होने के लिए रखें।
3. ठण्डा होने पर चीनी तथा वनीला एसेंस भी डालें।
4. अब सभी सामग्री को मिक्सी के जार में कुछ सैकण्ड्स के लिए चलायें।
5. एल्यूमीनियम के आइसक्रीम के सांचों में डालकर फ्रीजर में जमायें।

अध्याय - 23

फल – सब्जी परिरक्षण

रूपेन्द्र कौर[1], भगवत सिंह राठौड़[2] एवं अशोक कुमार शर्मा[3]

1. प्रस्तावना
2. फल -सब्जी परिरक्षण के उद्‌देश्य एवं लाभ
3. फल-सब्जी परिरक्षण की सामान्य विधियाँ

1. प्रस्तावना

उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए फल–सब्जियाँ अत्यन्त जरूरी हैं। ये हमें स्वस्थ, निरोग एवं फुर्तिला व चुस्त बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। इनमें विटामिन एवं खनिज लवण भरपूर मात्रा में उपस्थित रहते हैं, जो हमें विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। तथा ये क्षुद्धावर्द्धक एवं तृप्तिदायक होती हैं। सब्जियाँ भोजन में विविधता लाकर रूचिकर बनाती हैं। लेकिन फल–सब्जियों के विकारी प्रकृति के होने के कारण कम समय तक सुरक्षित रहते हैं। तथा सड़–गल कर खराब हो जाते हैं। इनको लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए इनका परिरक्षण किया जाता हैं। फल–सब्जियों को लम्बे समय तक बिना खराब हुये उसकी गुणवत्ता व पौष्टिकता के साथ संरक्षित करके रखना परिरक्षण कहलाता हैं। यह एक कृषि औद्योगिकरण की प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा मूल्य सवंर्धित उत्पादों का निर्माण किया जाता हैं। जिसके कई कारण हैं :–

1. फल एवं सब्जियां टिकाऊ नही हैं किन्तु इनके उत्पाद जैसे अचार, मुरब्बा, चटनी परिरक्षित किए जा सकते हैं जो टिकाऊ होने के साथ–साथ आमदनी में भी वृद्धि करते हैं।
2. सुरक्षित भोजन की बढ़ती मांग के कारण इन पदार्थों का बाजार में विस्तार हुआ हैं जो इस उद्योग के संवर्धन में सहायक हैं।
3. शहरीकरण के विस्तार एवं आर्थिक स्थिति के सुधार के कारण, पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं जल्द होने वाले परिरक्षित पदार्थों की मांग बढ़ी है।
4. ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक सुधार के लिए कृषि का अधिक लाभप्रद होना आवश्यक हैं और उसका एक सरल एवं सहज उपाय हैं फल–सब्जी परिरक्षण।

2. फल–सब्जी परिरक्षण के उद्‌देश्य एवं लाभ

1. परिरक्षण द्वारा फल एवं सब्जियों को नष्ट होने से बचाकर वर्ष भर उपलब्ध करवाया जा सकता है।
2. कटाई उपरान्त होने वाली हानि से बचाया जा सकता है।
3. परिरक्षित पदार्थ से भोजन के सुगन्ध, स्वाद व मूल्य संवर्धन से पोषण मूल्य की भी वृद्धि होती है।

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय) गूंता – बानसूर, अलवर (राज.)
[2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभारी, कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय) गूंता – बानसूर, अलवर (राज.)
[3]वरिष्ठ वैज्ञानिक, प्रसार शिक्षा, भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर 321303 (राज.)

4. परिरक्षित पदार्थों को डिब्बाबंद करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन आसान हो जाता हैं।
5. आर्थिक बचत के साथ रोजगार के अवसर प्रदान करता हैं।

3. फल-सब्जी परिरक्षण की सामान्य विधियाँ

फल–सब्जियों को बेमौसम प्रयोग करने व लम्बे समय तक संरक्षित रखने के लिए आमतौर पर दो विधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. अस्थाई विधियाँ
2. स्थाई विधियाँ

अस्थाई विधियाँ

1. रखरखाब एवं सावधानी

फल–सब्जी को तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन पर कोई खरोंच, चोट व दबाव न आये क्योंकि इस स्थान पर जीवाणुओं का असर ज्यादा होता हैं। फल–सब्जी को सुबह व शाम के समय ही तोड़ना चाहिए। एक स्थान से दूसरे स्थान पर टोकरियों में भर कर ले जाना चाहिए ताकि ये दबाव से खराब न हो।

2. नमी तथा हवा से दूर रखना

नमी व हवा के द्वारा खाद्य पदार्थों में जीवाणुओं की वृद्धि तेजी से होती है जो रासायनिक परिवर्तन कर खाद्य पदार्थों को खराब कर देते हैं। यही कारण है कि काटने के बाद कुछ समय रखा जाये तो फल व सब्जियाँ काले पड़ जाते हैं। इसलिए फल–सब्जियों को शुष्क व बिना हवा वाले स्थान पर कुछ समय तक संरक्षित रखा जा सकता है।

3. कम तापमान के प्रयोग द्वारा

उच्च तापमान पर जीवाणुओं की वृद्धि एवं विकास तेजी से होता है जिसके कारण फल–सब्जियाँ सड–गलकर व्यर्थ हो जाते हैं। इन्हें ऐसे स्थान पर रखा जाये जहाँ इन्हें गर्मी प्राप्त न हो। इसलिए घरेलू स्तर पर रेफ्रिजरेटर में फल एवं सब्जियों को कुछ दिनों तक संरक्षित रखा जा सकता हैं। औद्योगिक स्तर पर इन्हें शीत भण्डारों में कई महिनों तक रखा जा सकता है।

4. प्रस्तुरीकरण

इस विधि में ताप द्वारा खाद्य पदार्थों के अधिकांश कीटाणुओं को नष्ट कर दिया जाता हैं। खटास रहित खाद्यों के अस्थाई परिरक्षण के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है।

स्थाई परिरक्षण

फल–सब्जियों को लम्बे समय तक संरक्षित रखना आवश्यक हैं क्योंकि विशेष फल–सब्जियाँ विशेष मौसम में ही उपलब्ध होती है। लेकिन काफी मात्रा में सड–गलकर नष्ट हो जाते हैं। उस समय ये सस्ते भी होते हैं तथा इनका परिरक्षण करके बेमौसम में लम्बे समय तक इनका उपयोग किया जा सकता हैं। इस विधि में जीवाणुओं को निष्क्रिय करके संरक्षित किया जाता हैं। घरेलू स्तर पर निम्न स्थाई विधियों को अपनाया जा सकता है–

निर्जलीकरण

फल–सब्जी की आर्द्रता को कम करके जीवाणुओं को पनपने से रोका जा सकता हैं, इसके लिए फल सब्जियों को धूप में सुखाकर संरक्षित किया जाता हैं, जिसमें नमी वाष्पीकृत होकर उड़

जाती हैं तथा जीवाणुओं के पनपने पर नियंत्रण किया जा सकता हैं। फल–सब्जियों को सुखाने से पूर्व 100 डिग्री सेल्सियस तापमान पर उबलते हुये पानी में 1–3 मिनट तक रखा जाता हैं फिर निकालकर सुखाया जाता हैं जिसे 'ब्लांचिग' कहते हैं। इसके द्वारा जीवाणुओं का नाश हो जाता हैं, किण्वक, निष्क्रिय हो जाते हैं तथा फल–सब्जियां सड़ने–गडने से बच जाती हैं।

डिब्बाबंदी व विसंक्रमण :

आचार, जेम, चटनी आदि पर फफूँद लगने से रोकन के लिए परिलक्षित खाद्यों को डिब्बाबंद कर विसंकृमित किया जाता हैं। इसमें खाद्यों को बोतल या डिब्बे में भरकर मोम से सिलबंद किया जाता हैं। तत्पश्चात् इन्हें खोलते हुये पानी में 25–35 मिनट तक उबाला जाता हैं जिससे डिब्बे में उपस्थित समस्त जीवाणु नष्ट हो जाते है। इस प्रकार खाद्य पदार्थ लम्बे समय तक संरक्षित रखे जा सकते हैं।

चीनी द्वारा :

चीनी भी एक परिरक्षक पदार्थ की तरह कार्य करता हैं। यदि फलों एवं सब्जियों में 68–70 प्रतिशत चीनी मिला दी जाए तो ये परासरण क्रिया द्वारा फफूँद को निष्क्रिय कर देती है। अतः भोजन लम्बे समय तक परिरक्षित रह जाते है। जैम, जैली, मुरब्बा, चटनी आदि में इसका प्रयोग होता हैं।

तेल व मसालों द्वारा :

तेल व मसाले प्राकृतिक भोज्य परिरक्षक का कार्य करते हैं। इनमें पाये जाने वाले रासायनिक तत्व खाद्य को खराब होने से बचाते हैं। तथा जीवाणुओं को निष्क्रिय कर खाद्य को लम्बे समय तक संरक्षित रखते हैं। तेल भी जीवाणु एवं फफूँदी नाशक की तरह कार्य करता हैं। इसलिए आचार तेल में डूबा रहने से हवा का संपर्क हटा कर संरक्षित करता है।

नमक द्वारा

नमक भी एक प्राकृतिक परिरक्षण हैं जो फल–सब्जियों को सड़ने से बचाता हैं। नमक खाद्यों में उपस्थित नमी को सोख लेता है तथा जीवाणु नहीं पनप पाते और खाद्य परिरक्षण हो जाते हैं। फल–सब्जी को परिरक्षण करने के लिए 15–20 प्रतिशत नमक का प्रयोग किया जाता हैं।

सिरके के प्रयोग द्वारा

सिरके में 4–5 प्रतिशत ऐसीटिक अम्ल होता है वो आचार को स्थायी रूप में परिरक्षण रखने में सहायक है।

रसायनों के प्रयोग द्वारा

रसायनों के सीमित प्रयोग से कुछ खाद्य पदार्थो का स्थायी परिरक्षण हो जाता हैं। इन रासायनिक पदार्थो का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यकता हैं कि इन्हें सही मात्रा में डाला जाए। दो तरह के रासायनों का प्रयोग फल एवं सब्जी परिरक्षण में किया जाता हैः–

(क) पोटेशियम मैटा बाई सल्फाईड: इसको पानी में घोलने पर सल्फर डाई–ऑक्साइड गैस निकलती हैं, जिसकी उपस्थिति में जीवाणु नहीं पनप पाते। इसका उपयोग स्कवेश एवं शर्बत बनाने में किया जाता हैं।

(ख) सोडियम बेंजोएट: इसे पानी में घोलने पर बेंजोएट अम्ल प्राप्त होता है जो जीवाणुओं को निष्क्रिय कर देता है। इसका उपयोग जैम, अचार, मुरब्बा आदि बनाने में किया जाता हैं।

अध्याय – 24

फलों एवं सब्जियों की आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले कारक

हेमन्त कुमार वर्मा[1], चिरन्जी लाल मीणा[2], भवानी सिंह ईन्दा[3] एवं अभिषेक पालड़िया[4]

1. प्रस्तावना
2. आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले कारक

1. प्रस्तावना

भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा समग्र फलों व सब्जियों के उत्पादन वाला देश है और भारतीय उद्यानिकी बोर्ड (2014) के अनुसार सन् 2014 के अन्त तक कुल 88.98 मिलियन टन फलों एवं 162.29 मिलियन टन सब्जियों का उत्पादन रहा। यह पाया गया है कि 30–40 प्रतिशत फलों व सब्जियों की बरबादी फसल कटाई उपरान्त हो जाती है। भारत में फलों व सब्जियों के उत्पादन के पश्चात् हानि, अनुचित आपूर्ति श्रृंखला, शीत श्रृंखलाओं की संरचना और खाद्य प्रसस्कंण ईकाइयों में अधिकतम क्षमता की कमी के परिणामस्वरूप होती है। भारत में 10 मिलियन टन शीत भंडारण क्षमता की कमी के कारण प्रतिवर्ष 30 प्रतिशत से अधिक कृषि उपज बर्बाद हो जाती है और 20 प्रतिशत से अधिक बर्बादी का कारण कटाई उपरान्त की सुविधाएं और शीत श्रृंखला सुविधाओं की कमी है। आपूर्ति श्रृंखला में अगर उत्पादों को सही स्तर पर वितरित किया जाए तो उसमें उस उत्पादन की लागत में काफी कमी की जा सकती हैं इसके वितरण के लिए कुशल आपूर्तिकताओं, निर्माताओं, गोदामों और दुकानों को एकीकृत करने की आवश्यकता है। फलों व सब्जियों की आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं, जो विकास को प्रभावित करते हैं।

2. आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित करने वाले कारक

2.1 शीत श्रृंखला कारक

शीत श्रृंखला, तापमान नियंत्रण की सुविधा प्रदान कर फलों व सब्जियों के उत्पादों को खराब होने से बचाता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन की जगह से लेकर परिवहन और भंडारण तक तापमान नियंत्रण की सुविधा प्रदान करती है। उचित आर्द्रता, उचित तापमान द्वारा इन उत्पादों को ठंडा या जमा हुआ रखा जाता है। शीत श्रृंखला में सामान्यत छटनी, श्रेणी करण, पैकेजिंग, भंडारण, प्रसंस्करण और परिवहन जैसी बुनियादी सुविधाएं होती हैं। भारत में शीत श्रृंखला में सुविधाओं की कमी, शीत भंडार की अपर्याप्त क्षमता, शीत श्रृंखला नेटवर्क की कमी जैसे शीत श्रृंखला से संबंधित विभिन्न कारक हैं। जिनकी वजह से किसानों और व्यापारियों के लिए उनके उत्पादों का समुचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता परिणाम स्वरूप व्यापार

[1]हेमन्त कुमार वर्मा, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
[2]चिरन्जी लाल मीणा, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
[3]भवानी सिंह ईन्दा, डाटा एन्ट्री ऑपरेटर
[4]अभिषेक पालड़िया, डाटा एन्ट्री ऑपरेटर
कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राज.)

करना भी मुश्किल हो गया है। शीत श्रृंखला में कुछ उपाय किए जा सकते हैं जैसेः प्रमुख फलों और सब्जियों के उत्पादन क्षेत्रों में आधारभूत संरचना का विकास करना तथा कृषि व्यापारियों या सहकारी समितियों द्वारा शीत भंडारण सुविधाओं को उपलब्ध करवाना।

2.2 विखंडन कारक

भारत में फलों व सब्जियों के क्षेत्र में यह एक मुख्य कारकों में से एक है जिसमें किसानों की आय का बड़ा हिस्सा (75 प्रतिशत) इन स्थानीय व्यापारियों और बिचौलियों (मध्यस्थ) द्वारा हड़प लिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप किसानों को अपने उत्पादन का पर्याप्त आय नहीं मिल पाती है। भारत में सम्पूर्ण आपूर्ति श्रृंखला पर इन्हीं स्थानीय व्यापारी व बिचौलियों का कब्जा है। इसके लिए राज्य सरकारी एजेंसियों एवं सहकारी विपणन समितियों द्वारा फलों व सब्जियों के प्रसंस्करण की उच्च मूल्य संवर्धन गतिविधियों का निर्माण कर सकती है।

2.3 एकीकरण कारक

सम्पूर्ण आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावित और लाभदायक बनाने के लिए किसानों व कम्पनियों के मध्य सम्बन्ध और एकीकरण का महत्वपूर्ण योगदान है लेकिन भारत में किसानों और दूसरे सहभागियों के बीच एकीकरण की इस क्षेत्र में बड़ी कमी है।

2.4 आधारभूत संरचना के कारक

भारत में फलों व सब्जियों के मामले 40 प्रतिशत से अधिक नुकसान मौजूदा अपर्याप्त आधारभूत सरंचना के कारण होता है। आमतौर पर किसान अपनी उपज सीधे मंडी में ब्रिक्री के बजाय स्थानीय मध्यस्थों या कृषि व्यापारियों को बेचना पसन्द करते हैं। भंडारण सुविधा गांवो में उपलब्ध न होकर केवल थोक बाजारो या शहरी बाजरों के पास ही उपलब्ध होती है। कृषि उत्पाद को किसान से अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचाने में फलों और सब्जियों के क्षेत्र में आधारभूत संरचना को विकसित किया जाना चाहिए। इसके लिए कुछ उपाय किये जा सकते हैं जैसे फलों व सब्जियों के मुख्य उत्पादन क्षेत्रों के पास प्रसंस्करण इकाईयां खाद्य पार्क की स्थापना सरकारी एजेंसियों या उद्यमियों द्वारा की जा सकती है जिससे पैकेजिंग, अर्द्ध प्रसंस्करण, छँटाई, लादान व उतराई में काम आने वाले उन्नत उपकरण और मशीनरी का उपयोग फलों व सब्जियों में मूल्य संवर्धन में किया जा सकता है।

2.5 पैकेजिंग सम्बन्धित कारक

फल व सब्जियाँ अत्यधिक एवं शीघ्र खराब होने वाले कृषि उत्पाद में उपयुक्त पैकेजिंग की सख्त आवश्यकता होती है। उपयुक्त पैकेजिंग के बिना उत्पाद को ताजा रखने में मदद करना काफी मुश्किल होता है। अधिकतर स्थानों पर फलों व सब्जियों के रखरखाव और पैकेजिंग की उपयुक्त सुविधा नहीं है जिससे उत्पाद खराब, बर्बाद और गुणवत्ता का ह्रास हो जाता है। इसके लिए सम्बन्धित लोगों को उचित प्रशिक्षण व ज्ञान देने की आवश्यकता है। राज्य सरकार पैकेजिंग ईकाई स्थापित कर रोजगार के भी अवसर प्रदान कर सकती है।

2.6 तकनीकी कारक

अयोग्य एवं अप्रचलित तकनीकीयाँ और पुरानी मशीनरी की वजह से किसानों व कृषि उद्यमियों को उपयुक्त तकनीकी का उपयोग करने तथा कटाई के बाद उत्पाद में नुकसान को कम करने के लिए तकनीकी का उपयोग करने में परेशानीयों का सामना करना पड़ता है। इसके समाधान के लिए की ग्रामीण उद्यमियों को कटाई के बाद तकनीकी, संबन्धित उपकरणों की अभियांत्रिकी तथा खाद्य विज्ञान के बारे में प्रशिक्षण व उपयुक्त जानकारी प्रदान कर उनका विकास किया जा सकता है। कृषि संस्थाओं द्वारा कार्यशालाओं और प्रदर्शनों के माध्यम से आधुनिक प्रोद्योगिकी और विपणन की जानकारियों का संचार किया जा सकता है।

2.7 किसान ज्ञान और जागरूकता कारक

भारत का किसान कृषि कार्य को प्रभावी व बेहतर बनाने के लिए नवीन तकनीकियों का उपयोग ना के बराबर करता है। उपयुक्त जानकारियों व जागरूकता के अभाव में किसान, फलों व सब्जियों में आपूर्ति श्रृंखला को प्रभावी व कार्यकुशल नहीं बना सकता । इसके लिए किसान मेलों, प्रदर्शनी आदि के माध्यम से किसान के ज्ञान व जागरूकता सम्बन्धी रणनीतियाँ सिफारिश कर लाभांश में बढ़ोतरी की जा सकती है, साथ ही अनुसंधान संस्थानों में विकसित नवीनतम कटाई उपरान्त की तकनीकों का उपयोग व समर्थन द्वारा भी आपूर्ति श्रृंखला को दुरस्त किया जा सकता है।

2.8 गुणवत्ता व सुरक्षा कारक

आपूर्ति श्रृंखला में ताजे उत्पादों को समय पर उचित गुणवत्ता के साथ उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाता है। अच्छी गुणवत्ता के परिणाम स्वरूप उत्पाद में स्वयं जीवन क्षमता नियंत्रित होती है और आपूर्ति श्रृंखला में भी मददगार साबित होती है। इसमें कुछ रणनीतियों की आवश्यकता है जैसे– लेबलिंग, गुणवत्ता व सुरक्षा मानकों का सम्पूर्ण ज्ञान कार्यरत पैकेजिंग संस्थानों द्वारा उपलब्ध करवाया जावे।

2.9 प्रंसस्करण और मूल्य संवर्धन कारक

प्रसंस्करण का व्यापक अर्थ भोजन में नुकसान से बचाने के सभी उपायों से है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें खाद्य पदार्थों में होने वाले नुकसान को उचित उपचार व रखरखाव द्वारा रोका या कम किया जा सकता है तथा साथ–साथ पोषक तत्व, बनावट, गुणवत्ता और स्वयं जीवन क्षमता को नियंत्रित या बढ़ाया जाता है। प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन पदार्थों की स्वयं जीवन क्षमता को बढ़ाता है तथा हानि को कम करता है। अत्यधिक मात्रा में प्रसंस्करण (जैम, जैली, संरक्षण पदार्थों, कैण्डी, अचार, फल पेय उत्पाद, सूखे उत्पादों) से फल व सब्जियों की बरबादी को कम होती है। प्रसंस्करण पदार्थों के निर्यात की काफी सम्भावनाएं हैं।

2.10 वित्तीय कारक

देश की मंडियों में मूल्य निर्धारण की पारदर्शिता में कमी है जिसकी वजह से उपज का किसानों को सही दाम नहीं मिल पाता है और आय का अधिकांश हिस्सा बिचोलियों द्वारा हडप लिया जाता है। अंतिम उपभोक्ता मूल्य व किसानों को प्राप्त मूल्य में बहुत ज्यादा अन्तर है। कृषि कंपनियों और कृषि उद्यामियों द्वारा अनुबंध खेती अपनाकर या कृषि सहकारी बाजारों की विकसित कर किसानों पर वित्तिय बोझ को कम किया जा सकता

है। कृषि राज्य संघ फलों व सब्जियों के खुदरा बिक्री को अपने हाथों में ले करके खाद्य श्रृंखला को दुरूस्त कर स्थानीय कृषि व्यापारियों और थोक व्यापारियों की श्रृंखला को खत्म या न्यून करके किसानों तक उनके उत्पाद का उचित मूल्य दिलाया जा सकता है।

2.11 कटाई उपरान्त नुकसान के कारक

सीआईपीएचईटी (2015) के अनुसार फलों व सब्जियों में में 4.58 से 15.88 प्रतिशत अधिक हानि दर्ज की गई है। बड़ी मात्रा में फल व सब्जियाँ मुख्य बाजार और प्रसंस्करण ईकाइयों तक पहुँचने में ही बर्बाद हो जाती हैं। विभिन्न जिलों व प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों में शीत श्रृंखला सुविधाओं की स्थापना करना संबन्धित रणनितियाँ हो सकती हैं, जहां सड़क सुविधा नहीं हैं वहाँ शीत श्रृंखला को विकसित कर अधिक खाद्य प्रसस्ंकरण ईकाइयों की स्थापना पर जोर देने की आवश्यकता है।

2.12 परिवहन कारक

परिवहन व्यवस्था द्वारा ही उत्पादों का स्थानांतरण उपभोक्ताओं तक सही समय और सही गुणवत्ता के साथ होता है। इसका महत्व शीघ्र खराब होने वाले फलों व सब्जियों में बढ़ जाता है। भारत में परिवहन संबन्धित चुनौतियां काफी ज्यादा है क्योंकि उपयुक्त परिवहन साधनों की कमी, परिवहनों की उच्च लागत, तापमान की कमी जैसे कारक खाद्य श्रृंखला को कमजोर करते हैं। राज्य सरकार द्वारा फलों व सब्जियों के लिए प्रशीतन परिवहन साधनों को स्थापित किया जा सकता है जिससे आपूर्ति श्रृंखला क्षमता में सुधार किया जा सके।

2.13 बाजार मांग और सूचना सम्बन्धित कारक

समुचित जानकारी आपूर्ति श्रृंखला की कुशलता का आधार है। समुचित बाजार मांग संबन्धित जानकारी के अभाव में आपूर्ति श्रृंखला को सफल नहीं बनाया जा सकता। भारतीय किसानों को बाजार मांग, खाद्य प्रसंस्करण ईकाइयों आदि की जानकारी का अभाव है। इसके समाधान के लिए बाजार मांग की भविष्यवाणी का ज्ञान होना, आईसीटी की पहल पर ई–चौपाल को आपूर्ति श्रृंखला में दोहराना, सरकारी पोर्टल में फलों व सब्जियों की कीमत प्रतिदिन उपलब्ध होना आदि हैं।

अध्याय - 25

कटाई उपरांत नुकसान एवं निवारक तकनीक

दशरथ भाटी[1] एवं सुमित्रा मीना[2]

1. प्रस्तावना
2. कटाई उपरान्त घाटे को प्रभावित करने वाले मुख्य घटक
3. कटाई उपरांत नुकसान से बचने की तकनीक

1. प्रस्तावना

भारत दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है तथा हमारे देश की आबादी लगभग सवा अरब हो चुकी है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण के लिए यह अति आवश्यक है कि कटाई उपरांत होने वाले नुकसान को रोकना या इस नुकसान को नगण्यः करें। कुछ दशक पहले तक भारत में कृषि उत्पादन को बढ़ाने पर जोर डाला जा रहा था। वर्तमान में हमारा देश, दुग्ध, अदरक, केला, अमरूद, पपीता, आम आदि के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पादों का उत्पादन होता है जैसे कि खाद्य आनाज–257 मि.ट., दलहन–18. 4 मि.ट., तेल बीज–30.94 मि.ट., फल एवं सब्जियाँ–243 मि.ट., मसाले–5.8 मि.ट., दूध–132 मि.ट. आदि। किन्तु कटाई उपरांत होने वाले नुकसान के कारण इन खाद्यानों का एक बड़ा हिस्सा खाने योग्य नहीं बचता। एक विख्यात अखबार में छपी खबर के अनुसार लगभग 40% खाद्यान खराब होने के कारण उपभोग के योग्य नहीं बचता। इसका मुख्य कारण अनुचित भण्डारण तथा परिवहन की असुविधा है।

वास्तविकता में कटाई उपरांत होने वाले नुकसान का सीधा अर्थ है छोटे किसानों की कड़ी मेहनत का बर्बाद होना साथ ही इसके कारण भोज्य पदार्थों की कीमतों में भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार कटाई उपरांत नुकसान दो तरफा चोट पहुँचाता है तथा इसके कारण अन्य संसाधन (जो कि फसल/खाद्यान की उपज में लगते हैं) का भी नुकसान होता है। वर्तमान में विश्व में इतना भोजन का उत्पादन हो रहा है कि हम लगभग विश्व की दुगनी जनसंख्या को भोजन खिला सकें। किन्तु भोजन के नुकसान की वजह से करोड़ों लोग कुपोषित रह जाते हैं। भारत में, वर्तमान में उचित मात्रा में भोजन उपलब्ध है किन्तु अभी भी कई गरीब लोगों की पहुँच से दूर है। यदि इन भोज्य पदार्थों को ग्रामीण स्तर पर उचित प्रस्संकृत किया जाये तो यह खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को प्राप्त करने में मददगार साबित होगा।

कटाई उपरान्त तकनीक को प्रयोग करने से न केवल कटाई उपरांत नुकसान को रोका जा सकता है अपितु जरूरतमंदों की आय/आमदनी का स्त्रोत तथा भूखे लोगों को कम कीमत पर भोजन भी उपलब्ध करवा सकता है।

[1]सह–आचार्या (गृहविज्ञान) केरियर पॉइन्ट विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
[2]गृह वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, डूंगरपुर (राज.)

खराब होने योग्य (Perishables) : ये खाद्यान कमरे के तापमान में एक–दो दिन से ज्यादा नहीं रखे जा सकते जैसे माँस, दूध तथा दूध से बने पदार्थ आदि।

अर्द्ध–खराब होने योग्य (Semi Perishables): इन खाद्यानों को एक–दो सप्ताह या ज्यादा से ज्यादा एक महीने तक रखा जा सकता है जैसे अरबी, आलू, प्याज आदि।

गैर–खराब होने योग्य (Non Perishables): ऐसा नहीं है कि इस समूह के खाद्यान खराब नहीं होते। यह खाद्यान कुछ महीनों तक रखे जा सकते हैं जैसे दालें, अनाज, तेल, मसाले आदि।

2. कटाई उपरान्त घाटे को प्रभावित करने वाले मुख्य घटक

कई घटक फसल की कटाई के बाद नुकसान को प्रभावित करते हैं। जैसे कि कटाई समय ही फसल में कोई बीमारी या जीवाणु का उपस्थित होना, उच्च चयापचय गतिविधियाँ, तापमान, सापेक्ष आर्द्रता आदि। इससे बचने के लिए यह अति आवश्यक है कि जिस भी फसल का भण्डारण करना है उसका सही प्रकार से परिक्षण किया जाए तथा उच्च ग्रेड वाले खाद्यान्नों का भण्डारण किया जाये तथा निम्न ग्रेड वालों को पहले ही खपत में लाया जाये।

कीट और घुन द्वारा नष्ट खाद्य, गैर संक्रामक रोग रोगजनकों और रोटस (Rots) के कारण होने वाली बीमारियों आदि कटाई के बाद होने वाले नुकसान के प्रमुख कारण हैं। यदि भण्डारण के समय उचित तापमान, सापेक्ष आर्द्रता, ऑक्सीजन का संतुलन आदि को संतुलित रखा जाये तो कटाई उपरांत होने वाले नुकासानों को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

माइक्रोबियल कार्यवाही: सभी खाद्यानों में कवक, बैक्टीरिया, खमीर आदि सुक्ष्मदर्शी जीवों से अत्यधिक मात्रा में नुकसान होता है। सभी खाद्यानों में पोषक तत्व होते हैं, सूक्ष्मदर्शी जीव इन्हीं पोषक तत्वों को प्रयोग में लाकर अपनी वृद्धि तथा विकास करते हैं। फलों, ओस सब्जियों के नुकसान में मुख्य रूप से कवक और बैक्टीरिया जिम्मेदार होते हैं। प्राकृतिक रूप से फलों व सब्जियों में लगभग 80–90 प्रतिशत तक नमी होती है जोकि इन सूक्ष्मदर्शी के प्रजनन तथा विकास के अवसर को बढ़ा देती है।

पर्यावर्णीय कारक: पर्यावर्णीय कारकों, तापमान, आद्रता, रचना और नियंत्रित भण्डारण आदि में गैसों के अनुपात के बीच एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। सभी सूक्ष्मदर्शी जीवों के प्रजनन के लिए अनुकूल तापमान, आद्रता, अम्ल–क्षार माध्यम आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नियंत्रित पर्यावरण के माध्यम से कटाई उपरांत नुकासान को रोका जा सकता है। खाद्य पदार्थों में व्याप्त एन्जाइमसःखाद्य पदार्थों में विभिन्न प्रकार के एन्जाइमस उपस्थित होते हैं यह वास्तव में रसायन होते हैं जो सभी खाद्यों में पाये जाते हैं। एन्जाइमस रसायनिक प्रक्रिया को बढ़ा देते हैं जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के स्वाद, रंग व बनावट/रचना में परिवर्तन आ जाता है। एन्जाइमस प्रोटीन से बने होते है तथा ताप के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। कमरे के तापमान पर यह सक्रिय हो जाते हैं तथा तीव्र गति से खाद्य पदार्थों को नुकसान पहुँचाते हैं, कम तापमान जैसे कि फ्रिज में कम सक्रिय होते हैं।

जीव जन्तुओं तथा चूहों के द्वारा नुकसान: फसल कटाई के उपरांत भण्डारित फसलों को कीड़ों, चूहों, चिड़ियों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। यह जीव जन्तु न केवल खाते हैं अपितु अपने मल मूत्र के द्वारा गंदगी भी फैला देते हैं। और इसी कारण खाद्यान्नों का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि कटाई के बाद फसल का समुचित भण्डारण करें।

कटाई तथा फील्ड हैंडलिंग: फसल की कटाई तथा फील्ड हैंडलिंग के उपयुक्त साधन न अपनाये जाने के कारण भी कभी–कभी नुकसान या फसल हानि पहुँच जाती है। भारत सहित अन्य विकासशील देशों में अधिकाँशतः मैनुअल फल चुन कर ही कटाई होती है।

अन्य: खेत में खड़ी फसल में दाना पड़ते या फल लगते समय कीट अपने अण्डे दानों पर दे देते हैं परिणामस्वरूप भण्डारण के समय इन अण्डों से कीट निकल जाते हैं तथा भण्डारित फसल को नुकसान पहुँचाते हैं।कभी–कभी भण्डारण गृहों में पहले से ही कीट किसी न किसी अवस्था में मौजूद रहते है जो अनुकूल वातावरण मिलते ही क्रियशील होकर अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं। यातायात के साधनों में कमी के कारण भी कटाई उपरांत नुकसान पहुँचता है।

3. कटाई उपरांत नुकसान से बचने की तकनीक:

कटाई उपरांत फसल को निम्नलिखित चरणों से इन्हें सुरक्षित रूप से उपभोक्त तक पहुँचाया जा सकता है।

सफाई एवं छटाई: कटाई के बाद यह अति आवश्यक हो जाता है कि फसल छंटाई की जाये। खराब, क्षतिग्रस्त, कटे–फटे भोज्य पदार्थ में जल्दी ही कीड़े लग जाते हैं। इसलिए यह अति महत्वपूर्ण हो जाता है कि उपजित फसल की सफाई एवं छंटाई की जाये।

रसायनिक उपचार और धमन: रसायनों का प्रयोग कर भण्डारित फसलों को बचाया जा सकता है जैसे कि अनाज में एल्यूमिनियम फॉस्फाइड (सल्फास) का प्रयोग कर उसे कीट से बचा सकते हैं। आलू और प्याज में अंकुरण नियंत्रित करने के लिए वृद्धि नियामकों का इस्तेमाल किया जाता है। रासायनिक उपचार के इस्तेमाल से पहले कई बातों पर विचार कर लेना चाहिए कि रसायन रच्छित कार्य के लिए सक्षम है। उचित मूल्य वाला और वस्तुओं के लिए विषाक्त नहीं होना चाहिए और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसे मानव उपयोग के लिए हानिकारक नहीं होना चाहिए।

भण्डारण: कटाई के बाद खाद्य पदार्थों के अधिक समय तक वितरण और विपणन के लिए उन्हें भण्डारित करने की जरूरत होती है। अलग–अलग फसलों को अलग–अलग प्रकार के तापमान और आद्रता के अंतर्गत भण्डारित किया जाता है जैसे कि फलों व सब्जियों को शीतकक्ष या नियंत्रित वातावरण में भण्डारित करते हैं। अनाज तथा दलहनों को नमी से बचा कर रखा जाता है। कम नमी पर भण्डारित अनाज को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। खाद्यान्न हमारे जीवन के लिए अति आवश्यक है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि कटाई उपरांत नुकसान को कम किया जाये।

खंड–5

कृषि आय अर्जित करने की वैकल्पिक गतिविधियां

अध्याय - 26

स्वयं सहायता समूह–ग्रामीण महिलाओं के लिये एक आशा की किरण

प्रीति ममगई[1], देवेन्द्र तिवारी[2] एवं अवनीत कौर[3]

1. प्रस्तावना
2. स्वयं सहायता समूह का निर्माण
3. स्वंय सहायता समूह को के.वी.के. द्धारा प्रशिक्षण
4. स्वयं सहायता समूह को बैंक द्वारा ऋण

साहस कर अगर रास्ते में कठिनाईयाँ है,
आंसुओं ने भी कभी तकदीरे पलटी हैं,
ठोकर को ठोकर जिसने मारी है,
उसके रास ठोकरें आई हैं।

किसी शायर की इन पंक्तियों को सच करने का साहस दिखाया है तो वो है गाँव भगवानपुरा, तहसील समराला जिला लुधियाना की रहने वाली श्रीमती चरणजीत कौर ने। वह 42 वर्षीय निर्धन परिवार की महिला, अपनी दो बेटियों व एक बेटे के साथ प्रतिदिन मजदूरी करके अपने घर का खर्चा चला रही थीं। घर की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी, घर की स्थिति व अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिये चरणजीत कौर ने खुद का कोई काम करने का मन बनाया, वह गाँव के स्कूल की आँगनवाड़ी की एक अध्यापिका के सम्पर्क में आई जिससे उसे पता चला कि समराला गाँव में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्र है जो कि गाँव के बेरोजगार पुरूषों और महिलाओं को विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण देता है। बेरोजगार ग्रामीण अपना खुद का काम करके रोजगार प्राप्त करके आत्मनिर्भर बन सकते है।

श्रीमती चरणजीत कौर ने कृषि विज्ञान केन्द्र, लुधियाना के विषय वस्तु विशेषज्ञ को अपनी घरेलु स्थिति से अवगत कराया एवं स्वयं का कार्य करने की इच्छा व्यक्त की। विशेषज्ञों ने महिला की बात सुनी और विचार करने के पश्चात् श्रीमती चरणजीत कौर को गाँव की अन्य महिलाओं के साथ मिलकर स्वयं सहायता समूह बनाने की सलाह दी, स्वयं सहायता समूह (एस.एच.जी.) आपस में एकमत रखने वाले समूह है, जो अपनी आय के सुविधाजनक तरीके से बचत करके, समूह के सम्मिलित कोष में शामिल करने और समूह के सदस्यों को उत्पाद एवं उपभोक्ता की जरूरतों को पूरा करने के लिये समूह द्वारा तय ब्याज, अवधि व अन्य शर्तों के आधार पर दिये जाने के लिये आपस में सहमत एवं एकमत होते हैं। श्रीमती चरणजीत कौर ने भी विशेषज्ञों की सलाह को मानते हुए गाँव की 9 महिलाओं को स्वयं सहायता समूह बनाने के लिये तैयार किया और श्री गुरू अर्जुन देव स्वयं सहायता समूह के नाम से समूह बनाया, इस समूह के सभी सदस्यों ने कृषि विज्ञान केन्द्र लुधियाना से

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
[2]सहायक प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा), कृषि विज्ञान केन्द्र, लुधियाना (पंजाब)
[3]सहायक प्राध्यापक (बागवानी), कृषि विज्ञान केन्द्र, लुधियाना (पंजाब)

सिलाई एवं कढ़ाई का प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा समराला के ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स से 60,000 रूपये का ऋण लेकर सिलाई मशीनें व कच्चा माल खरीदा तथा उससे बैग आदि बनाने का काम शुरू किया। शुरूआत में इस समूह ने स्कूल बैग, जूट बैग, पर्स, रजाइयों के गिलाफ, बिस्तर, तकिये और कई घरेलु सजावट की चीजे बनानी शुरू की। इस समूह ने जो सामान तैयार किया था, उसकी गुणवता अच्छी होने के कारण कृषि विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञों ने समूह द्वारा तैयार की गई वस्तुओं के बाजारीकरण के लिये प्रचार–प्रसार कार्यक्रमों में प्रदर्शनियाँ लगानी शुरू करवाई, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र में बीजों की दुकान में भी इस समूह की तैयार की गयी वस्तुओं को बेचने हेतु रखा गया ताकि इस समूह की आमदनी में वद्धि हो सके।

कृषि विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञों ने इस समूह को अन्य कई प्रशिक्षण दिये ताकि यह समूह हर प्रकार के कामों में दक्ष हो जाये, जैसे कि विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने की विधि, शहद की मधुमक्खियों वाले फ्रेम, फ्रेम निकालने के लिये दस्ताने, भिंडी तोडने वाले दस्ताने, छिड़काव के समय पहनने वाले मास्क और कपड़े आदि बनाना। इस समूह द्वारा हर प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने से उनकी आमदनी में काफी वृद्धि हुई। इसे देखते हुए श्रीमती चरणजीत कौर ने सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया से वर्ष 2013 में 3,00,000 रूपये का ऋण लिया, उस राशि से 3–4 अच्छी तकनीक वाली मशीनें खरीदी। इस कर्ज की राशि को ग्रुप ने 10,000 रूपये प्रति माह किश्त दे के साल 2015 के अंत तक ऋण राशि बैंक को चुकता कर दी। श्रीमती चरणजीत कौर की कोशिशों और प्रत्येक सदस्य के द्वारा मन लगाकर मेहनत करने के फलस्वरूप समूह की आमदनी 3,000 रूपये से बढ़कर 7,500 रूपये प्रति माह प्रति सदस्य हो गयी।

सन् 2015 में इस समूह ने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के द्वारा सितम्बर माह में आयोजित किसान मेले में एक दुकान लगाई जिसका नाम पंजाबी रसोई रखा, मेले को देखने आये किसानों के लिये सरसों का साग, मक्की की रोटी और लस्सी का प्रबंध था। इस समूह को 2 दिन में 10,000 रूपये की आमदनी हुई और मेले के अंत में इस दुकान को सबसे उत्तम दुकान का इनाम मेले में प्राप्त हुआ। श्री गुरू अर्जुन देव समूह ने यह प्रोत्साहन पाकर समराला गाँव के विभिन्न कार्यक्रमों में अपने समूह द्वारा निर्मित खाने व अन्य वस्तुओं की दुकानें लगाकर बहुत आमदनी प्राप्त की, इसी दौरान सन् 2016 में ग्रामीण विकास एवं पंचायत विभाग पंजाब ने भी इस समूह को सबसे उत्तम एवं उद्यमी का पुरस्कार देकर इस समूह का गौरव बढ़ाया। श्री गुरू अर्जुन देव स्वयं सहायता समूह ने और नए समूहों को प्रशिक्षण देने का भी काम शुरू कर दिया और उसके लिये श्रीमती चरणजीत कौर 2,000 रूपये प्रति सदस्य शुल्क ले रही हैं। समूह के कुछ सदस्यों ने बैकिंग के नये कोर्स भी कर लिये हैं और आशा करते हैं कि यह समूह आगे भी उन्नति की राह पर चलता रहे और श्रीमती चरणजीत कौर जैसी कई महिलायें अपने परिवार में और देश के कई अन्य घरों में उजाले की किरण बनकर जीवन में खुशहाली ला सकें।

अध्याय – 27

स्वयं सहायता समूहः महिला सशक्तिकरण हेतु बढ़ता कदम

पूनम कालश[1], सविता सिंघल[2], ए.के. मिश्रा[3] एवं एस.के. शर्मा[4]

1. प्रस्तावना
2. स्वयं सहायता समूह के सिद्धान्त एवं उद्देश्य
3. स्वयं सहायता समूह की कार्यकारिणी समिति
4. स्वयं सहायता समूह का व्यवसायिक क्षेत्र
5. स्वयं सहायता समूह को बैंकों द्वारा ऋण

स्वयं सहायता समूह बनाओ, बचत करो, काम करो।
आर्थिक समृद्धि और आत्म निर्भरता को प्राप्त करो।।

1. प्रस्तावना

भारतीय कृषि के मानसून पर निर्भर होने के कारण किसान साल के 6 महीने ही कृषि क्रियाओं में संलग्न रह पाता हैं। शेष 6 महीने उसके पास आय का कोई स्थायी स्रोत नही होता हैं। आकस्मिक जरूरतों को पूरा करने के लिए ऋण लेना निर्धन कृषक की मजबूरी बन जाती हैं। यद्यपि बैंक शाखाओं का व्यापक नेटवर्क देश भर में फैला हैं, लेकिन पर्याप्त जानकारी के अभाव में ऋण ग्रामीण निर्धन की पहुँच से दूर हैं। ग्रामीण निर्धन महिलाओं की इस समस्या के समाधान तथा ग्रामीण विकास की दिशा में स्वयं सहायता समूह का गठन एक सशक्त प्रयास हैं। इसके द्वारा समूह के सदस्यों को धनोपार्जन हेतु लघु/कुटीर उद्योगों को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता हैं। स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम वर्षो तक आधारभूत स्तर पर गरीबों के लिए किए गए प्रयोगों का परिणाम हैं। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक देश के ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक विकास के लिए ऋण जैसे महत्वपूर्ण अवयव के समुचित और लाभकारी उपयोग पर जोर देता हैं। इस दिशा में स्वयं सहायता समूह योजना को एक नये प्रयोग के रूप में स्वीकार किया गया हैं। इस योजना के द्वारा ग्रामीण निर्धनों के समूहों को, अपनी छोटी–छोटी जरूरतों की पूर्ति के लिए उनके द्वारा अर्जित बचत के आधार पर बैंकों द्वारा ऋण उपलब्ध करवाने का कार्य किया जाता हैं। स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्र में विशेषकर, ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक उत्थान में काफी सार्थक सिद्ध हुए हैं।

स्वयं सहायता समूह क्या है ?

एक ऐसा समूह जिसके सदस्य अपने समूह के सदस्यों की समस्याओं का समाधान स्वयं ही करने को तत्पर रहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य समूह को इतना सक्षम बनाना हैं कि समूह सदस्य अपनी जरूरतों व समस्याओं के लिए दूसरों पर निर्भर न रहें।

स्वयं सहायता समूह 10–20 निर्धन ग्रामीणों का ऐसा समूह हैं जो सदस्यों की सहमति से तय की गई छोटी राशियों की बचत के लिए स्वेच्छा से बनाया जाता हैं। समूह का गठन उनकी समस्याओं को सुलझाने, धनोपार्जन हेतु उचित उघोग धंधों को अपनाने तथा राशि को ऋण रूप में उपयोग करने के लिए किया जाता हैं। समूह अपने सदस्यों को उनकी आकस्मिक जरूरतों को पूरा करने के लिए बचत राशि में से ऋण प्रदान करता हैं।

[1–4]कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर

2. समूह का सिद्धान्त एवं उद्‌देश्य

संगठन में शक्ति है। इसी संकल्प को ध्यान में रखते हुए समूह के सदस्य मिलकर किसी भी समस्या का समाधान कर सकते है। स्वयं सहायता के सिद्धान्त पर इसका संचालन होता है। समूह के मूल उद्धेश्य निम्न प्रकार हो सकते हैं–

1. परस्पर सहभागिता व सहयोग से समूह के सदस्यों की गरीबी दूर करने के प्रयास करना ।
2. परस्पर सहभागिता में मितव्ययता की भावना पैदा कर नियमित रूप से एक निश्चित राशि प्रतिमाह बचत करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. समूह के सदस्यों द्वारा बचत की गई राशि से साझा कोष का निर्माण कराना।
4. समूह के सदस्यों को आय उपार्जन गतिविधि चलाने के लिए और अन्य घरेलू आवश्यकताओं के लिए जरूरत के अनुसार साझा कोष में से साख सुविधा उपलब्ध करवाना।
5. बचत व साख समूह के रूप में काम करते हुए समूह के सदस्यों को बैंकिंग जैसी जटिल व्यवसायिक प्रक्रिया से परिचित कराना।
6. समूह के सदस्यों में आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास की भावना पैदा करना ।
7. समूह के सदस्यों को समाज–परिवार में व्याप्त सामाजिक बुराइयों (बालविवाह, विधवाविवाह, मृत्युभोज, दहेज प्रथा, मदिरापान, अशिक्षा आदि) के प्रति जागरूक करना।
8. समूह के निरक्षर सदस्यों को साक्षर बनाना।
9. सरकार द्वारा गरीबों के हितार्थ व विशेषकर महिलाओं के हितार्थ चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं पर चर्चा कर समूह के सदस्यों को जानकारी उपलब्ध कराना और पात्र सदस्यों को इन योजनाओं का लाभ दिलाना।

3. कार्यकारिणी समिति

1. समूह की एक तीन सदस्यीय कार्यकारिणी समिति होगी जिसमें अध्यक्ष, सचिव और कोषाध्यक्ष होंगे।
2. कार्यकारिणी समिति के इन तीन पदाधिकारियों को चुनाव समूह की प्रथम बैठक में ही, यथा संभव सर्वसम्मति से अन्यथा लोकतांत्रिक प्रणाली द्वारा बहुमत से निर्वाचित किया जायेगा।
3. यह कार्यकारिणी अधिकतम दो वर्ष तक किन्तु केवल तब तक काम करती रहेगी जब तक कि समूह का विश्वास इसे प्राप्त है। प्रत्येक दो वर्ष में कार्यकारिणी का पुनः निर्वाचन करना होगा।
4. अविश्वास प्रस्ताव की स्थिति में किसी भी कार्यकारणी के सदस्य को अथवा सम्पूर्ण कार्यकारिणी को समूह की बैठक में पारित बहुमत के प्रस्ताव के आधार पर हटाया जा सकेगा और पूरी कार्यकारिणी अथवा किसी एक सदस्य का पुनः निर्वाचन किया जा सकेगा।
5. समूह के नाम से जो बैंक खाता खोला जायेगा उसका संचालन कार्यकारिणी के तीन में से दो सदस्यों द्वारा किया जायेगा किन्तु अध्यक्ष के हस्ताक्षर अनिवार्य होगें।

आदर्श समूह-

1. समस्त सदस्य समान सामाजिक – आर्थिक पृष्ठभूमि वाले हों।
2. एक परिवार से केवल एक ही व्यक्ति समूह का सदस्य हो।
3. सभी सदस्यों की एक समान एवं नियमित बचत।
4. निश्चित तिथि, समय एवं स्थान पर नियमित बैठक।
5. सर्वसम्मति से सामूहिक निर्णय।
6. नियमों को बनाना एवं पालन करना।
7. बही–खाता, हिसाब–किताब, लिखना और पारदर्शिता रखना।
8. बचत एवं ऋण दोनों ही समूह की बैठक में तय करना।
9. बैंक में खाता खोलना, जरूरत होने पर ऋण लेना ।
10. नियम का उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान।
11. बचत, आंतरिक, ऋण, बैंक ऋण, छोटे–छोटे धंधों में पैसा लगाना तथा उत्पादक कार्यों में पैसा लगाकर विकास करना।
12. स्वयं, परिवार एवं ग्राम विकास के सिद्धांत का पालन करना।
13. गाँव की स्थानीय समस्याओं का निराकरण मिल जुलकर करना।

प्रायः स्वयं सहायता समूह स्थायी नहीं होते, इसलिए समूह के स्थायित्व के लिए उसे किसी उत्पादक कार्य से जोड़ना चाहिए। इससे समूह के सदस्यों की आय में वृद्धि होगी साथ ही गाँव के अन्य लोगों को रोजगार भी मिलेगा। किसी भी उद्यम को शुरू करने के लिए तकनीकी ज्ञान व कौशल आदि की आवश्यकता होती हैं। किन्तु ग्रामीणों में जानकारी का अभाव होने के कारण वे अपने कदम बढ़ाने से पहले ही पीछे हटा लेते हैं। देश के प्रत्येक जिले में स्थापित कृषि विज्ञान केन्द्र ग्रामीणों को तकनीकी ज्ञान मुहैया कराने तथा धनोपार्जन हेतु स्वरोजगार अपनाने के लिए सदैव प्रेरित करते रहते हैं। ऐसे में कृषि आधारित उद्योग आय–अर्जन का बहुत अच्छा विकल्प हो सकता हैं।

4. व्यवसायिक क्षेत्र

1. कृषि आधारित

- सब्जियों का निर्जलीकरण व परिरक्षण
- फल व सब्जी उगाना/औषधीय पौधे लगाना
- मशरूम की खेती
- पौध (नर्सरी) करना
- दुग्ध डेयरी उत्पादन
- केंचुए की खाद तैयार करना आदि।
- मसाले पीसना, दालें बीनना
- बकरी एवं मुर्गा पालन

2. गैर कृषि आधारित

- पापड़ व बड़िया (मंगोड़ी) बनाना
- साबुन व वाशिंग पाऊडर बनाना
- अचार, मुरब्बा, जैम, जैली आदि बनाना
- दरी व चटाई बनाना
- बूंदी–बंधेज
- चॉक बनाना
- मोमबत्ती बनाना
- हस्तकला उद्योग
- कढ़ाई–सिलाई, बुनाई व क्रोशिया

5. समूह को बैंक ऋण सुविधा

- ऋण हमेशा समूह के नाम से स्वीकृत एवं जारी किया जाता हैं (व्यक्तिगत सदस्यों के नाम से नही)।
- बैंकों द्वारा स्वयं सहायता समूह के लिए स्वीकृत ऋण का उपयोग समूह के सदस्यों की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, काम–धंधा शुरू करने के लिए तथा जरूरी वस्तुएं खरीदने के लिए किया जा सकता हैं। सभी कार्य समूह द्वारा बैठक में लिए गए निर्णय पर निर्भर करते हैं।
- ऋण की अदायगी के लिए समूह, सामूहिक रूप से जिम्मेदार होता हैं।
- सामान्यतः बैंक द्वारा, समूह सामूहिक बचत राशि के बदले 1 से 4 गुना तक ऋण दिया जा सकता हैं।

सफलता की कहानी–

कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर के गृह विज्ञान संकाय द्वारा झालामण्ड की महिलाओं के सशक्तिकरण एवं आय उपार्जन हेतु 3 स्वयं सहायता समूह (जय दुर्गा माँ सहायता समूह, जय संतोषी माँ एवं विजय लक्ष्मी स्वयं सहायता समूह) का गठन वर्ष 2014 में किया गया। प्रत्येक समूह में 10 महिलाओं को रखा गया। समूह की महिलाओं को कृषि विज्ञान केन्द्र में समय–समय पर विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण (आय उपार्जन के साधन, परिरक्षण एवं मूल्य संवर्धन) प्रदान कर तकनीकी सहायता दी गई जिससे कि उनके आय उपार्जन की गतिविधियां सुचारू रूप से चल सके। जिसके अंतर्गत 30 महिला अपनी भागीदारी निभाते हुए बचत के साथ साथ आय उपार्जन हेतु विभिन्न गतिविधियाँ मुख्यतया पापड़, खिचियें, बड़ी और हस्तनिर्मित वस्तुएँ बनाकर स्थानीय बाजार, प्रदर्शनियों एवं मेलों में बेच कर 2000 रू. प्रति महिला अतिरिक्त आय अर्जन करके आत्मनिर्भर तथा साथ ही साथ अपने परिवार के पोषक स्तर को बढ़ा रही है।

अध्याय – 28

सोयाबीनः उत्तम प्रोटीन प्राप्ति का सस्ता स्त्रोत

श्रीमती सुमित्रा मीणा[1] एवं एस.एन. औझा[2]

1. प्रस्तावना
2. सोयाबीन का पौष्टिक महत्व
3. सोयाबीन के स्वास्थ्यवर्धक लाभ
4. सोयाबीन के उपयोग में सावधानी
5. सोयाबीन के उपयोग के तरीके

1. प्रस्तावना

सोयाबीन पोषक तत्वों से परिपूर्ण पौष्टिक, सस्ता एवं स्वास्थ्यवर्द्धक खाद्य प्रदार्थ है। जो कि भोजन के दाल समूह के अन्तर्गत आता है। पौष्टिकता से भरपूर सोयाबीन का सर्वाधिक उत्पादन मध्यप्रदेश में होता है। देश के अन्य राज्यों में भी इसका उत्पादन दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। परन्तु आज भी सोयाबीन भोजन में अपना विशेष स्थान नहीं बना पाया है। सोयाबीन उत्पादित करने वाले कृषक परिवार भी इसके उपयोग से अनजान है। उत्पादन के पश्चात् कृषक सारा सोयाबीन बाजार में विक्रय कर देते है। सोयाबीन प्रसंस्करण तकनीक से खाद्य पदार्थ बनाये जा सकते हैं, जिनका हम अपने घर में उपयोग करने के साथ–साथ अपना घरेलू उद्योग भी प्रारम्भ कर सकते हैं। यदि सोयाबीन को दैनिक आहार में शामिल कर लिया जाए तो न केवल दैनिक आवश्यक पौषक तत्वों की पूर्ति होगी बल्कि देश में व्याप्त कुपोषण जैसी गंभीर समस्या से निजात पाने में भी मदद मिलेगी।

2. सोयाबीन का पौष्टिक महत्व

सोयाबीन में प्रोटीन 40–43 प्रतिशत पाया जाता है। जिसमें सभी प्रकार के आवश्यक अमीनो अम्ल संतुलित मात्रा में पाए जाते हैं। सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा मूंगफली, मांस व मछली से दुगुनी, अण्डों से तिगुनी तथा दूध की तुलना में दस गुनी होती है। साथ ही प्रोटीन प्राप्ति का यह एक उत्कृष्ट सस्ता स्त्रोत भी है। प्रोटीन के अलावा इसमें विटामिन एवं खनिज लवण भी भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। यदि हम सोयाबीन में पाए जाने वाले पोषक तत्वों, खनिज लवणों व विटामिन्स का विश्लेषण करें तो प्रति 100 ग्राम सोयाबीन में निम्नानुसार मात्रा पायी जाती है।

3. सोयाबीन के स्वास्थ्यवर्धक लाभः-

1. प्रोटीन का उत्तम स्त्रोत होने की वजह से बढ़ते बच्चों, गर्भवती महिलाओं व दूध पिलाने वाली माताओं के लिए प्रोटीन प्राप्ति के उतम स्त्रोत के रूप में लाभदायक।
2. सोयाबीन में पाई जाने वाली प्रोटीन से हमारे शरीर के रक्त में हानिकारक कोलेस्ट्रोल की

[1]गृह वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र डूंगरपुर
2

तालिका : 1 सोयाबीन में निम्नानुसार पोषक तत्वों की मात्रा पायी जाती है।

प्रोटीन	43.2 ग्राम	केरोटीन	426 माइक्रोग्राम
कार्बोहाइड्रेट	20.9 ग्राम	विटामिन बी–1	0.73 मिलीग्राम
वसा	14.5 ग्राम	विटामिन बी–2	0.39 मिलीग्राम
कैलोरी	432 किलो कैलोरी	नायसिन	3.2 मिलीग्राम
रेशा	3.7 ग्राम	फॉलिक एसिड	100 माइक्रोग्राम
आयरन	10.4 मिलीग्राम		
कैल्शियम	240 मिलीग्राम		
फॉस्फोरस	690 मिलीग्राम		

मात्रा कम होती है, जिससे ह्दय रोग की संभावनाएं कम होती है।

3. सोयाबीन मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक होता है, क्योंकि यह रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

4. सोयाबीन हड्डियों को मजबूती प्रदान करने एवं उनके लचीलेपन को बनाए रखने में सहायक होता है, क्योंकि इसमें हड्डियों के लिए जरूरी तत्व कैल्सियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है।

5. सोयाबीन के वसा में ओमेगा–6–एवं ओमेगा 3 वसीय अम्ल संतुलित एवं अधिक मात्रा में पाए जाते है। जो कि ह्दय को स्वस्थ रखने में लाभदायक होते हैं।

6. सोयाबीन में आयरन की मात्रा अधिक होने के कारण यह एनीमिया (खून की कमी) से बचाव करता है।

7. सोयाबीन से बने पदार्थों में लैक्टोज नामक शर्करा नहीं होती है। इसलिए इससे बने पदार्थ (सोया मिल्क, सोयादही, सोयापनीर, इत्यादि) उन बच्चों /मनुष्यों जो कि दूध या दूध से बने खाद्य पदार्थ नहीं खा सकते हैं या पेट में गैस की समस्या से पीड़ित रहते हैं, के लिए बहुत उपयोगी है। यह समस्या उन बच्चों/मनुष्यों में होती है। जिनकी पाचन में लैक्टोज एन्जाइम की कमी होती है।

8. सोयाबीन में पाए जाने वाले आइलोफ्लोविन रसायन के कारण, महिलाओं से सम्बधित रोग, स्तन व प्रोस्टेट कैंसर से बचाव करने में सहायक है।

9. सोयाबीन रक्तचाप एवं कॉलेस्ट्रॉल को नियन्त्रित रखने में सहायक होता है।

10. रजोनिवृति के पश्चात् अधिंकाश महिलाओं में नाइट्रोजन की कमी के कारण हड्डियों में कैल्सियम की कमी आ जाती है। जिसमें हड्डियों के कमजोर होने से जाने से टूटने की

संभावनाएं बढ़ जाती हैं। सोयाबीन के खाद्य पदार्थों का सेवन से हड्डियों को मजबूती मिलती है।

4. सोयाबीन के उपयोग में सावधानी

सोयाबीन में पाए जाने वाले विभिन्न पौष्टिक तत्वों के साथ–साथ इसमें क्युनिट्ज ट्रिप्सिन इनहिविटर नामक तत्व भी पाया जाता है, जो कि व्यक्ति के शरीर में प्रोटीन के पाचन में मुश्किलें पैदा करता है, तथा नाड़ी व मांसपेशियों संबधित विकार उत्पन्न कर सकते हैं। अतः सोयाबीन को भोजन में शामिल करने से पहले ट्रिप्सिन इनटिबिटर की विषाक्तता को खत्म करने के लिए सोयाबीन को 10 से 12 घंटे पानी में भीगोकर या 20 मिनिट तक करीब 100 डिग्री सैल्सियस तापक्रम पर उबालने के बाद ही आहार के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

5. सोयाबीन के उपयोग के तरीके

प्रोटीन की उपब्लधता को देखते हुए सोयाबीन का हमारे दैनिक जीवन के पौषक आहार में विशेष योगदान है। भोजन में इसका उपयोग कई तरीके से किया जा सकता है। जैसे–सोयाबीन का आटा, सोयाबीन का दूध, दही, पनीर, दाल, सूजी, पापड़, नमकीन, बड़ी इत्यादि। सोयाबीन की दैनिक आहार में शामिल करने का सबसे आसान तरीका हैः– प्रसंस्करित सोया मिश्रित आटे का उपयोग। प्रंसस्करित सोयाबीन को उचित अनुपात में गेहूँ के साथ मिश्रित कर आटा तैयार कर के इस मिश्रित आटे का उपयोग रोटी, पराठे, पूड़ियां आदि बनाने में किया जा सकता है।

सोया-प्रसंस्कृत आटा बनाने की विधि

सामग्रीः–

1. सोयाबीन–1 किलो
2. गेहूं– 10 किलो

विधिः–

1. सोयाबीन को 20 मिनट तक करीब 100 डिग्री तापक्रम पर उबालें या 10 से 12 घंटे तक पानी में भिगोएं (ताकि ट्रिप्सिन इनहिबिटर की विषाक्तता को समाप्त किया जा सके)
2. 2–3 दिन तक धूप में सुखायें।
3. सुखायें हुए सोयाबीन को अब गेहूँ के साथ पिसाएं व उपयोग में लेवें।

नोटः– स्वाद बढ़ाने के लिए सोयाबीन को सुखाने के पश्चात् हल्का सुनहरा होने तक भून कर उपयोग में ले सकते हैं।

खंड–6

कृषि सलाहकारी एवं कल्याणकारी योजनाएं

अध्याय – 29

युवाओं को कृषि की ओर आकर्षित एवं बनाए रखने के लिए अभिनव पहल

एम.एस. मीना[1], आर.बी. काले[2], एस.के. सिंह[3] एवं हंसराज सैन[4]

1. परिचय
2. परियोजना संचालन कार्य विधि
3. कृषि विज्ञान केन्द्रों का चयन
4. युवाओं का उद्यम विकास के लिए चयन
5. परियोजना संचालन एवं प्रबंधन
6. कृषि विज्ञान केन्द्रों पर अनुबंधित व्यक्तियों द्वारा परियोजना संचालन में मदद
7. कोष संचालन तंत्र
8. मूल्यांकन एवं नियंत्रण

1. परिचय

भारत में युवा, कृषि को सार्थक रूप से बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। राष्ट्रीय युवा नीति के अनुसार 15–35 वर्ष के मध्य का व्यक्ति युवा होता है। भारत में 2016 के अंत तक करीब 57 करोड़ युवाओं की जनसंख्या थी। वर्तमान में कुल जनसंख्या का 35 प्रतिशत, 15–35 वर्ष के आयु वर्ग का है, जिसमें से 75 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते है। ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं में कृषि के प्रति लगाव एवं आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए एवं कृषि को अधिक लाभप्रद बनाने की आवश्यकता है। कृषि में युवाओं को बनाए रखना एवं कृषि को अधिक लाभप्रद बनाना बड़ा ही चुनौतीपूर्ण कार्य है।

युवाओं का गाँवों से शहरों की ओर पलायन का प्रतिशत निरन्तर बढ़ रहा है। शहरों एवं गाँवों के मध्य आधारभूत सुविधाओं जैसे संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि का अन्तर युवाओं को गाँवों से शहरों की ओर आकर्षित करता है। दूसरी ओर लघु कृषि भूमि भी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा के लिए चुनौती बन गई है। इसलिए यह महसूस किया गया कि एक ऐसी रूपरेखा (मॉडल) बनाई जाए जो कि सामान्य ग्रामीण एवं कृषक युवाओं के विकास के लिए हो। खाद्य सुरक्षा एवं कृषि के विकास के लिए ग्रामीण युवाओं की महत्ता को महसूस करते हुए भारतीय

[1]प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) भा.कृ.अनु.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर–342 005
[2]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) भा.कृ.अनु.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर–342 005
[3]निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर–342 005
[4]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, भा.कृ.अनु.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर–342 005

कृषि अनुसंधान परिषद् ने ''अट्रेक्टिंग एण्ड रिट्रेनिंग यूथ इन एग्रीक्लचर'' परियोजना का आरंभ किया। देश के कुल 25 केन्द्रों पर इस योजना को लागू करने के लिए 100 करोड़ राशि आवंटित की गई है। इस परियोजना के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं।

- चयनित जिलों में युवाओं को ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एवं इसकी सहायक गतिविधियों से स्थायी आय एवं रोजगार के साधन उपलब्ध करवाना।
- युवाओं के समूह द्वारा पूंजी निर्माण से रोजगारन्मुखी गतिविधियों जैसे प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, विपणन आदि का प्रारम्भ करना।
- युवाओं के विकास के लिए विभिन्न संस्थानों एवं अन्य हिस्सेदारों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना, जिससे युवा उपलब्ध विभिन्न अवसरों एवं योजनाओं का लाभ उठा सके जिससे उसका विकास हो सके।

2. परियोजना संचालन कार्यविधि

इस योजना को 25 जिलों में संबंधित जिले के कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों की तकनीकी मदद से लागू किया जा रहा है (प्रत्येक राज्य में एक जिले में)। कृषि विज्ञान केन्द्रों में एक या दो उद्यम विकास इकाईयों की स्थापना की जा रही है। जो ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण के लिए होगी। इसके साथ ही कृषि विज्ञान केन्द्रों के द्वारा युवाओं को उनके खेत पर ही इस तरह की इकाई स्थापित करने में मदद करेगी।

3. कृषि विज्ञान केन्द्रों का चयन

प्रत्येक राज्य के एक कृषि विज्ञान केन्द्र का चयन संबधित कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थानों द्वारा इस योजना के लिए विचार टिप्पणी लिखने एवं योजना प्रस्ताव कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान के माध्यम से कृषि प्रसार विभाग, नई दिल्ली को भेजने के लिए नामित किया गया। योजना प्रस्ताव कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा प्रेषित किया गया। इसके बाद योजना संविक्षा समिति का गठन भा.कृ.अनु.प. द्वारा किया गया जो योजना के लिए कोष की अनुशंसा करेगी। कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा प्राप्त योजना प्रस्ताव की प्रारंभिक संविक्षा के बाद चयनित कृषि विज्ञान केन्द्रों को संशोधित योजना प्रस्ताव में गतिविधियों के अनुसार कोष की आवश्यकता, उत्पाद आदि पर दस पृष्ठों के भीतर मूल्यांकन पत्र के लिए गया। योजना को अंतिम रूप देते समय निम्न बातों का ध्यान रखा गयाः–

- स्पष्टता एवं तकनीकी कार्यक्रमों की संबंद्धता ।
- प्रस्तावित गतिविधियों का आर्थिक विश्लेषण।
- प्रत्येक उद्यमी के विकास के लिए बाजार संपर्क।
- योजना के परिणामों को गुणवत्ता एवं मात्रा के रूप में आधार मूल्यों के संबंध में प्रस्तुत करना।

4. युवाओं का उद्यम विकास के लिए चयन

प्रत्येक कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा 18 से 35 वर्ष के बीच की आयु वर्ग के 200 युवाओं का चयन किया गया। युवाओं का चयन लिंग एवं सामाजिक स्थिति के आधार पर किया गया। कार्यकारी कृषि

विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रत्येक युवा की क्षमता का मूल्यांकन किया गया ताकि उसके अनुसार उसके लिए कृषि उपक्रम का पता लगाया जा सके। कृषि विज्ञान केन्द्र के स्तर पर जिला समिति का गठन आर्या योजना के लिए किया जायेगा। साथ ही वह समिति युवाओं के लिए आधारभूत उद्यमों के लिए चयन में सलाह देगी। उद्यम विकास क्षमता के साथ ही उद्यम इकाई के अनुसार उसे प्रशिक्षित भी किया जायेगा तथा कोष एवं बाजार की उपलब्धता के अनुसार जिले में ही उद्यम इकाई की स्थापना की जायेगी। प्रमुख उद्यम गतिविधियाँ निम्न है।

- मधुमक्खी पालन
- मशरूम उत्पादन
- बीज प्रसंस्करण
- मृदा परीक्षण
- मुर्गी पालन
- डेयरी
- बकरी पालन
- मछली पालन
- वर्मी कम्पोस्ट आदि

इन सभी आर्थिक गतिविधियों का गाँवों में संचालन होने से युवा कृषि की ओर आकर्षित होंगे और ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुधरेगी। युवाओं के प्रशिक्षण से उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होगी, जिससे युवा कृषि को पेशे के रूप में करने के लिए आकर्षित होंगे। इससे रोजगार के क्षेत्र में वृद्धि होगी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि गतिविधियां बढ़ेगी। प्रशिक्षित युवा समूह अनुकरणीय व्यक्तियों के रूप में कार्य करेंगे तथा वे कृषि आधारित गतिविधियों के साथ अन्य युवाओं एवं किसानों को प्रशिक्षण देंगे।

5. परियोजना संचालन एवं प्रबंधन

आर्या परियोजना का संचालन विभिन्न समितियों एवं भा.कृ.अनु.प. के अनुमोदन पर किया जा रहा है। जिसमें एक सर्वोच्च समिति, एक परिचालन समिति, क्षेत्रीय समिति और जिला समिति आर्या योजना के प्रबन्धन एवं प्रभावी संचालन के लिए होगी। भा.कृ.अनु.प. में उप महानिदेशक (कृषि प्रसार) इस योजना का प्रबंध करेंगे तथा योजना के प्रभावी संचालन के लिए दिशा–निर्देश भी देंगे। परियोजना कृषि प्रसार विभाग द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के लिए सहायक महानिदेशक (कृषि प्रसार), प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), कृषि प्रसार विभाग, भा.कृ. अनु.प. मुख्यालय से प्रधान अधिकारी हैं। कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, चयनित कृषि विज्ञान केन्द्रों को क्षेत्रीय स्तर पर संचालन में मदद कर रहे हैं।

6. कृषि विज्ञान केन्द्र स्तर पर अनुबंधित व्यक्तियों द्वारा परियोजना संचालन में मदद

कृषि विज्ञान केन्द्रों पर आर्या परियोजना के संचालन के लिए वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख को एक योजना सलाहकार, एक योजना सहायक एवं एक प्रक्षेत्र सहायक द्वारा अनुबंधित आधार पर भा. कृ.अनु.प. के नियमों के तहत मदद की जा रही है। योजना सलाहकार वह व्यक्ति होगा, जिसे इस प्रकार की योजना के संचालन में अनुभव होगा। योजना सहायक की योग्यता कृषि में स्तानकोत्तर या पी.एच.डी. होगी एवं प्रक्षेत्र सहायक की योग्यता कृषि में स्नातक की होगी।

7. कोष संचालन तंत्र

आर्या परियोजना के क्रियान्वयन के लिए ''राष्ट्रीय कृषि नवाचार कोष'' जो कि 12 वीं पंचवर्षीय योजना में अनुमोदित की गई है। वित्त निर्धारण का आधार उद्देश्य, उद्यमों की गतिविधियों के आधार पर होगा। जो कि संबंधित कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा अनुमोदित की जायेगी। कृषि प्रसार विभाग द्वारा इस योजना को अधिसूचित करके अटारी को वित्त की स्वीकृति देगा तथा अटारी, कृषि विज्ञान केन्द्रों को वित्त का वितरण करेगा। स्वीकृत योजना का चयनित कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा संचालन किया जायेगा।

भा.कृ.अनु.प. के अंकेक्षण नियमों का पालन किया जाएगा। आर्या योजना के अन्तर्गत, संचालन लागत से युवा किसानों को बीज, खाद, छोटे उपकरण आदि प्रदान किये जायेंगे। विभिन्न कारकों के आधार पर जैसे–मौसम, या समूह आदि के आधार पर प्रत्येक उद्यम को वित्त दिया जायेगा। यह बेरोजगार युवाओं को अन्य उद्यमों जैसे द्वितीयक और उससे संबंधित उद्यमों में अतिरिक्त उपलब्धि प्रदान करेगा।

8. मूल्यांकन एवं नियंत्रण

समवर्ती निगरानी, मूल्यांकन और मध्य–आवर्ती सुधार आदि योजना क्रियान्वयन के अभिन्न अंग के रूप में योजना में शासन एवं प्रशासन में निरूपित किये जायेंगे।

अध्याय - 30

किसान प्रथम योजना

ए. श्रीनिवास[1] एवं आर.बी.काले[2]

1. प्रस्तावना
2. किसान प्रथम योजना क्यों
3. लक्ष्य एवं उद्देश्य
4. मुख्य घटक
 4.1 किसान-वैज्ञानिक वार्तालाप को बढ़ाना
 4.2 प्रौद्योगिकी एककीकरण, उपयोग एवं प्रतिक्रिया
 4.3 भागीदारी निर्माण
 4.4 ज्ञान सामग्री संग्रह
5. हितधारकों की भूमिका
 5.1 किसान
 5.2 अनुसंधानकर्त्ता
 5.3 प्रसार कार्यकर्त्ता
6. लाभ
 6.1 किसान एवं ग्रामीणों को
 6.2 अनुसंधानकर्त्ताओं को
 6.3 प्रसार कार्यकर्त्ताओं को

1. प्रस्तावना

किसान प्रथम योजना, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (भा.कृ.अनु.प.) की एक अभिनव पहल है जिसमें उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने से परे, छोटे किसानों, किसान समुदाय की विभिन्न जोखिमों और जटिलताओं को कम करना तथा किसान–वैज्ञानिक वार्तालाप को बढ़ाने पर जोर दिया गया। यह एक नई अवधारणा एवं क्षेत्र है जिसमें संसाधन प्रबंध, जलवायु आधारित कृषि, उत्पादन प्रबंध जिसमें भण्डारण, बाजार, आपूर्ति श्रृंखला, मूल्या श्रृंखला, नवाचार प्रणाली, सूचना प्रणाली आदि का महत्व है। किसान प्रथम योजना किसानों को मुख्य भूमिका में रखते हुए बनाई गयी है जिसमें समस्याओं की पहचान, किसानों की कृषि स्थितियों में अनुसंधान करने को प्राथमिकता देना है। इस योजना में मुख्य घटक किसानों के प्रक्षेत्र, नवाचार, संसाधन, विज्ञान और तकनीकी पर है। भारतीय परिपेक्ष्य में दो शब्द 'ज्ञान को बढ़ाना' और 'प्रौद्योगिकी एकीकरण' किसान प्रथम का अर्थ पूर्ण करते है। ज्ञान को बढ़ाना, इसके साथ ही किसानों को वार्त्तालाप के माध्यम से अपने आसपास स्थापित उप–प्रणालियों, प्रक्षेत्र वातावरण, अनुभव आदि के आधार पर एक दूसरे से सीखना इस योजना का प्रमुख क्षेत्र है। प्रौद्योगिकी एकीकरण का यह दृष्टिकोण है कि अनुसंधान संस्थानों के वैज्ञानिकों द्वारा खोज के जो परिणाम आते है, कई बार वे किसानों की कृषि स्थितियों में लागू नहीं हो पाते है इसलिए प्रक्षेत्र स्तर पर कुछ अन्य परिवर्तनों और रूपांतरों को लागू करने की आवश्यकता है।

[1]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भा.कृ.अनु.प.– कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) 342 005
[2]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भा.कृ.अनु.प.– कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राजस्थान) 342 005

2. किसान प्रथम योजना क्यों ?

पिछले वर्षों में किये गये वैज्ञानिक प्रयासों से उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण सफलता मिली हैं। इसके पहले किसानों को नई तकनीकी देने पर जोर दिया जाता था। किसानों के ज्ञान और नवाचार को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया था और प्रयोगों में उनकी भागीदारी उपस्थिति मात्र से ज्यादा कुछ नहीं थी। विभिन्न उत्पादन प्रणालियों में प्रयुक्त करने हेतु किसानों के पास उपलब्ध ज्ञान को कभी श्रेणीबद्ध नहीं किया गया था। कई हितधारकों के पास उपलब्ध विकसित प्रौद्योगिकी को भी विकास, एकीकरण और लागू करने के उदद्ेश्य से नहीं अपनाई गई थी।

वर्तमान समय में कृषि में बहुत परिवर्तन हो रहा है, लघु कृषकों की संख्या में वृद्धि हो रही है, महिला किसानों के नेतृत्व में कृषि का क्षेत्र बढ़ रहा है, वर्तमान में प्रति इकाई क्षेत्र से उच्च लाभ दर की आवश्यकता है और सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण सुरक्षा के साथ कार्य करने की जरूरत है। स्थान विशेष, मांग आधारित और किसान अनुकूल तकनीकी विकल्पों को विकसित करने के लिए किसानों की मजबूत साझेदारी के साथ नवाचार और प्रौद्योगिकी के विकास के हेतु इस किसान प्रथम योजना का प्रायोजन किया गया है।

3. किसान प्रथम योजना के लक्ष्य एवं उदद्ेश्य

किसान प्रथम योजना का लक्ष्य तकनीक के विकास और उसे अपनाने के लिए किसान–वैज्ञानिक वार्त्तालाप को बढ़ाना है। यह नवाचार, तकनीक, प्रतिक्रिया, विभिन्न भागीदारों की हिस्सेदारी, विभिन्न वास्तविकताओं, बहु विधि दृष्टिकोण, संवेदनशीलता और आजीविका हस्तक्षेप आदि पर ध्यान केन्द्रित करके इस योजना के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

इस योजना के मुख्य उदद्ेश्य निम्न हैः–

- ज्ञान को बढ़ाने के लिए किसान–वैज्ञानिक वार्त्तालाप को बढ़ाना और निरन्तर प्रतिक्रिया प्राप्त करना।
- क्षेत्र विशेष कृषि परिस्थिति के आधार पर तकनीकी विकल्पों की खोज और उपलब्ध विकल्पों को आर्थिक, सामाजिक और व्यवहार के आधार पर एकीकृत करना।
- महिला कृषकों के लिए कम श्रम वाली और आय बढ़ाकर आजीविका को सुरक्षित करने वाली तकनीकों को विकसित करना।
- ग्रामीण क्षेत्र में कृषि को व्यवसाय के रूप में किसानों का दृष्टिकोण तथा तकनीकी के प्रदर्शन का अध्ययन करना।
- सूचना, तकनीक, आगत और बाजार तक पहुँच को आसान बनाने के लिए किसानों के साथ विभिन्न संगठनों के संबंध स्थापित करना।
- किसान प्रथम योजना को संस्थागत रूप प्रदान करना।

4. मुख्य घटक

4.1 किसान–वैज्ञानिक वार्त्तालाप को बढ़ाना

अनुसंधानकर्त्ताओं की भागीदारी को सक्षम और अनुसंधान की कार्यसूची बनाने के लिए किसानों से उनके प्रक्षेत्र की स्थिति, समस्याउन्मुखी वार्त्तालाप, किसानों और भागीदारों के मध्य ज्ञान का आदान–प्रदान करना।

4.2 प्रौद्योगिकी एकीकरण, उपयोग एवं प्रतिक्रिया

नवाचार, विभिन्न कृषि परिस्थितियों तथा किसानों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए तकनीक को लागू करने के लिए, तकनीक के विभिन्न अवयवों को समन्वित करना।

4.3 भागीदारी निर्माण

विभिन्न हितधारकों के बीच साझेदारी का निर्माण, ग्रामीण आधारित संस्थाओं का विकास, कृषि पारिस्थितिकी तंत्र और हितधारकों का विश्लेषण और प्रभाव के अध्ययन को शामिल करना।

4.4 ज्ञान सामग्री संग्रह

ज्ञान साझा करने और विशिष्ट विषय–सूची को विकसित करने के लिए विभिन्न संस्थानों को योजना भागीदारों के रूप में इस्तेमाल किया जायेगा।

5. हितधारकों की भूमिका

5.1 किसान

- शोध/परीक्षणों का प्रभावी प्रबंध, कार्यान्वयन और निगरानी करना।
- शोध/परीक्षणों को करने के लिए श्रम और संसाधनों का प्रयोग करना।
- प्रसार और शोध प्रक्रियाओं को आपस में जोड़ना।
- अन्य किसान के साथ अपने अनुभवों को साझा करना।

5.2 अनुसंधानकर्त्ता

- अनुसंधानकर्त्ताओं की यह जिम्मेदारी है कि वे वास्तविक रूप से शोध को लागू करे और तकनीक का विकास करें।
- स्थानीय ज्ञान का अध्ययन, किसानों के साथ मिलकर उनके मुद्दों का विश्लेषण, पहचान और समस्याओं को प्राथमिकता देना।
- पूरी प्रक्रिया में किसानों और प्रसार कर्मियों के साथ भाग लेना, तकनीकी जानकारी और कार्यान्वयन का समर्थन करने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करना।
- शोध के मूल्यांकन, प्रलेखन और निगरानी के लिए किसानों को शामिल करना।

5.3 प्रसार कार्यकर्त्ता

- किसान–वैज्ञानिक वार्त्तालाप बढ़ाना, किसान से किसान अनुभव आदान–प्रदान के लिए बैठक आयोजित करना, किसानों के संगठित प्रयोगों और प्रसार के परिणामों के आधार पर साहित्य और विस्तार सामग्री का विकास।

6. लाभ

6.1 किसान एवं ग्रामीणों को

- किसानों को अपनी समस्याओं का हल निकालने और नये विचारों के लिए उपलब्धि प्राप्त हो जाती है जो कि वह अनुसंधानकर्त्ताओं और प्रसारकर्त्ताओं कि मदद के बिना नहीं कर सकता था।
- अनुसंधान और तकनीक विकास क्षमता में सुधार।
- अन्य किसानों और कुशल व्यक्तियों के साथ उत्पादन अनुभव को बांटना और सीखना।
- विस्तार कार्यक्रम, तकनीकियों और बाजार के बारे में सूचना और सेवाओं तक आसान पहुंच।

6.2 अनुसंधानकर्त्ताओं को

- किसानों और प्रसारकार्यकर्त्ताओं के साथ काम करके स्थानीय ज्ञान को जानना।
- किसान की कृषि परिस्थितियों के अनुसार शोध को लागू करना।
- अनुसंधान के तरीकों में सुधार और क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों के अनुसार सीखने की सुविधा।
- भागीदारी अनुसंधान दृष्टिकोण में ज्ञान और कौशल में सुधार।

6.3 प्रसार कार्यकर्त्ताओं को

- किसान की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाले नये विस्तार उपकरणों और विधियों को सीखना।
- सावधानीपूर्ण की गई निगरानी से क्षमता में सुधार होता है तथा यह करके सीखने की एक प्रक्रिया है।
- सामान्य एवं वैज्ञानिक ज्ञान तक अच्छी पहुंच।
- किसान से किसान योजना के माध्यम से साझा परिणामों के बेहतर प्रसार के लिए किसानों का समर्थन प्राप्त करना।

अध्याय - 31

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना : किसानों की आशा

सुश्री अरूणा शर्मा[1]

1. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना क्या है?
2. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में सरकारों की भूमिका
3. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के प्रमुख तथ्य
4. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को शुरू करने के कारण

विगत वर्षो में अनियंत्रित वर्षा और जलवायु परिवर्तन के कारण देश में लगातार सूखे की स्थिति के बीच केन्द्र सरकार ने 13 जनवरी 2016 को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को मंजूरी दी है। यह योजना किसानों की फसल को प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुई क्षति को किसानों के प्रीमियम का भुगतान देकर एक सीमा तक कम करने में सहायता करगी।

1. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना क्या है ?

इस योजना के अन्तर्गत किसानों को बीमा कम्पनियों द्वारा निश्चित खरीफ फसल के लिए 2% प्रीमियम और रबी की फसल के लिए 1.5% प्रीमियम का भुगतान करेगा। इस योजना के लिए सरकार द्वारा 8800 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान किया है।

यह योजना पूर्ण रूप से किसानों के हितों को ध्यान में रखकर बनाई गई है। इसमें प्राकृतिक आपदाओं के कारण खराब हुई फसल के खिलाफ किसानों द्वारा भुगतान की जाने वाली बीमा की किस्तों को बहुत निम्न स्तर पर रखा गया है, जिनका प्रत्येक स्तर का किसान आसानी से भुगतान कर सके। ये योजना न केवल खरीफ और रबी की फसलों को बल्कि वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए भी सुरक्षा प्रदान करती है, जिसके लिए किसानों को 5% प्रीमियम (किस्त) का भुगतान करना होगा।

2. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में सरकारों की भूमिका

- योजना के तहत जब कोई किसान प्राकृतिक आपदा के कारण अपनी फसल को खो देता है तब किसानों को तुरन्त 25% नुकसान दिया जाएगा और बचा हुआ नुकसान स्थिति के अवलोकन के बाद दिया जाएगा।
- इस योजना में 8% का वहन केन्द्र और 8% का वहन राज्य सरकार द्वारा उठाया जाएगा जबकि 2% राशि प्रीमियम के तौर पर किसान द्वारा जमा की जाएगी।
- यह योजना पूरे किसानों को लाभन्वित करेगी जिससे किसानों की आत्महत्या की बढ़ती तादात को कम किया जा सकेगा।
- इस बीमा योजना के लिए की जाने वाली पूरी कार्यवाही को आसान बनाया जाएगा। जिससे किसान आसानी से इसे पूरा कर राशि प्राप्त कर सके।

[1]वित्त एवं लेखा अधिकारी, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर

- किसानों की सबसे बड़ी समस्या प्राकृतिक आपदा है जिसके चलते गत कई वर्षों से किसानों की परेशानी बढ़ रही थी। इस योजना को 23% से बढ़ाकर 50% तक ले जाने की सोच है।
- इस योजना के तहत सभी किसान शामिल हो सकते है जिन्होंने उधार लेकर बीज बोया है या अपने स्वयं के धन से बीज बोया है दोनों परिस्थिति में किसान बीमा के लिए दावा कर सकता है।
- केन्द्र ने राज्य सरकारों को अपने नियमों में संशोधन का आदेश दिया है जिससे किसान आसानी से जुड़ सकें। देश के कई हिस्सों में बटाई पर खेती की जाती है जिसके कारण कई किसानों के पास प्रमाण नहीं होता कि उन्होंने फसल में पैसा लगाया है जिसके लिए नियमों में संशोधन कर उन बटाईदार किसानों को प्रमाणपत्र मुहैया कराये जाएंगे जिससे वे इस योजना का लाभ उठा सकेंगे।
- सरकार ने तकनीकी सुविधा भी दी है जिसके कारण इसमे धोखाधड़ी की गुंजाईश भी कम होगी और धन सही हाथों में जाएगा। जरूरतमंद ही योजना का लाभ उठा पाएंगे।

3. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के प्रमुख तथ्यः-

- यह बहु–प्रतीक्षित योजना 2016 के खरीफ सत्र से लागू होगी, यह योजना मौजूदा सरकारी बीमा योजनाओ के स्थान पर प्रारंम्भ की जाएगी।
- इस योजना में भुगतान की जाने वाली प्रीमियम दरों को किसानों की सुविधा के लिए निम्न स्तर पर रखा गया है।
- इसके अन्तर्गत सभी प्रकार की फसलों (रबी, खरीफ, वाणिज्यिक और बागवानी) की फसलों को शामिल किया गया है।
- खरीफ (धान या चावल, मक्का, बाजरा, गन्ना आदि) की फसलों के लिए 2% प्रीमियम का भुगतान किया जाएगा।
- रबी (गेहूं, जौ, चना, मसूर, सरसों आदि) की फसलों के लिए 1.5% प्रीमियम का भुगतान किया जाएगा।
- वार्षिक वाणिज्यक और बागवानी फसलों के लिए 5% प्रीमियम का भुगतान किया जाएगा।
- सरकारी सब्सिडी पर कोई ऊपरी सीमा नहीं है। यदि बचा हुआ प्रीमियम 90% होता है तो सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।
- शेष प्रीमियम बीमा कम्पनियों को सरकार द्वारा दिया जाएगा। ये राज्य तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा बराबर–बराबर बांटा जाएगा।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अन्तर्गत तकनीकी का अनिवार्य रूप से प्रयोग किया जाएगा, जिससे किसान सिर्फ मोबाइल के माध्यम से अपनी फसल के नुकसान के बारे में तुरन्त आंकलन कर सकता है।
- उपरोक्त योजना के अन्तर्गत आने वाले 3 सालों में सरकार द्वारा 8800 करोड़ रूपये खर्च करने के साथ ही 50% किसानों को शामिल करने का लक्ष्य रखा गया है।
- मनुष्य द्वारा निर्मित आपदाओं जैसे आग लगना, चोरी होना, सेन्ध लगाना आदि को इस योजना के अन्तर्गत शामिल नहीं किया गया है।

- प्रीमियम दरों में एक रूपता लाने के लिए भारत में सभी जिलों को समूहों में दीर्घकालीन आधार पर बांटा जायेगा।
- ये नई फसल बीमा योजना एक राष्ट्र एक योजना विषय पर आधारित है। ये पुरानी सभी योजनाओं की अच्छाईयों को धारण करते हुए उन योजनाओं की कमियों और बुराईयों को दूर करती है।

4. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को शुरू करने के कारण

भारतीय अर्थव्यवस्था को कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था कहा जाता है क्योंकि भारत की लगभग 61% जनसंख्या कृषि आधारित उद्योगों से अपना जीवन यापन करती है साथ ही पूरे विश्व में लगभग 1.5% खाद्य उत्पादकों का निर्यात भी करता है। भारत दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पादक देश है जो सकल घरेलु उत्पादन का लगभग 14.2% योगदान करता है। अतः भारत की आधी से ज्यादा जनसंख्या और देश की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 14% आय का भाग कृषि से प्राप्त होता है। जिससे देश की अर्थव्यवस्था को एक मजबूत आधार मिलता है। अतः कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना बहुत हद तक प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, बारिश आदि से किसानों को सूरक्षा प्रदान करती है। यह ऐसे समय में अस्तित्व में आई है जब भारत दीर्घकालीन ग्रामीण संकट का सामना कर रहा है। इसके अतिरिक्त इस योजना के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित है–

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की प्रीमियम दर बहुत कम है जिससे किसान इसकी किश्तों का भुगतान आसानी से कर सकेंगे।
- ये योजना सभी प्रकार की फसलों को बीमा क्षेत्र में शामिल करती है, जिससे किसान किसी भी फसल के उत्पादन के समय अनिश्चितताओं से मुक्त हो कर जोखिम वाली फसलों का भी उत्पादन करें।
- वे योजना किसानों को मनोवैज्ञानिक रूप में स्वस्थ करेगी।
- इस योजना के क्रियान्वयन के साथ ही सकल घरेलु उत्पाद में बढ़ोतरी होगी।
- इस योजना के क्रियान्वयन से किसानों में सकारात्मक ऊर्जा का विकास होगा जिससे किसानों की कार्यक्षमता में सुधार होगा।
- सूखा और बाढ़ के कारण आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या में कमी आएगी।
- स्मार्टफोन के माध्यम से कोई भी किसान आसानी से अपने नुकसान का अनुमान लगा सकते है।
- इस योजना के प्रथम चरण में असुरक्षित कृषि इलाकों जैसे पूर्वी उत्तर–प्रदेश, बुन्देलखण्ड, विदर्भ, मराठवाड़ा और तटीय क्षेत्रों से जुड़े प्रदेशों के किसानों को लाभ मिलने की उम्मीद है।

अन्त में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना देश के किसानों के लिए एक नई आशा की किरण लेकर आई है और साथ ही देश की अर्थव्यवस्था को भी एक मजबूत स्तम्भ प्रदान करने में मददगार साबित होगी ।

अध्याय – 32

मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि सलाह

चिरन्जी लाल मीणा[1], हेमन्त कुमार वर्मा[2], भवानी सिंह ईन्दा[3], अभिषेक पालड़िया[4]
डॉ. एच. एम. मीना[5] एवं विकास चौद्यरी[6]

1. प्रस्तावना
2. मौसम पूर्वानुमान के प्रकार
3. मौसम आधारित कृषि सलाह
4. मौसम पूर्वानुमान के कृषि में लाभ

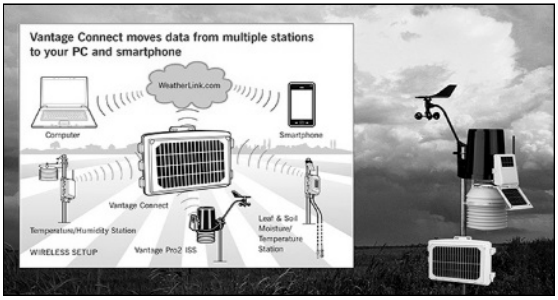

1. प्रस्तावना

जलवायु एवं वनस्पति एक दूसरे के पूरक है। जलवायु एक ऐसा कारक है जो पौधो के विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से सहायक होने के साथ–साथ अप्रत्यक्ष रूप से मृदा एवं अन्य जैव कारको का नियंत्रण करता है। कृषि कार्यों पर पडने वाले मौसम के अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभावों से हम सभी भली भांति परिचित है। प्रतिकूल मौसम में अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, शीत लहर, पाला अथवा कोहरा, प्रचण्ड हवाओं एवं विविध प्रकार के तूफानों से कृषि को अपार क्षति होती है। फसलों एवं पशुओं में बीमारियां भी मौसम द्वारा बहुत प्रभावित होती है। अतः मौसम के पूर्वानुमान द्वारा काफी सीमा तक फसल उत्पादन के नुकसान को रोका जा सकता है।भविष्य में घटने वाली मौसम संबंधी घटनाओं की भविष्यवाणी या पूर्व सूचना को मौसम पूर्वानुमान कहते हैं जिसका अध्ययन एक रहस्य के रुप में शुरु किया गया। प्राचीन काल में मौसम की घटनाएँ देवी देवताओं के प्रकोप का परिणाम मानी जाती थी तथा आँधी, ओले तथा खराब मौसम को ईश्वर का प्रकोप माना जाता था। जैसे ही विज्ञान का प्रार्दुभाव हुआ तो यह अहसास किया गया कि मौसम सूर्य पृथ्वी घुर्णन तथा वातावरण के आपसी संयोग से उत्पन्न होते हैं। इसलिए मौसम के विभिन्न तत्वों को नापने की जरुरत महसूस हुई तथा वर्तमान एवं भविष्य की मौसम घटनाओं की जानकारी की लालसा उत्पन्न हुई। 1643 में दाबमापी के आविष्कार के साथ वैज्ञानिक मौसम पूर्वानुमान की नींव रखी गई।

मौसम : वायुमण्डल की दिन प्रतिदिन की दशा को मौसम कहते है और इसका संबंध तापमान, आर्द्रता तथा वायु की गतियों में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तनों से होता है। मौसम के प्रमुख तत्वों में तापमान, आर्द्रता, वायुदाव, पवन व वृष्टि आदि विशेष उल्लेखनीय है।

[1–2]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान सस्थान, काजरी केम्पस
[3–4]डेटा ऐन्ट्री ऑपरेटर, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान सस्थान, काजरी केम्पस
[5]वैज्ञानिक (कृषि मौसम विज्ञान) प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण विभाग, जोधपुर (राज.)
[6]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, (कृषि मौसम विज्ञान) प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण विभाग, जोधपुर (राज.)

जलवायु : किसी स्थान अथवा प्रदेश के दिन प्रतिदिन के मौसम के दीर्घकालीन औसत को ही वहां की जलवायु कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मौसम विज्ञान संस्थान ने जलवायु के निर्मित मौसम के विभिन्न तत्वों का औसत निकालने के लिए 30 वर्षों की अवधि को प्रमाणिक माना है।

जलवायु परिवर्तन : भौतिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों की भांति जलवायु भी स्थिर न होकर उसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। विश्व के प्रत्येक भाग में जलवायु की दृष्टि से प्रत्येक वर्ष, दशक अथवा शताब्दी एक दूसरे से भिन्न होती है। वैश्विक ताप वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) जलवायु परिवर्तन का ही स्वरूप है। कालान्तर में पृथ्वी के जलवायु में काफी उतार–चढ़ाव होते रहे है इन उत्कृष्ट परिस्थितियों में पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों ने या तो अपने आप को इसके अनुकूल ढाल लिया या हारकर के विलुप्त हो गयें।

2. मौसम पूर्वानुमान के प्रकार

तत्कालीन पूर्वानुमान : यह भविष्यवाणी हाल ही में डोपलर राडार उपग्रह और अवलोकन आंकडो के आधार पर की जाती है। यह 0–6 घण्टे की अवधि के लिए होती है।

अल्प अवधि मौसम पूर्वानुमानः यह पूर्वानुमान भारतीय मौसम विभाग के स्थानीय मौसम केन्द्र द्वारा किया जाता है। यह भविष्यवाणी 12 से 72 घण्टे की अवधि के लिए की जाती है। इस मौसम पूर्वानुमान में वर्षा, बादल, हवा की गति और दिशा और तापमान आदि की भविष्यवाणी होती है। यह पूर्वानुमान किसानों के लिए बहुत फायदेमंद है। इसके आधार पर किसान सिंचाई, खाद एवं उर्वरक, फसल कटाई का निर्णय ले सकते हैं। एवं पशुओं को शीत एवं गर्म स्थिति से बचाया जा सकता है।

मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमानः यह पूर्वानुमान पांच दिन की अवधि के लिए राष्ट्रीय मध्यम सीमा मौसम पूर्वानुमान केन्द्र (एन.सी.एम.आर.डब्लयू.एफ) नई दिल्ली द्वारा सप्ताह में दो बार (मंगलवार व शुक्रवार) प्रत्येक जिले के लिये किया जाता है। इसके अन्तर्गत आने वाले पांच दिनों में वर्षा की स्थिति, अधिकतम व न्यूनतम तापमान, बादल, आर्द्रता, वायु की गति एवं वायु की दिशा की भविष्यवाणी की जाती है। इस पूर्वानुमान द्वारा कृषि कार्यो की योजना बनाने में एवं उत्पादन बढाने में बहुत महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। मध्य अवधि पूर्वानुमान की मदद से कृषि में होने वाली हानियों को काफी कम किया जा सकता है। इस पूर्वानुमान से किसान अपने कृषि साधनों की क्षमता बढ़ा सकते हैं साथ ही कृषि से जुडे अनेकों कार्य को सुचारू रूप से करने में मदद मिलती है। यह फसल की बुवाई, फसल प्रबंधन, यंत्रों का उपयोग एवं मजदूर आदि इस प्रकार से होने वाले खर्चों एवं हानि को कम कर सकते है।

विस्तारित अवधि मौसम पूर्वानुमानः इस पूर्वानुमान की अवधि 10 से 30 दिन की होती है। लेकिन मुख्यतः यह 15 से 30 दिन की होती है। यह कृषि उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। विशेष कर योजना एवं रणनीतियों के निर्णय में सहायक होती है। जिससे 30 दिन (एक माह) के मौसम पूर्वानुमान के हिसाब से मौसम संबन्धित फसल हानि को बचाया जा सकता है।

लम्बी अवधि मौसम पूर्वानुमानः लम्बी अवधि के मौसम पूर्वानुमान 30 दिन से अधिक समय अथवा एक ऋतु के लिए किया जाता है। यह पूर्वानुमान

दीर्घकालीन कृषि योजनाएं जैसे फसल चक्र, फसल एवं किस्मों के चयन आदि में बहुत सहायक है। और इस पूर्वानुमान की मदद से पशुपालक किसान भी पशु के लिए चारा आदि का प्रबंधन कर लेता है।

3. मौसम आधारित कृषि सलाह

जिसके अन्तर्गत किसानों को सलाह दी जाती है कि आने वाले पांच दिनों में मौसम के अनुरूप कौन–कौन सी कृषि क्रियाएं करनी हैं। मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि सलाह प्रत्येक मंगलवार व शुक्रवार को स्थानी समाचार पत्रों, आकाशवाणी एवं ईटीवी राजस्थान से प्रसारित की जाती है तथा कृषि विभाग, स्वयं सेवी संस्थाएं, जिला सूचना केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र एवं प्रशासनिक अधिकारियों एवं गोद लिए गये गाँवों में किसानों को उपलब्ध करवाई जाती है। उक्त कृषि सलाह एवं मौसम पूर्वानुमान से समय–समय पर किसान लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4. मौसम पूर्वानुमान के कृषि में लाभ

- राज्य एवं क्षेत्र–वार वर्षा एवं मौसम की स्थिति व फसल पर लगने वाले रोग एवं कीटों की स्थिति।
- केन्द्र की फसलों में कृषि क्रियाएं, फसलों की अवस्था, मृदा नमी, विपरित मौसम एवं आकस्मिक फसल योजना।
- गत सप्ताह के मौसम आंकडें एवं उनकी समीक्षा।
- क्षेत्रिय मौसम पूर्वानुमान एवं मौसम आधारित कृषि सलाह।

अध्याय - 33

स्मार्टफोन: किसानों के लिए वरदान

अभिषेक पालडिया[1], हेमन्त कुमार वर्मा[2], चिरन्जी लाल मीणा[3] एवं भवानी सिंह ईन्दा[4]

1. परिचय
2. स्मार्टफोन का उपयोग
3. किसानों के लिए स्मार्टफोन ऐप्स
4. मोबाइल हार्वेस्ट
निष्कर्ष

1. परिचय

विकास में प्रौद्योगिकी हमेशा से एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। यहाँ तक की जिन क्षेत्रों में किसी प्रकार का कोई विकास नहीं हुआ है उन क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी ने विकास किया है। दूरसंचार दुनिया भर में कुशलता से फैल गया है। भारत जैसे विकासशील देश में भी प्रौद्योगिकी ने अपना असर दिखाया है। लगभग हर जगह अब मोबाइल टावर दिखाई देता है तथा लोग मोबाइल का उपयोग करते हुए दिखाई देते है। सूचना एवं संचार प्रसार प्रौद्योगिकी ने बुनियादी विकास को सुगम बनाया है।

2. स्मार्टफोन का उपयोग

बेहतर ऑपरेटिंग सिस्टम और छोटे प्रोसेसर की मदद से आज मोबाईल का स्थान स्मार्टफोन ने लिया है। अब हम देख सकते हैं कि फोन ने मल्टीमीडिया और प्रोसेसर शक्ति में अच्छी पहुँच बनाई है। कम्प्यूटर के अधिकांश कार्य अब स्मार्टफोन से किये जा सकते हैं। पहले स्मार्टफोन को महंगे फोन में शामिल किया जाता था जबकि

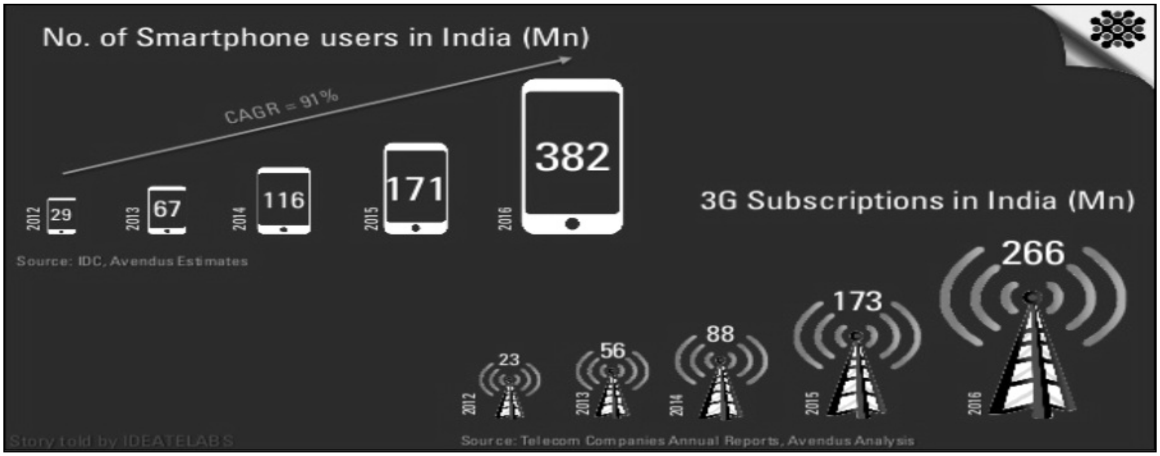

[1,4]डाटा एन्ट्री ऑपरेटर, भ.कृ.अ.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राज)
[2,3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, भ.कृ.अ.प.–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर (राज)

आज के दौर में स्मार्टफोन निम्न दरों पर भी बाजार में उपलब्ध कराये जा रहे हैं। पिछले 2–3 सालों में भारत में निम्न दरों के स्मार्टफोन की ब्रिकी में वृद्धि पाई गई है। दिनों–दिन इनकी दरों मे लगातार गिरावट दर्ज की गई है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण श्रमिकों तक अपनी पहुंच बनाई है (अग्रवाल, 2013)।

3. किसानों के लिए स्मार्टफोन ऐप्स

आज का युग स्मार्टफोन के नाम से चल रहा है तो यह बात किसानों को भी समझनी चाहिए तथा अपने फायदे के लिए संबन्धित ऐप्स का प्रयोग करना चाहिए। सरकार एवं संबंधित कृषि विभागों को किसानों के लिए मोबाइल ऐप जरूरी है इस मुद्दे पर चर्चा करनी चाहिए। एक समय वह था जब लोग मोबाइल ऐप्स की उपयोगिता किसानों के असमंझस की बात थी। परन्तु आज ऐसे कॉल सेन्टर स्थापित कर दिये गए हैं जहाँ किसान कॉल कर मोबाइल ऐप से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

किसान कृषि आधारित ऐप की सहायता से अपने व्यवसाय को और बेहतर बनाकर अधिक आजीविका अर्जित कर सकता है। इन ऐप की सहायता से किसान अपनी कृषि संबंधित जानकारी को अपडेट कर सकता है ताकि प्रकृति की विपरीत परिस्थिति को अनुकुलित कर सर्वश्रेष्ठ खेती करने में सक्षम हो सकें। किसान इन ऐप की सहायता से कृषि की नई तकनीकों तथा पुरानी तकनीकों के नए संस्करणों की जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं। सभी संगठन और निकायों को कच्चे माल की आवश्यकता होती है, इन ऐप की सहायता से वे ऑनलाईन खरीद सकते हैं (सी4आई टेकनोलजी, 2013)।

4. मोबाइल हार्वेस्ट

भारत में कृषि के लिए कई तरह के ऐप्स तैयार किये गए हैं। मोबाईल हार्वेस्ट इसी प्रकार की एक ऐप है जिसे सचिन गौड़ द्वारा बनाया गया है, इसके माध्यम से कम पढ़े–लिखे तथा अनपढ़ किसान आसानी से आपस में बीज, खाद, कीटनाशक तथा फसलों को प्रभावित करने वाले कीट एवं रोग और पैदावार एवं बाजार मूल्य आदि समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। गौड़ एवं उनके साथियों ने उन किसानों को देखा जिन्होंने अपने स्वयं ने अपनी पैदावार को बढ़ाया है तथा उनके द्वारा किए गए प्रयोगों को दूसरे किसानों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। इसी के साथ ही उन्होनें इस तरह के कई और विडियो अपनी ऐप में डाले हैं जिनसे सभी तरह के किसान उन प्रयोगों को अच्छी तरह समझ सकें तथा इसके लिए किसानों का ज्यादा पढ़–लिखा होना कोई जरूरी नहीं है। यह देश भर के ग्रामीण किसानों को आसानी से जोड़ने का एक बेहतर तरीका है। भारत

में लगभग 50 प्रतिषत जमीन छोटे किसानों के पास है जो कि आज भी पुराने एवं अपर्याप्त तकनीकों से खेती कर रहे हैं। अभी कुछ समय से कम पैदावार तथा फसल बर्बाद होने से कई इलाके प्रभावित हुए हैं। फसल बर्बाद होने से तथा कम पैदावार होने के कारण किसान ऋण के बोझ के नीचे दब जाते हैं। काफी किसानों के लिए यह बोझ बहुत ज्यादा हो जाता है तथा यही एक मुख्य कारक है किसानों द्वारा अत्महत्या करने का। अनुमान लगाया गया है कि 1955 के बाद से लगभग 2,70,940 किसानों ने आत्महत्या की है। यही कारक गौड़ को यह ऐप बनाने के लिए प्रेरित करता है। इस ऐप के माध्यम से छोटे खेत मालिकों को अच्छी पैदावार मिल सके तथा उन्हें आत्महत्या करने की जरूरत ना पड़े। यद्यपि यह केवल स्मार्टफोन को बढ़ावा देना का माध्यम नहीं है बल्कि इसके द्वारा किसानों को आजीविका में सुधार लाने का एक अच्छा प्रयास है।

4.1 डिजिटल ग्रीन

हाल ही कार्नेल विश्वविद्यालय के सम्मेलन में गैर सरकारी संगठन डिजिटल ग्रीन के सस्ंथापक रिकिन गाँधी ने कहा कि ''हम ज्ञान बाँट कर समुदाय को सशक्त करना चाहते हैं तथा यह बताना चाहते हैं कि कृषि एक इसका एक विकल्प है अंतिम उपाय नहीं।'' इस गैर सरकारी संगठन द्वारा किसानों को एक ऐसा मंच मिला है जिससे वो अपना ज्ञान विडियो बनाकर कर अन्य लोगों तक आसानी से पहुँचा सकें। आज की तिथि तक इस पर लगभग 2,700 विडियो डाले गए हैं जो कि 1,75,000 बार देखे जा चुके हैं।

''किसान विडियो द्वारा बयान कर पाते है। यह एक सशक्त समुदाय बनाने में मदद करता है और किसानों को अपने क्षेत्र में अग्रणी होने का मौका देता है''। – रिकिन गाँधी

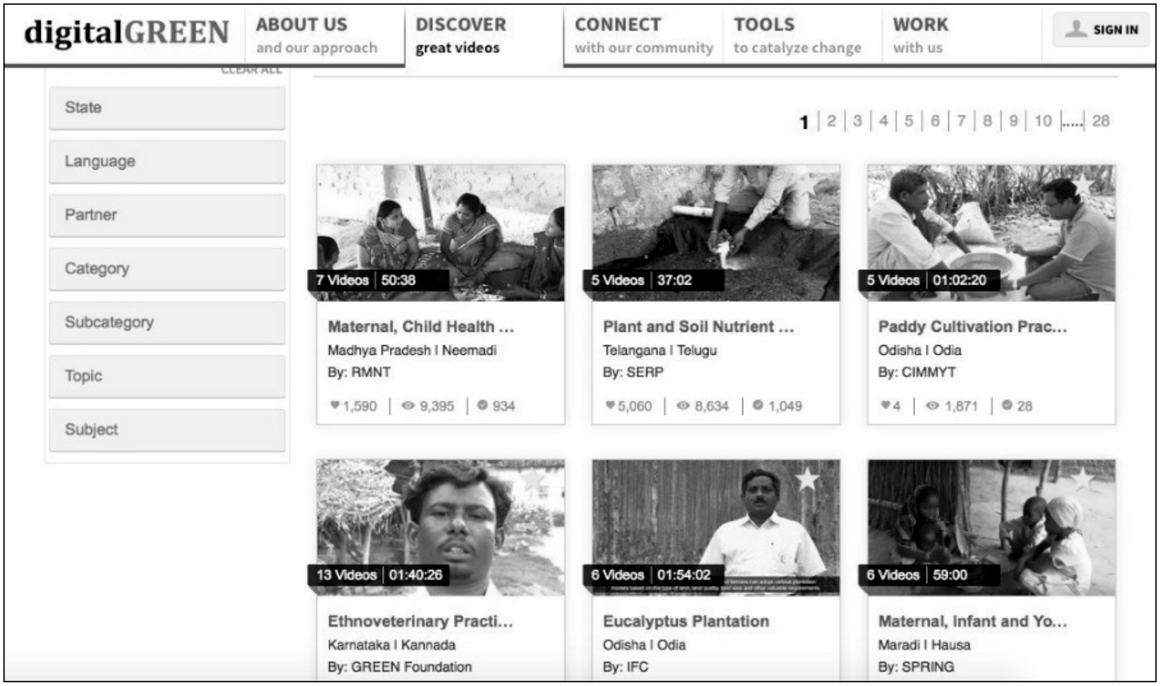

इन प्रयासों द्वारा दुनिया भर के लगभग 50 करोड़ छोटे किसानों को मदद मिल सकती है जिनकी स्थिति बहुत खराब होती है। फिलहाल वे दुनिया भर की आधी से अधिक खाद्य आपूर्ति को पूर्ण करते हैं तथा उन 2 अरब लोगों की भी जो आजीविका के लिए उन पर निर्भर रहते हैं।

अगर आसानी से समझी जाने वाली तकनीक एवं कृषि के उन्नत तरीकों को साथ में प्रदान कराये जाएं तो उन्हें अपनी उत्पादकता सुधारनें, अपने मजदूरों का स्वस्थ जीवन बनाने में, खाद्य सुरक्षा बनाये रखने तथा अपनी अर्थव्यवस्था सुदृढ करने में सहायता प्रदान कर सकता है। वियतनाम में देखा गया कि बेहतर कृषि तकनीकों के द्वारा परिवर्तन में भारी बदलाव आया है। पहले वियतनाम एक खाद्य की कमी वाला देश था तत्पश्चात् उन्नत कृषि तकनीकों के माध्यम से आज वो दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक देश है (वर्ष 2011–12 के अनुसार)। इस से महत्वपूर्ण बात कि वियतनाम में गरीबी दर 15 प्रतिशत हो गई है जो 1979 में 58 प्रतिशत थी।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष की एक रिपोर्ट के अनुसार छोटे किसान वैश्विक खाद्य सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं तथा उचित मौके सुनिश्चित करने के लिए अच्छी योजनाओं एवं उन्नत तकनीकी सहायता पर भी प्रकाश डाला है। संभावित लोगों की तरह पहल करके अपनी आजीविका सुधार सकते है तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक बनें (वाल्श, 2013)।

4.2 मित्रा

मित्रा (इसका अर्थ– मित्र के रूप में) कृषि की जानकारी के लिए नई स्मार्टफोन ऐप तैयार की गई है जिससे किसानों को उनकी जरूरत के अनुसार सटीक मात्रा में खाद की खुराक की जानकारी दी जा सकती है। यह तमिलनाडु के शोधकर्त्ता के.सी. शिवा बालन द्वारा तैयार की गई है और शीघ्र ही शुभारंभ होने को तैयार है फिलहाल दक्षिण भारत में परिक्षण के लिए उपलब्ध कराई गई है। इस ऐप को चलाने के लिए किसी प्रकार का इंटरनेट की आवश्यकता नहीं है यह पूर्ण रूप से ऑफलाइन मोड़ पर काम करने के लिए तैयार की

RICE TRADE

Top 10 rice exporters
Country exports forecast (in million tonnes)

Rank	Country	2011	2012
1	Thailand	10.64	6.5
2	Vietnam	7	7
3	India	4.63	8
4	Pakistan	3.41	3.75
5	Brazil	1.29	0.9
6	Cambodia	0.86	0.8
7	Uruguay	0.84	0.85
8	Myanmar	0.77	0.6
9	Argentina	0.73	0.65
10	China	0.48	0.5

Top 10 rice importers
Country imports forecast (in million tonnes)

Rank	Country	2011	2012
1	Indonesia	3.09	1.25
2	Nigeria	2.55	2.45
3	Iran	1.87	1.9
4	Bangladesh	1.48	0.4
5	EU-27	1.47	1.4
6	Philippines	1.2	1.5
7	Malaysia	1.07	1.08
8	Saudi Arabia	1.05	1.15
9	Iraq	1.03	1.2
10	Ivory Coast	0.93	0.95

Source: United States Department of Agriculture

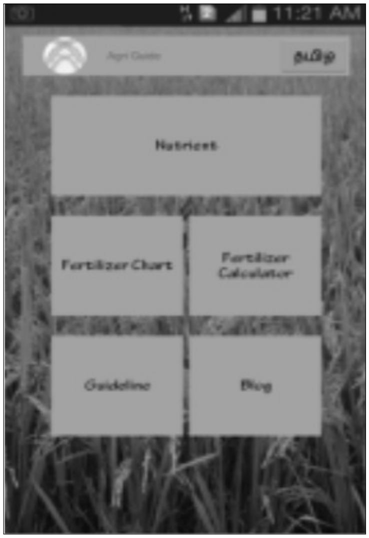

गई है। फिलहाल यह ऐप अंग्रेजी एवं तमिल भाषा में तैयार की गई है।

यह एंड्रायड ऐप मुख्यतय से उन किसानों के लिए बनाई गई है जिन्हे विशेष रूप से फसल पोषक तत्व प्रबंधन, खाद एवं उर्वरक सम्बन्धी जानकारी की आवश्यकता होती है। विस्तार कार्यकर्त्ताओं को भी यह ऐप डाउनलोड करने के लिए सुझाव दिये गए हैं ताकि वे भी किसानों को इससे उर्वरक सम्बन्धी उचित जानकारी उचित समय पर प्रदान करा सकते हैं। इस ऐप द्वारा उपलब्ध सम्पूर्ण जानकारी तमिलनाडु सरकार के कृषि विभाग की शोध पर आधारित है।

वह किसान जिनके पास स्मार्टफोन है वे मित्रा ऐप को बिना शुल्क के खुले स्त्रोत से डाउनलोड कर सकते हैं।

इस ऐप में अनेक चित्रों एवं छवियों का प्रयोग किया गया है ताकि जो किसान सही तरह से स्मार्टफोन नहीं चला सकते वे भी आसानी से इसका उपयोग कर सकें (शिवबालान, 2015)।

निष्कर्ष

प्रौद्योगिकी विकासशील देशों में तीव्र गति से फैल रही है। इन देशों में किसान वर्ग का एक बड़ा समुदाय होने के साथ सकल घरेलु उत्पाद में अहम योगदान रहता है परन्तु इनके पास उपयुक्त संसाधनों का अभाव होने के साथ ही उपलब्ध संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं होने के कारण यह वर्ग आर्थिक व तकनीकी रूप से पिछडे हुए थे। पिछले कुछ वर्षों से स्मार्टफोन का प्रयोग किसानों के मध्य लगातार बढ़ रहा है परन्तु अभी भी व्यापार में किसान (उत्पादक) और उपभोक्ता के बीच बड़ा अन्तर है। स्मार्टफोन प्रैद्योगिकी के लिए अलग से परियोजना बनाने की आवश्यकता है ताकि किसानों के लिए इनका उपयोग करना आसान हो सके तथा वे इसका अधिकाधिक उपयोग कर सकें। सरकार एवं कृषि से संबंधित विभागों को ऐसी योजनाओं पर कार्य करना चाहिए ताकि वे किसानों और उपभोक्ता से सीधे जुड़ सकें और किसानों को भी नवीनतम तकनीकों, नवीन बीज, मौसम, उर्वरक एवं बाजार की जानकारी मिल सके जिससे वे अपने उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर, और अपने उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त कर सके। साथ ही उपभोक्ता अपनी आवश्यकता के कृषि उत्पादों को उचित (न्यूनतम) दर पर प्राप्त कर सकें।

संदर्भ

रक्षित अग्रवाल, कृषि में स्मार्टफोन, 2013 http://www.e-agriculture.org/content/smartphone-apps-agriculture (07.01.2016 को देखा गया)

स्टीफन वाल्श, स्मार्टफोन किसानों के लिए सकारात्मक परिणाम, 2013 https://en.reset.org/blog/smartphones-harvesting-positive-results-farmers (07.01.2016 को देखा गया)

शिवबालान, किसानों के लिए उर्वरक पर त्वरित सलाहः स्मार्टफोन ऐप भारत से, 2015 http://www.e-agriculture.org/news/instant-advice-fertilizer-dose-farmers-smartphone-app-india (09.01.2016 को देखा गया)

सी4आई टेकनोलजी, मोबाईल ऐप कृषि के लिए, 2013 http://www.c4i.in/mobile-apps-agriculture.html (12.01.2016 को देखा गया)

अध्याय – 34

कृषि क्षेत्र में बैंकों की भूमिका

भवानी सिंह ईन्दा[1], चिरन्जी लाल मीना[2], हेमन्त कुमार वर्मा[3] एवं अभिषेक पालड़िया[4]

1. प्रस्तावना
2. भारत में बैंकिग व्यवस्था
3. भारत में कृषि बैंक की स्थापना
4. बैंकों द्वारा किसानों को सुविधा
निष्कर्ष

1. प्रस्तावना

भारत देश में 648921 गाँव एवं 7933 शहर है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। गाँवों को भारत की आत्मा कहा जाता है तथा यह माना जाता है कि भारत गाँवों में बसता है। गाँवों में रहने वाली ग्रामीण आबादी (पुरूष एवं महिलाओं) का मुख्य कार्य कृषि या कृषि से जुड़े हुए क्षेत्र के कार्य है। भारत में कृषि क्षेत्र का विकास धीमी गति से हुआ है जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या, गरीबी, बेरोजगारी तथा किसानों के पास खेती के लिए समय पर वित्त उपलब्ध न होने के कारण वे समय पर खेती नहीं कर पाते हैं तथा वह खेती से जुड़ी नई तकनीकों का लाभ भी नहीं उठा पाते हैं, किसान खेती के लिए गाँव के धनवान व्यक्तियों या साहूकारों से उधार लेते हैं, जो कि उनका शोषण करते है। परन्तु सरकारी, निजी बैंकों द्वारा कृषकों के बेहतर व प्रभावी योजनाएँ पिछले चार दशकों से चलायी जा रही है।

2. भारत में बैंकिग व्यवस्था

बैंक किसी देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये देश की अर्थव्यवस्था को ठीक रखने में रीढ़ की हड्डी होते हैं। विकासशील देशों में बैंकों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। बैंक समाज के सभी वर्गों के लिए ऋण की व्यवस्था को पूरा करते हैं।

भारत में ''भारतीय रिजर्व बैंक'' देश का मुख्य बैंक है जो देश में कार्यरत विभिन्न बैंकों के लिए नीतियों का निर्धारण करता है तथा उन्हें नियंत्रित व निर्देशित करता है। वर्तमान समय में भारत में लगभग 93 वाणिज्यिक/व्यवसायिक बैंक अपनी लगभग 1,02343 शाखाओं के माध्यम से देश

[1, 4] डाटा ऐन्ट्री ऑपरेटर, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर।
[2, 3] वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर।

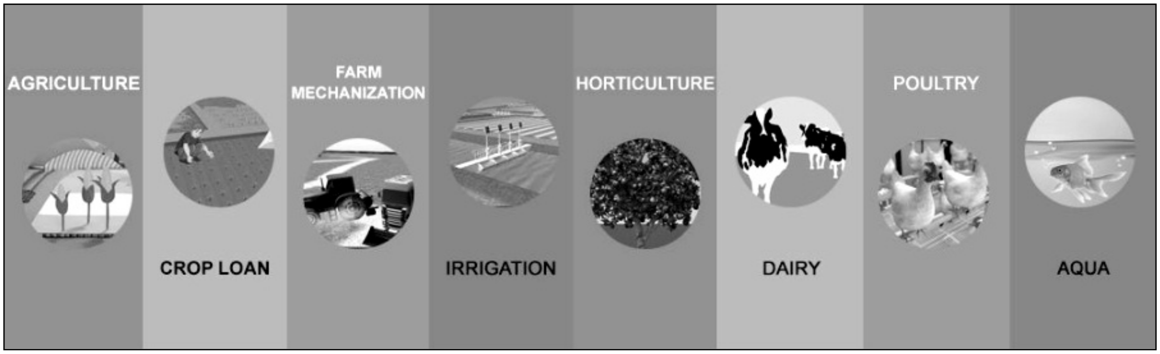

में बैंकिग का कार्य कर रहे हैं। इन शाखाओं में से 37953 शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित है।

बैंकों के मुख्य कार्य पूंजी निर्माण, पूंजी बाजार के लिए समर्थन, ऋण देना, विदेशी मुद्रा ऋण, पिछड़े क्षेत्रों को सहायता, नए उद्योगों को बढ़ावा देना, जमाएँ स्वीकार करना, आहरण सुविधा, ऑनलाइन बैंकिग, क्रेडिट–डेबिट कार्ड उपलब्ध करवाना आदि बैंकों के मुख्य कार्य है।

आधुनिक बैंकिग व्यवस्था से पहले कृषि क्षेत्र की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। कृषि क्षेत्र में बैंकों ने वित्त की कमी को दूर कर इस क्षेत्र में एक नई क्रांति लाने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। नई बैकिंग व्यवस्था आने से किसानों की आर्थिक स्थिति में तीव्र गति से सुधार हुआ हैं।

3. भारत में कृषि बैंक की स्थापना

किसानों की वित्त से जुड़ी समस्याओं को दूर करने के लिए आर.बी.आई. ने श्री बी. शिवारमन की अध्यक्षता में 12 जुलाई 1982 को नाबार्ड बैंक (राट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक) की स्थापना की। जिसका मुख्य उद्देश्य कृषि एवं ग्रामीण लोगों का उत्थान करना है। इस बैंक की स्थापना के पश्चात् विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्र के बैंकों ने भी कृषि एवं इससे जुड़े व्यवसाय व ग्रामीण लोगों के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया, जिससे कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति का आगमन हुआ है।

4. बैंकों द्वारा किसानों को सुविधा

भारत में बैंकों के माध्यम से किसानों को कई प्रकार के ऋण व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध की जा रही हैं। किसानों को बैंकों द्वारा निम्न प्रकार के ऋण व सुविधाएँ उपलब्ध की जा रही हैं:–

4.1 **प्रक्षेत्र पर भंडारण सुविधा हेतु:** किसानों को कृषि उत्पादों को अपने खेत पर ही सुरक्षित रखने के लिए बैंकों द्वारा फार्म पर भण्डारण की स्थायी व्यवस्था हेतु ऋण प्रदान किया जाता है।

4.2 **कृषि के नियमित संचालन हेतु:** भारत के अधिंकाश किसान गरीब है इसलिए उनके पास कृषि के नियमित संचालन के लिए भी धन उपलब्ध नहीं हो पाता है, इसलिए बैंकों द्वारा कृषि के नियमित संचालन के लिए 25000 से 1 लाख रूपये तक के ऋण एक वर्ष की अवधि के लिए उपलब्ध किये जाते हैं।

4.3 **कृषि भूमि क्रय करने हेतु:** छोटे किसानों को कृषि भूमि क्रय करने हेतु बैंकों द्वारा ऋण

उपलब्ध करवाये जाते है, ताकि किसान कृषि भूमि क्रय करके अपनी आजीविका चला सकें।

4.4 **पशु पालन हेतु (मुर्गी, मछली, गाय, भैंस आदि):** पशुपालन कृषि की सहायक क्रिया मानी जाती है। किसान खेती के साथ–साथ पशुपालन भी करता है ताकि उसे अतिरिक्त आय प्राप्त हो सके। पशुपालन इकाईयों की स्थापना के लिए बैंकों द्वारा 1 लाख से 50 लाख रूपये तक के ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं जिनका पुर्नभुगतान 2 से 10 वर्ष के मध्य करना होता है।

4.5 **प्रक्षेत्र पर आवास हेतु:** कई किसान जो कि अपने खेत पर रहकर कृषि कार्य करते हैं उनके पास आवास कि सुविधा नहीं होती हैं, इसलिए बैंकों द्वारा फार्म पर ही आवास सुविधा प्रदान करने हेतु ऋण प्रदान किया जाता है।

4.6 **खेती के लिए मशीनरी खरीदने हेतु:** वैज्ञानिकों द्वारा कृषि को आसान बनाने के लिए अविष्कार करके नई मशीनरी बाजार में किसानों के लिए उपलब्ध करायी जा रही है। किसान नई मशीनरी जैसे ट्रेक्टर, हार्वेस्टर, छिड़काव मशीन, फसल कटाई मशीन आदि के लिए बैंको द्वारा ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं जिससे किसान नई मशीनरी को क्रय करके अपने कृषि कार्य को आसान व प्रभावी बना सके।

4.7 **शीत गृह की स्थापना हेतु:** भारत में 30–40 प्रतिशत फलों एवं सब्जियों की कटाई उपरान्त बाजार में पहुँचने से पहले ही बर्बादी हो जाती है। इस बर्बादी को रोकने के लिए शीत गृह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, इसलिए बैंकों द्वारा शीत गृह की स्थापना किसानों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं।

4.8 **किसान क्रेडिट कार्ड:** यह योजना किसानों के मध्य सर्वाधिक रूप से प्रचलित है। इसके अन्तर्गत बैंकों द्वारा किसानों को उनकी कृषि भूमि के आकार के आधार पर एक वर्ष के लिए कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करवाया जाता है।

4.9 **महिला किसानों के सशक्तिकरण हेतु:** भारत में कृषि कार्य करने वालों में महिलाओं की भागीदारी लगभग 50 प्रतिशत है, अतः कृषि कार्य में लगी हुई महिलाओं को सशक्त करने के लिए बैंकों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान किये जाते है तथा छोटे उद्योग या प्रसंस्करण इकाई लगाने हेतु ऋण प्रदान किये जाते हैं ताकि वे समाज में एक सशक्त भूमिका अदा कर सकें।

4.10 **सौर ऊर्जा उपकरण लगाने हेतु:** सौर ऊर्जा एक सस्ती एवं भारत में आसानी से उपलब्ध हो जाने वाली ऊर्जा है। भारत में इस क्षेत्र में बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा भी कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। किसानों को सौर ऊर्जा उपकरण लगाने के लिए बैंकों द्वारा ऋण उपलब्ध करवाये जा रहे हैं ताकि किसान अपने फार्म पर सौर ऊर्जा उपकरण लगा सकें।

4.11 **सिंचाई व्यवस्था हेतु:** भारत में 65 प्रतिशत कृषि भूमि पर सिंचाई कि व्यवस्था उपलब्ध

नहीं है, इस भूमि पर वर्षा आधारित खेती की जाती है। इसलिए बैंकों द्वारा कुंओं की खुदाई, मरम्मत, ड्रिप सिंचाई, फव्वारा सिंचाई, पम्पसेट की खरीद आदि हेतु बैंकां द्वारा ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं ताकि किसानों को कृषि के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो सके।

4.12 **किसानों के प्रशिक्षण हेतुः** भारतीय किसान आज भी पारंपरिक तरीके से कृषि कार्य करते हैं। जिससे उनकी कृषि की लागत अधिक व लाभ कम होता है इसलिए बैंक कई प्रशिक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं के साथ सहभागीदारी से किसानों को नई कृषि तकनीक के बारे में प्रशिक्षण प्रदान करते हैं जिससे कृषकों के ज्ञान में कृषि व कौशल में विकास होता है।

4.13 **खाद्य प्रसंस्करण इकाई हेतुः** किसानों को कृषि उत्पाद बाजार में बेचने से कम आय होती है किन्तु उन्हीं उत्पादों को प्रसंस्करित करके बाजार में बेचने से ज्यादा आय होती है। इसलिए बैंक द्वारा लेकर किसान प्रसंस्करित इकाई लगा सकता है जिसमें वह अपने व अन्य किसानों के उत्पादों को प्रसंस्करित करके अधिक लाभ कमा सके।

4.14 **वर्षा जल संग्रहण हेतुः** भारत में 65 प्रतिशत खेती कार्य वर्षा पर आधारित है, परन्तु किसानों के पास वर्षा के जल को संग्रहित करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था उपलब्ध नहीं है, किसान बैंक से ऋण लेकर अपने खेत पर वर्षा के जल को संग्रहित करने के लिए टैंक, तालाब, बांध आदि में संग्रहित किया जा सकता है जिससे कि किसान बाद में उस वर्षा जल का उपयोग कर सके।

निष्कर्ष

- बैंकों द्वारा प्रदान किया जाने वाले ऋण से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।
- कृषि क्षेत्र में नई तकनीकी का प्रयोग बढ़ रहा है।
- कृषि क्षेत्र में कार्यरत किसानों के जीवन स्तर में वृद्धि हो रही है।
- कृषि क्षेत्र में हो रहे विकास से देश की अर्थव्यवस्था को फायदा हो रहा है।
- नई प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित होने से ग्राहको को नये उत्पाद कम कीमत व समय पर उपलब्ध हो रहे हैं।

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

किसान कॉल सेन्टर
1800 180 1551

FARMERS' PORTAL
"ONE STOP SHOP FOR FARMERS"

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान

(आई.एस.ओ. 9001-2015)

(काजरी परिसर) जोधपुर - 342 005 (राजस्थान)

Phone: 0291 2748412, 2740516, Fax: 2744367
email: zpd6jodhpur@gmail.com, website: www.atarijodhpur.res.in